संस्कृति और मानवशास्त्र

संस्कृति और मानवशास्त्र

(CULTURE AND ANTHROPOLOGY)

लेखक

डॉ रांगेय राघव एम० ए०, पी-एच० डी०

श्री गोविंद शर्मा एम० ए०

विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक :
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रथम संस्करण
१९६१

मूल्य १०.००

मुद्रक :
जनता प्रेस, आगरा

भूमिका

समाजशास्त्र एक बहुत व्यापक विषय है। उसमें बहुत से विषयों की आवश्यकता पड़ती है। समाज को समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम समाज के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकें। यह न केवल ज्ञान-वर्द्धन का साधन है, वरन् हमारे लिये यह सब जानना आवश्यक भी है, क्योंकि हमें समाज में ही रहना है और अपनी धारणाओं को ठीक से नियंत्रित करना है। हम अपनी संकीर्ण परम्पराओं में बहुत सी बातों को बिल्कुल ठीक समझते हैं और उनको शाश्वत् भी समझ लेते हैं। मनुष्य संसार में एक ही तरह से नहीं रहता। संसार में आज भी मनुष्य की सभ्यताओं और संस्कृतियों में भेद दीखता है। इस भेद के अध्ययन से हमें बहुत सी बातें ज्ञात होती हैं। हम अपने समाज में भी बहुत सी ऐसी रीतियाँ देखते हैं, जो अपनी समझ में भी नहीं आतीं, पर उनके बारे में बिना सोचे उनका पालन करते चले जाते हैं। राजस्थान में स्त्रियाँ कार्तिक मास में बहुत सबेरे उठ कर छोंकरे के पेड़ की पूजा करती हैं। परन्तु बहुत कम लोग जानते हैं कि छोंकरा बहुत पुराने समय से पूज्य माना जाता है। वेद में वर्णन आया है कि एक बार अग्नि खो गया था, तब अंगिरा ने अग्नि को ढूँढ़ा। उन्हें वह छोंकरे के पेड़ में मिला। छोंकरे को संस्कृत में शमी वृक्ष कहते हैं। उसी की परम्परा अभी तक चली आ रही है।

इसी प्रकार हीब्रू (यहूदी) लोग अपने को ईश्वर का विशेष कृपापात्र मानते हैं। परन्तु अपने प्रारम्भ के बारे में वे लोग स्वयं कुछ नहीं जानते। हीब्रू का शब्दार्थ है, जो पार करके आये हैं। इसका अर्थ है कि वे एक ज्ञात स्थान से दूसरे ज्ञात स्थान में आ गये थे। शायद फरात के पूर्व से पश्चिम

की ओर गये हों, यद्यपि इस बारे में निश्चय से नहीं कहा जा सकता (ए० पॉवेल डेविस : द मीनिंग ग्राफ दि डैंड सी स्क्रोल्स पृ० ४४)। यहूदियों के प्रारम्भिक पौराणिक पात्र भी अब ऐतिहासिक माने जाने लगे हैं। हम्मूरब्बी या खम्मूरब्बी, (जिसे जिनेसस १४ में आम्रफेल कहा गया है) के समय में यहूदी लोग दजला फरात की घाटी में थे। आम्रफेल शब्द संस्कृत का सा लगता है। कुछ लोगों ने भारत में यह प्रयत्न किया है कि भारत की प्राचीनता सिद्ध की जाये और विदेशियों ने भारतीय संस्कृति को परवर्त्ती ठहराने की चेष्टा की है।

संस्कृति के विद्यार्थी को चाहिये कि वह किसी पूर्वाग्रह (Prejudice) में न पड़े और तर्क दे देकर हर बात पर विचार करे। हमने यही प्रयत्न किया है।

समाजशास्त्र में मानव ही प्रमुख है। मानवशास्त्र का जो पक्ष संस्कृति से संबंधित है, वह समाजशास्त्र के अंतर्गत ही आता है।

हमने आज की उन सस्याओं का अध्ययन प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, जिनके कारण हमारी पुरानी मान्यताओं में अब कुछ परिवर्तन आ गया है। विज्ञान, पैरासाइकोलॉजी तथा भूगोल की वह जानकारी भी हमने यहाँ ली है, जिनका भारतीय जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ा है।

प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थियों को एक नयी दृष्टि देगी, ऐसी आशा है। आज फ्रायडवाद और मार्क्सवाद के रूप में यूरोपीय संस्कृति ने अपना द्वैत विकास प्रगट किया है। उस विषय पर भी हमने विवेचन किया है, क्योंकि उसका भारतीय समाज पर प्रभाव पड़ा है।

अपने लेखन में हमने यह पद्धति अपनाई है कि पहले दोनों पक्षों के तथ्य एकत्र किये हैं, जो कि विषय को प्रगट करते हैं। पाठक को उनकी जानकारी कराने के उपरान्त ही हमने अपने निष्कर्ष निकाले हैं।

इस पुस्तक को लिखने में हमें श्री गोपाल नारायण सक्सेना और श्री गणेशप्रसाद शर्मा ने काफी सहायता दी है, इसके लिये हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। भारतीय समाज आज एक नये दौर में से गुजर रहा है। यदि यह पुस्तक संस्कृति जैसे कठिन विषय पर कुछ प्रकाश डाल सकेगी, तो हमारा परिश्रम भी सफल हो जायेगा।

—रांगेय राघव
—गोविन्द शर्मा

विषय-सूची

१

समाजशास्त्र : विषय और विस्तार

समाजशास्त्र एक व्यापक विषय है। विभिन्न विद्वानों ने इसकी परिभाषा देने की चेष्टा की है।

हॉबहाउस के मतानुसार "मानव मस्तिष्कों की अंतःप्रक्रिया ही समाजशास्त्र है।"[१]

गिडिंग्स ने कहा है कि "समाजशास्त्र एक मूलभूत सामाजिक विज्ञान है। वह संयुक्तकारक विज्ञान है। वह समस्त सामाजिक विज्ञानों का जोड़ नहीं है, वरन् उनमें जो बातें सर्वमान्य आधार को लेकर चलती हैं, वह उन्हें प्रस्तुत करता है।"[२]

सिमैल के मतानुसार "समाजशास्त्र यह पूछता है कि मानव कैसे रहता है, किन नियमों के अन्तर्गत रहता है; वह मानव के व्यक्तिगत आचरण की ओर नहीं जाता, पर मानव के सामुदायिक जीवन को देखता है और उस समुदाय में व्यक्तियों की अन्तःप्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। अकेले व्यक्ति

---

1 The subject matter of Sociology is the interaction of human minds. —L. T. Hobhouse

2 Sociology is the inclusive and coordinating science only as it is the fundamental Social science. So far from being the sum of Social sciences, it is rather their common basis. Giddings

का अध्ययन समाजशास्त्र का विषय नहीं है। वह अनेकों के व्यवहार और आचरण को ही अपना क्षेत्र मानता है।"[१]

मनुष्य समाज में एक दूसरे से मिलते हैं और उनका एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। एक से अधिक व्यक्ति अपने को एक दूसरे के अनुकूल बनाते हैं, उसमें समाज में नियम बनते हैं। जिन्सबर्ग ने इसीलिये समाजशास्त्र को मानव अन्तःप्रक्रिया, मानवों का अंतःसम्बन्ध माना है। वे किन परिस्थितियों में रहते हैं और उनका क्या परिणाम निकलता है, यह भी समाजशास्त्र का ही विषय है।[२]

फोन वीज ने भी समाजशास्त्र को मानव-आचरणों के पारस्परिक व्यवहार का ही अध्ययन स्वीकार किया है। समाजीकरण की प्रक्रियाएँ, युक्तीकरण और अयुक्तीकरण की प्रक्रियाएँ भी इसलिये इसी के अन्तर्गत आती है।[३]

दुर्खीम ने कहा है कि समाजशास्त्र का काम है कि सामाजिक तथ्यों को महत्त्व दे और उन्हें सत्यों के रूप में स्वीकार करे।[४]

रूटर के मतानुसार "समाजशास्त्र का कार्य है ठोस सिद्धांतों का प्रतिपादन और निरूपण करना, ज्ञान के दृश्य रूप का भंडार एकत्र करना ताकि सामाजिक और मानव वास्तविकता का नियंत्रण और नियमन सम्भव हो सके।"[५]

समाजशास्त्र का क्षेत्र अभी तक निरंतर विकसित ही हो रहा है। जैसे जैसे मनुष्य अपने को जानने की चेष्टा कर रहा है, वह विभिन्न रास्तों से चलता है। इसीलिये वार्ड के मतानुसार "समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। उसे सामाजिक वस्तु-स्थिति का विज्ञान भी कहा जा सकता है।"[६]

---

1 Sociology asks what happens to man and by what rules they behave, not in so far as they unfold their understandable individual existences in their totalities, but in so far as they form groups and are determined by their group existence because of interaction. —Simmel

2 Sociology is the study of human interactions and inter-relations, their conditions and consequences. —M. Ginsberg

3 It is a special social science concentrating on inter-human behaviour, on processes of socialization, on association and dissociation as such. —Von Wiese

4 Its aim is to treat social facts as things. —Durkheim

5 Its purpose is to establish a body of valid principles, a fund of objective knowledge, that will make possible the direction and control of social and human reality —Reuter F. G.

6 It is the science of society or of social phenomena. —Ward

फेयरचाइल्ड ने और भी व्यापक परिभाषा देने की चेष्टा की है। वह कहता है कि "समाजशास्त्र मनुष्य और मानव-पर्य्यावरण के सम्बन्धों का अध्ययन है।"[1]

क्यूबर ने कहा है कि समाजशास्त्र की परिभाषा देते हुए कहा जा सकता है कि वह मानवों के पारस्परिक सम्बन्धों का वैज्ञानिक रीति से किया हुआ अध्ययन या ज्ञान है।[2]

पृथ्वी पर तरह-तरह से मनुष्य रहते हैं। उनके रहन-सहन में भेद होता है। उसका क्या कारण है? वह भेद किन किन प्रभावों के कारण होता है! एक ही समाज में मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध क्या होते हैं? जब एक से अधिक समाजों का मिलन होता है, तब सम्बन्धों में क्या परिवर्तन उपस्थित होते हैं, यह भी समाजशास्त्र का ही विषय है। इनके अध्ययन के बिना विषय का ज्ञान नहीं हो सकता। मनुष्य ही समाजशास्त्र के लिये आवश्यक है। पर उसके लिये जो भी कुछ आवश्यक है, वह सब ही समाजशास्त्र के अन्तर्गत आता है।

आज के युग में फिल्म में कैसा हीरो (नायक) चित्रित किया जाता है, यह भी समाजशास्त्र का ही विषय है। इसी प्रकार वृक्ष-पूजा, लोकगीत, लोकाचार इत्यादि न जाने कितने विषय इसके अन्तर्गत आते हैं।

मैकाइवर के मतानुसार "समाजशास्त्र उन सिद्धांतों को खोजना चाहता है जिनसे सामाजिक ढाँचे की भीतरी व्यवस्था का पता चल सके। किस प्रकार एक पर्य्यावरण-विशेष में किसी समाज की रीतियों की जड़ पनपती है, परि-स्थिति और पर्य्यावरण के बदलने और सामाजिक ढाँचे के बदलने से किस प्रकार सम-तुलन होता है, निरन्तर होते रहने वाले परिवर्तन की मुख्य विशेषताएँ क्या होती हैं, किसी समय विशेष पर किन शक्तियों का उस पर क्या प्रभाव पड़ता है, क्या संघर्ष और कौन से सामरस्य होते हैं, मानव इच्छाओं के प्रकाश में ढाँचे के भीतर ही कैसे जोड़ तोड़ होते हैं, और अन्त में सामाजिक मानव के

---

1 Sociology is the study of relationships between man and his human environment. —H. P. Fairchild

2 Sociology may be defined as a body of scientific knowledge about human relationships. —John F. Cuber

रचनात्मक कार्यों में साधनों से फलत्व के पहुंचने की व्यावहारिक क्रियाएं किस प्रकार होती हैं, यह सब मानवशास्त्र के ही विषय है।"[१]

जोन्स का मत है कि "समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य मनुष्य-समूह है। उसके विचार, रीति-रिवाज, मनुष्य को प्रभावित करने वाली सारी बातें, जोकि उसके पर्य्यावरण का ही भाग हैं, यह सब समाजशास्त्र के क्षेत्र में आते हैं। वह भौगोलिक पर्य्यावरण को भी किसी सीमा तक स्वीकार करता है। परन्तु मुख्य बात तो मानव-जीवन का ही अध्ययन है। मनुष्य किस प्रकार अन्य मनुष्यों तथा मनुष्यों द्वारा सिरजी हुई वस्तुओं से संबंध रखता है यही विशेष अध्ययन का क्षेत्र है ?"[२]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्र के अंतर्गत केवल मानवीय तथ्य ही नहीं, वरन वाह्य तथ्य जो मानव को प्रभावित करते हैं, स्वीकार किये जाते हैं। मानव बहुत ही संश्लिष्ट (Complex) प्राणी है। वह न केवल एक शरीर-सीमा में रहने वाला प्राणी है, वरन् उसके मन और बुद्धि-

---

1 Sociology seeks to discover the principles of cohesion and of order within the Social Structure, the ways in which its roots are grown within an environment, the moving equilibrium of changing structure and changing environments, the main trends of an incessant change, the forces which determine its direction at any time, the harmonies and conflicts, the adjustments and maladjustments within the structure as they are revealed in the light of human desires, and thus the practical application of means to ends in the creative activities of social man. —R. M. Mac Iver.

2 The chief interest of sociology is the people, the ideas, the customs, the other distinctively human phenomena which surround man and influence him, and which are, therefore part of his environment. Sociology also devotes some attention to certain aspects of the geographical environment and to some natural, as contrasted with human phenomena but this interest is secondary to its pre-occupation with human beings and the products of human life in association. Our general field of study is man as he is related to other men and to the creations of other men which surround him. —M. E. Jones

क्षेत्र भी विकसित होते हैं। इनके अतिरिक्त वह प्रकृति को अपनी इच्छानुसार मोड़ देने की भी निरंतर चेष्टा किया करता है। वह सोचता है और अपने ज्ञान को संचित भी किया करता है।

और बर्न के मतानुसार "समाज के बारे में जानकारी प्राप्त करना ही समाजशास्त्र है। जिन तरीकों से समाज और अच्छा हो सके, यह उसका वर्णन है। यह सामाजिक नीतिशास्त्र है, सामाजिक दर्शनशास्त्र है, और मुख्यतया यह समाज का विज्ञान है।"[१]

ग्रीन ने कहा है "समाजशास्त्र समस्त सामाजिक संबंधों में यह मानव का वह विज्ञान है जो सर्वमान्य नियम बताता है और दो के संघर्ष से उत्पन्न तथ्यों का समन्वयीकरण करता है।"[२]

समाजशास्त्र का कार्य इस प्रकार केवल अध्ययन के लिये ही अध्ययन नहीं करना है। उसका एक उद्देश्य भी है। वह है कि मनुष्य और भी अच्छा बने। वह एक दूसरे और अपने बारे में जाने, उसका मस्तिष्क व्यापक सत्यों को ग्रहण करके उन्हें व्यवहार में लागू कर सके और उसका जीवन और भी अधिक सुखी बने। इसीलये वे लोग जो कि समाज के विषय में चिन्तन कर गये हैं, जिन्होंने तरह तरह की व्याख्याएँ करके नियम बनाये हैं, वे सब समाजशास्त्र के क्षेत्र के ही भीतर माने जा सकते हैं। किन परिस्थितियों में मानव ने किस प्रकार से व्यवहार किया था और कर रहा है, यह सब समाजशास्त्र के अध्ययन की वस्तु है। यदि मनुष्य को देशकाल से अलग कर दिया जाये, तो उसे समाजशास्त्रीय अध्ययन नहीं कह सकते।

---

1 Sociology is a body of learning about society. It is a description of ways to make society better. It is social ethics, a social philosophy, generally, however, it is defined a science of society.

—W. F. Ogburn.

2 Sociology is the synthesizing and generalising science of man in all his social relationships.

—Arnold. W. Green

मैकाइवर ने इसी गत्यात्मकता को प्रगट करते हुए कहा है कि "समाज तो मानवों के सामाजिक संबंधों का निरंतर बदलता स्वरूप है।"[१]

विरकान्ड्ट ने तभी कहा है कि "हमें सामाजिक संबंधों का अरूप (Abstract) भावात्मक अध्ययन भी करना चाहिये।"[२]

गिस्बर्ट के मतानुसार समाज तो सामाजिक संबंधों का उलझा सा जाल है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ के मनुष्य से संबंधित होता है। मनुष्य और मनुष्य का प्रत्येक संबंध सामाजिक नहीं होता। जब वे एक दूसरे के प्रति जागरूक हो जाते है, एक दूसरे का अभिनन्दन करते हैं, समाजशास्त्र वहीं प्रारम्भ हो जाता है। मूलतः मानसिक प्रक्रियाएं ही समाजशास्त्र को जन्म देती हैं।"[3]

कूली ने कहा है कि "जब 'वयम-भाव' अर्थात 'हम हैं' का ध्यान होता है तो उसे समाजशास्त्र कह सकते है।"[४] मध्यकालीन टॉमस एक्विनास ने "विचार-शक्ति वाले प्राणियों यानी मानवों का सहयोग पूर्ण होकर एक लक्ष्य की ओर बढ़ना एक दृढ नैतिक बंधन माना था और उसी मे समाजशास्त्र की ओर इंगित किया था।[५] सैलिगमैन ने इसे एक अत्यंत श्रेष्ठ अनुपमेय समाज विज्ञान माना है।[६]

---

1 Society is an ever changing pattern of social relations. —Mac Iver

2 ...We should study abstractedly...the social relationship... —Virkandt

3 Society, in general, consists in the complicated network of social relationships by which every human being is interconnected with his fellowmen. Not every relationship of man with man is social...as soon as they become aware of each other or exchange greetings the element of sociology arises. Sociality or society is essentially a mental phenomenon. —Gisbert

4 We-feeling —Cooley

5 A stable moral union of rational beings cooperating to a common end. —St. Thomas Aquinas

6 The social science par excellence. —Seligamann

ओडम ने माना है कि संस्कृति, प्रौद्योगिकी और सभ्यता के क्षेत्र में मानव क्या उन्नति करते हैं उसका मापदण्ड समाजशास्त्र है।[१]

एल्वुड ने माना है कि "समाजशास्त्र में मानसिक अंतःप्रक्रियाओं द्वारा एक सा जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों के समुदाय समाज का अध्ययन किया जाता है।"[२]

बटलर ने कहा है कि "हमारे संबंध समाज में या तो एक रस्सी से बंधे होते हैं, या चाकू से कटे रहते हैं।"[3]

समाजशास्त्र के इस प्रकार मनुष्य पर ही जोर देने से इसके आवश्यक अंग के रूप में मानवशास्त्र को स्वीकार किया गया है। उसके अध्ययन के बिना समाजशास्त्र का अध्ययन हो ही नहीं सकता। मानवशास्त्र एक विज्ञान है, परन्तु मानवशास्त्र समाजशास्त्र नहीं है। मानवशास्त्र का कुछ भाग समाजशास्त्र के अन्तर्गत आता है।

यहाँ यह देखना आवश्यक है कि मानवशास्त्र किसे कहते हैं।

मानवशास्त्र का अर्थ (Meaning of Anthropology)

मानवशास्त्र अंग्रेजी के शब्द Anthropology का हिन्दी रूपान्तर है। Anthropology ग्रीक भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है। Anthropos जिसका अर्थ है, मानव तथा logos जिसका अर्थ है, शास्त्र—अर्थात मानवशास्त्र मनुष्य से संबंध रखने वाला शास्त्र है। इस शास्त्र के अन्तर्गत हम मनुष्य से संबंधित अनेक तथ्यों का अध्ययन करते हैं। हरस्कोविट्स ने ठीक कहा है

---

1 Sociology is the science of Society.....society is the interaction of individuals...Sociology is the framework of peoples, associating together, the measure what they achieve in culture, technology and civilization —Odum
Society is the behaviour of human beings, constant relationship and adjustment.

—Odum

2 Society a group of individuals who carry on a common life by means of a mental interaction. —Ellewood

3 Our relation in the society are either tied by a rope or cut by a knife. —Butler

"मानवशास्त्र मानव का और उसके कार्यों का अध्ययन है।" (Anthropology is the study of man and his works) M. J. Herskovits

सर्वप्रथम अरस्तू ने Anthropologist शब्द प्रयोग किया जिससे उसका तात्पर्य था, मनुष्य का मनुष्य के प्रति तथा उसके कार्यो की बातचीत करना। यह तो कुछ थोड़े समय मे ही मनुष्य ने अपने विषय में विचार करना शुरू किया है। हमारा तात्पर्य इससे यह है कि प्राचीन काल में मानवशास्त्र का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन नही किया गया। यह तो आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व ही इस विषय को वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ है।

मानवशास्त्र प्राचीन काल में केवल आपस की गप-शप से ही संबंधित था; परन्तु इसके आधुनिक तथ्य को समझने के लिये आरम्भ से लेकर अब तक के सब विद्वानों के विचारों का विश्लेषण करना पड़ेगा, तब ही हम मानवशास्त्र के सच्चे अर्थ पर पहुँच सकेंगे। पैन्निमैन के अनुसार "मानवशास्त्र मानव का विज्ञान है। एक प्रकार से तो यह प्राकृतिक इतिहास की वह शाखा है जिसमें जीव प्रकृति के क्षेत्र में मानव की उत्पत्ति और स्थान का अध्ययन करता है.... दूसरे रूप में मानवशास्त्र इतिहास का विज्ञान है।" जेकब्स तथा स्टर्न ने मानवशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है "मानव-समुदाय का सृष्टि के प्रारंभ से लेकर अब तक जो शारीरिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास हुआ है, उसका वैज्ञानिक अध्ययन मानवशास्त्र कहलाता है।"[२] हेडुन ने लिखा है, "मानवशास्त्र को मानव का विज्ञान कहा जा सकता है जिसके कि दो मुख्य भाग है—पहला वह जो कि प्राकृतिक मानव का अध्ययन करता है और दूसरा वह जो कि उस मानव से संबंधित है, जो अपने दूसरे साथियो

---

1 "Anthropology is the science of Man. In one aspect it is a branch of Natural History, and embraces the study of his origin and position in the realm of animaled nature...... In another aspect, Anthropology is the science of History." T. K. Penniman : A Hundred years of Anthropology (1952), p. 13—14.

2 "Anthropology is the scientific study of the physical, social and cultural development and behaviour of human beings since their appearance on earth." M. Jacobs and B. J. Stern : General Anthropology (1955), p. 1.

के संबंध से उत्पन्न होता है या दूसरे शब्दों में सामाजिक मानव से।"[१] क्रोबर ने लिखा है, "मानवशास्त्र मनुष्य के झुंडों और उनके व्यवहार एवं उत्पादन का विज्ञान है।"[२] एनसाइकिलोपीडिया ब्रिटैनिका में इसका अर्थ इस प्रकार दिया है "मानवशास्त्र प्राकृतिक इतिहास की वह शाखा है जो मनुष्य जाति का अध्ययन करती है।"[3] होवल के अनुसार "मानवशास्त्र मानव और उसके सारे कार्यों का अध्ययन है। विस्तृत अर्थ में यह मनुष्य की प्रजातियों एवं प्रथाओं का अध्ययन है। इन गतियों में हम सामाजिक व्यवहार का अवलोकन करते हैं और चूँकि मानवशास्त्र प्रथाओं का विज्ञान भी है इसलिये यह एक सामाजिक विज्ञान होने के साथ-साथ एक प्राकृतिक विज्ञान भी है।"[४] मजूमदार तथा मदन के अनुसार "मानवशास्त्र मानव के उद्भव एवं विकास का भौतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोणों से अध्ययन करता है।"[५] टर्नीहाई ने लिखा है "शब्दानुसार मानवशास्त्र मानव का विज्ञान है। मानव-

1 "It may be yet more succinctly described as the 'science of man' which comprises two main divisions—the one which deals with the natural man (hound),the other which is concerned with man in relation to his fellows, or in other words with social man (Socius)" A. C. Haddon : History of Anthropology (1949), p. 2.

2 "Anthropology is the science of groups of men and his behaviour and productions" A. L. Krober : Anthropology (1948), p. 1.

3 "Anthropology is that branch of natural history which deals with the human species." Encyclopedia Britannica, Vol, II, p. 41.

4 "It is the study of man and of all his works. In its fullest sense it is the study of races and customs of mankind. In these customs we see social behaviour and because anthropology is also the science of custom, it is a social as well as a natural science." E. A. Hoebel : Man in the Primitive World (1949), p. I.

5 Anthropology studies the emergence and development of man from the physical, cultural and social point of view. D. N. Majumdar and T. N. Madan : 'An Introduction to Social Anthropology' (1957), p. 2.

शास्त्र सारे मनुष्यों का वर्णनीय, उपमाजनक तथा सामान्यात्मक अध्ययन है, जिसके अन्तर्गत मानव शरीर रचना शास्त्र, शरीरशास्त्र एवं मनोविज्ञान तथा वह संस्कृति जो कि उनकी जरूरतों के प्रत्युत्तर में प्रवाहित होती है, आते हैं।"[१]

समाजशास्त्र मानवशास्त्र को इसीलिये लेने को विवश है। यदि वह उसे स्वीकार नहीं करे, तो वह मनुष्य का अध्ययन भी नहीं कर सकेगा।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका ने मानवशास्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है: यह प्राकृतिक इतिहास की वह शाखा है, जिसमें मनुष्य-योनि का अध्ययन किया जाता है।

होबेल के अनुसार इसमें मानव और उसके कार्यों का अध्ययन होता है। इसमें जातियों और रीति-रिवाजों का अध्ययन होता है। रीति-रिवाजों में सामाजिक आचरण प्रगट होता है। इसीलिये मानवशास्त्र न केवल सामाजिक विज्ञान है, वरन् वह प्राकृतिक विज्ञान भी है।

मजूमदार और मदन ने मानवशास्त्र को मानव के भौतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का अध्ययन स्वीकार किया है।

मनुष्य का विज्ञान ही मानवशास्त्र है, ऐसा टर्नें-हाई का मत है। इसमें मनुष्य शरीर रचना, बनावट, मनोविज्ञान, संस्कृति तथा उसकी आवश्यकताओं से प्रसूत जो भी कुछ है, समा जाता है।

इस प्रकार हमारे सामने यह स्पष्ट होता है कि मानवशास्त्र अपने आप में पूर्ण होकर भी समाजशास्त्र से आवश्यक रूप से संपृक्त है, इसीलिये हमने इस विषय को प्रमुखता दी है। मानवशास्त्र की मनुष्य की संस्कृति के अध्ययन के लिये विशेष आवश्यकता पड़ती है। अब समाजशास्त्र का व्यापक प्रभाव देखना आवश्यक है।

समाजशास्त्र का कार्य है मानव समाजों और सामाजिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली और स्वरूप का अध्ययन करना। समाज में अनेक प्रकार के कार्य व्यापार होते हैं। सामाजिक जीवन और सामाजिक मिलन की अपनी

---

1 "Anthropology means literally the science of man. Anthropology is the descriptive, comparative and generalizing study of man as a whole, including the factors of human anatomy, physiology and psychology and the culture which flows from men response to their needs". —Turney-High.

एक प्रकृति होती है, उसकी प्रक्रियाएँ होती हैं। प्रत्येक का एक ढाचा होता है। उसकी जानकारी समाजशास्त्र का ही कार्य है। समाज गतिशील होता है। उसकी गतिशीलता का अध्ययन समाजशास्त्र का एक विशेष अंग है।

समाजशास्त्र का इतिहास एक या दो शताब्दी के अंतर्गत ही रखा जा सकता है। समाज-चिंतन तो प्राचीनतम काल से होता आ रहा है। किन्तु उसका वैज्ञानिक अध्ययन प्राचीन नहीं है। उसकी परिभाषाओं की स्पष्टता, उसका अपना विशेष रूप, विज्ञान के क्षेत्र में उसका साधिकार प्रवेश, यह सब कुछ ही समय की प्रगति है। वस्तुतः समाज के प्रति मानव दृष्टिकोण में परिवर्तन ही समाजशास्त्र के विकास के लिये उत्तरदायी है। पाश्चात्यों का मत है कि यूरोप में समाजशास्त्रीय अध्ययन अपने प्रारंभिक रूप में यूनानी दार्शनिकों ने किया था। प्लूटार्क ने कहा है : प्रकृति ने मनुष्य के हाथ मे उँग-लियाँ बनाई हैं, जो कि अलग-अलग साइज की है। उन्ही से वह अनेक कलात्मक और सुन्दर वस्तुएँ तथा औजार बनाता है। एनावसोगोरस ने इसी-लिए मानव बुद्धि और उसके विवेक को हाथो के कारण स्वीकार किया था। किन्तु सत्य इसके बिलकुल विपरीत है। मनुष्य इसलिए बुद्धिमान नहीं है कि उसके हाथ है। पर वह इसलिये बुद्धिमान है कि स्वभाव से ही वह विचारशील है और नये-नये कार्यों के बारे में सोच सकता है। उसने अपने इसी स्वभाव के कारण औजार बनाये हैं।

इस दृष्टि से भारत में भी बहुत विवेचन हुआ है, बल्कि कहीं अधिक गंभी-रता उसमें पाई जाती है। परन्तु नया अध्ययन उससे कुछ भिन्न ही है। यूनानी सोफिस्टो ने प्रकृति और परम्परा के बीच एक ही भेद छाँटा था जिससे वे प्रकृति और समाज के नियमों में विभेद करते थे। सामाजिक व्यवस्था उनके अनुसार सामाजिक रचना थी और इसलिये वे उसका वैज्ञानिक अध्ययन नहीं कर पाते थे।

उनका मुख्य लक्ष्य वैज्ञानिक अध्ययन न होकर एक क्रान्तिकारी नैतिकता की स्थापना करना था। उनके उपरांत प्लेटो और एरिस्टॉटिल ने अपने महान निष्कर्ष प्रचलित किये और प्रमाणित किया कि मानव पूर्णता की ओर अग्रसर होना चाहता है। यह उसकी सहज परिस्थिति है और यही समाज है। समाज इस प्रकार व्यक्ति से पहले आता था। ऐतिहासिक वैविध्य और पतन उस पर प्रभाव डालते हैं, परन्तु उसका मुख्य ढाँचा, अनेकों की जन्मजात प्रवृत्तियों पर निर्भर रहता है। पारस्परिक सम्बन्ध उसकी मुख्य शक्ति है।

न्याय के आधार पर सामाजिक व्यवस्था एक सुचारु रूप से प्रतिपादित होती है। इसमें सशक्त का अशक्त पर अत्याचार या दमनमात्र प्रगट नहीं होता, परन्तु इसके पीछे एक सजीव समाज के ऐक्य का सिद्धांत भी रहता है। इसमें सामाजिक प्राणी मिलकर रहते हैं।

प्राचीनकाल में प्रारंभ में धार्मिक व्याख्याओं से समाज को समझने की चेष्टा की थी। इन लोगों ने उसे उससे दूर करके प्रकृति पर निर्भर किया और राज्य और समाज के बीच रेखा खींचने की भी चेष्टा की।

कॉम्टे को समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है। उसने इसको सामाजिक भौतिक-शास्त्र के समान माना। उसके अनुसार समाजशास्त्र का कार्य दूसरा था। वह था प्रकृति, प्राकृतिक कारणों और उन प्राकृतिक नियमों को खोजना जिनसे समाज चलता है। उसने इतिहास, राजनीति, और अर्थशास्त्र को अलग किया और तब वस्तु-सत्य पर दृष्टिपात किया। ज्योतिष और रसायनशास्त्र से भी उसने इस शास्त्र का अध्ययन अलग किया। उसका विश्वास था कि समाजशास्त्र प्रगति की गतिविधि को पहले से परिलक्षित कराने में समर्थ हो सकेगा। उसने समाजशास्त्रीय विकास पर अधिक बल दिया।

प्राचीनकाल में भी समाज का अध्ययन हुआ था; किन्तु उसके अपने पैटर्न बन जाते थे। यूनानी दार्शनिक समाजशास्त्र को प्रायः राजनीति के साथ लेते थे। हमारे भारत में अर्थ के अन्तर्गत इन सब विषयों का अध्ययन होता था। धर्मशास्त्र और जरा बड़े पैमाने पर इन समस्याओं पर विवेचन करते थे, किन्तु प्रायः परम्परा को ही आधार बना लिया जाता था। समाज-शास्त्र अपने आप में अलग कुछ नहीं माना जाता था। समाजशास्त्र में वस्तुतः वे सब विषय आते हैं जो मानव से सम्बन्धित है। किन्तु उनका सामाजिक स्वरूप ही वस्तुतः इसका असली रूप है। हमारे लिये गणित भी समाजशास्त्र के अन्तर्गत आ सकता है। किन्तु इसमें गणित के जोड़ बाकी और फार्मूला नहीं आते। इसमें हम गणित का समाज पर पड़ा प्रभाव ही लेते हैं। गणित के उच्च स्तरीय विवेचन ने अब सापेक्षता सिद्धान्त के अन्तर्गत यह दिशा दी है कि काल सापेक्ष है और अविभाज्य है। ऐसे सिद्धान्त का हमारी विचारधारा पर सीधा प्रभाव पड़ता है। अतः यह समाजशास्त्र के अन्तर्गत आने वाला विषय है। समाजशास्त्री सब विषयों को अपने भीतर आत्मसात कर लेता है, किन्तु उसका अपना एक क्षेत्र है—और वह उसकी वैयक्तिकता है। इसमें अर्थशास्त्र, राजनीति, मनोविज्ञान और अन्य विषय

अपना-अपना योग देते हैं, किन्तु उनका सामाजिक रूप ही हमारे लिये समाज-शास्त्र बन पाता है।

कुछ लोगों के अनुसार ऐसा मत गलत है। उनके अनुसार यद्यपि यह ठीक है कि समाजशास्त्र सारे विषयों से लेता है, और प्रगट रूप में यह ठीक भी लगता हो, परन्तु सामाजिक सम्बन्धों पर ध्यान केन्द्रित करने के कारण समाजशास्त्र अपना अलग स्थान बना लेता है, भले ही उसका अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध क्यों न हो। एक मतानुसार समाजशास्त्र समस्त सामाजिक सम्बन्धों में मानव-विज्ञान है, उसका समन्वय और साधारणीकरण है। जब अर्थशास्त्र, इतिहास और राजनीतिशास्त्र मानव के सामाजिक व्यवहारों की व्याख्या करने में असमर्थ रहे तब, कुछ के मतानुसार, समाजशास्त्र का उदय हुआ। इससे स्पष्ट हो जाता है कि न केवल समाजशास्त्र एक विज्ञान है, वरन् वह एक स्वतंत्र विज्ञान है, जिसका अपना अलग महत्त्व है।

अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति समाजशास्त्र मानव के उद्देश्य पूर्ण व्यवहार (Purposive Behaviour) से सम्बन्ध रखती है। रसायनशास्त्र और भौतिकशास्त्र इत्यादि विज्ञानों में ऐसा हमें नहीं मिलता। मनुष्य सारे संसार में विचित्र है। वह पशुओं से भिन्न है। मानव के कार्य व्यापारों की सीमा नहीं है। वह वास्तव में बड़ा जटिल लगता है। उसके समाज की व्याख्या और भी अधिक जटिल है। जागरूक चेतना वाले मनुष्यों का समुदाय ही समाज का निर्माण करता है। व्यक्ति से व्यक्ति के सम्बन्ध निश्चित होते हैं। मानवों का संगठन क्रमशः हुआ है। मानव के इस सामाजिक विकास का क्रम से अध्ययन उसकी व्याख्या और वर्णन ही समाजशास्त्र के विषय हैं।

के. यंग के मतानुसार समाजशास्त्र मानव समुदायों में व्यक्तियों के आचरण का अध्ययन है। वह किसी एक व्यक्ति से बनने बिगड़ने वाला सम्बन्ध नहीं है, वरन् वह अधिकाधिक के पारस्परिक सम्बन्धों को लेकर चलता है। इसीलिये गिलिन ने कहा है कि जीवित व्यक्तियों के संसर्ग संपर्क में जो अन्तःप्रक्रियाएँ होती हैं वही समाजशास्त्र का विषय हैं। मानव अपने व्यवहारों में एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। यह अन्तः प्रक्रियाएँ (Interactions) ही महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं।

समाज का निर्माण जनसंख्या, संगठन, काल, समय और स्वार्थों द्वारा होता है। जनसंख्या में स्त्री पुरुष दोनों आ जाते हैं। संगठन में श्रम इत्यादि आते हैं। स्थान का भी अध्ययन के लिये काफी महत्त्व है, क्योंकि मनुष्य का

वैविध्य अनेक कारणों पर निर्भर होता है । अतः हम स्पष्ट ही देखते हैं, कि समाजशास्त्रियों में व्याख्यागत भेद भले ही दीख पड़ते हों; किन्तु उसकी व्याख्या में मूलगत भेद नहीं है । प्रायः सब ही समाजशास्त्र की एक ही व्याख्या करते हैं, जो ऊपर से अलग लगने पर भी वास्तव में उसी मार्ग पर ले जाती है ।

मैक्स वैबर के मतानुसार केवल सामाजिक व्यवहार का अध्ययन ही समाजशास्त्र है । इसके अतिरिक्त अन्यों को छोड़ देना चाहिए । वे सब विषय समाजशास्त्र के बाहर रखने चाहिए । सामाजिक व्यवहार रूप वह सामाजिक सदस्यों के उस कार्यकलाप को मानता है, जिसे करने के लिये वे प्रेरित होते है । दुर्खीम और हॉबहाउस इस प्रकार के संकीर्ण विभाजन को असंभव मानते हैं । सभी समाज विज्ञान परस्पर एक दूसरे पर आश्रित हैं, निर्भर हैं । अतः ऐसी रेखायें नहीं खींची जा सकतीं । प्रत्येक विज्ञान अपने विशेष विषय का अध्ययन करता है, किन्तु समाजशास्त्र मानव व्यवहार को समस्त में से लेकर देखता है । समाजशास्त्र विभिन्न विषयों का सम्बन्ध स्थापित करता है ।

दुर्खीम के मतानुसार—

(१) भौगोलिक पर्य्यावरण के आधार पर मनुष्य जाति के टाइप, घनत्व और जनसंख्या के रूप का अध्ययन होता है । इसमें जनसंख्या, प्रकृति पर निर्भर होती है । अतः प्रकृति का भी अध्ययन आवश्यक होता है ।[१]

(२) इसमें कला, धर्म, नीति, नैतिकता, अर्थशास्त्र इत्यादि आते है । विषयों की बहुलता के कारण सांगोपांग अध्ययन करने को उन्हें अलग-अलग करके देखा जाता है ।[२]

(३) इसमें अन्य सामाजिक विज्ञानों में प्राप्त सामान्य समस्याओं और नियमों का अध्ययन किया जाता है ।[३]

हॉबहाउस ने तो सब सामाजिक विज्ञानों के मिश्रण को ही समाजशास्त्र माना है । किन्तु सबका अध्ययन करने के पूर्व, किसी एक विषय का अध्ययन कर लेना आवश्यक है । इसी मे विषय की जानकारी प्राप्त करने में सफलता मिलती है ।

---

१ यह Social Morphology कहलाता है ।

२ यह Social Physiology कहलाता है ।

३ यह General Sociology कहलाता है ।

किंतु यह दोनों ही मत पूर्णतया उचित नहीं लगते । जिस प्रकार संकीर्णता नहीं की जा सकती उसी प्रकार समस्त को भी नहीं लिया जा सकता । प्रत्येक का विशेष अध्ययन और सबका सामाजिक रूप देखना दूसरी बात है । अतः इन दोनों को मिला कर देखना नितांत अनावश्यक है । विशेष अध्ययन में प्रत्येक पक्ष अपनी बात अधिक कहता है । अंतिम निष्कर्ष निकालने के लिए हमें अनेकों पक्षों में संतुलन करना आवश्यक है ।

समाजशास्त्र सामाजिक विज्ञानों के अंतर्गत ही आता है; क्योंकि इस विषय में भी हम उन्हीं की भाँति नियम निश्चित कर सकते हैं । भौतिक विज्ञान की तुलना मे सामाजिक विज्ञान सीमित होता है । इसमें हम विषय का एक कायदे से अध्ययन करते हैं । हम किसी बात को उसके पूर्वापर के सम्बन्ध से अलग करके नहीं देख सकते । किसी भी वस्तु का नियमपूर्वक अध्ययन ही उसको विज्ञान की संज्ञा दिलाता है । विज्ञान का प्रारम्भ और अंत कुछ मापदण्डों मे होता है । किंतु समाजशास्त्र का सम्बन्ध मानव प्रकृति से है, जिससे किसी मापदण्ड मे नहीं नापा जा सकता । इसीलए वैज्ञानिक इसे विज्ञान मानने मे अस्वीकार करते हैं । किंतु ज्ञान दो प्रकार से विभाजित किया जाता है—एक गुणात्मक (Qualitative) और दूसरे मात्रात्मक (Quantitative) । समाजशास्त्र में मानव ज्ञान को समाजमान (Sociometry) मे मापा जाता है । इसीलिए इसको विज्ञान मानना ही उचित है ।

विज्ञान का उद्देश्य है ज्ञान की सीमा का स्पर्श करना गुणात्मक और मात्रात्मक—दोनों प्रकार के अध्ययन से किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । समाजशास्त्र में इन दोनों को ही अंतर्भुक्त कर लिया जाता है ।

समाजशास्त्र में कुछ कायदे या पद्धतियाँ (Methods) अपनाई जाती हैं । विज्ञान में चार पद्धतियाँ होती हैं—(१) एक आधार भूमि जिसे मान लिया जाता है (Hypothesis) (२) प्रयोग (Experiment) (३) निष्कर्ष (Deduction) और (४) नियम (Law)

सामाजिक विज्ञान पर प्रयोग लागू नहीं किया जाता, क्योंकि उसमें वह प्रगट रूप से देखा नहीं जा सकता । मानव प्रकृति इस प्रकार किसी भी प्रयोग के आधीन नहीं आ सकती, क्योंकि मानवों की अंतःप्रक्रियाएँ इस प्रकार प्रयोगों के द्वारा नहीं जानी जा सकती । इसीलिये प्रयोग पद्धति यहाँ हमें लाभ नहीं पहुँचा सकती ।

समाजशास्त्र का विषय बहुत ही उलझा हुआ है । उसमें अन्तर्मुखी तथा

बहिर्मुखी दोनों के वस्तु सत्य हमारे सामने प्रस्तुत होते है। उनका अध्ययन इसीलिए अत्यन्त कठिन होता है।

भौतिक विज्ञान पर हम किसी भी पद्धति को लागू कर सकते हैं, किन्तु सामाजिक विज्ञान में कई कठिनाइयाँ सामने आती हैं। पद्धतियों को प्रमुख रूप से दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है : सामान्य और विशेष।

एल्वुड के मतानुसार पाँच पद्धतियाँ हैं :

(१) तुलनात्मक (Comparative) पद्धति,
(२) ऐतिहासिक (Historical) पद्धति,
(३) अनुवीक्षण (Survey) पद्धति,
(४) निष्कर्ष (Deductive) पद्धति,
(५) दार्शनिक मतनिर्धारण (Philosophical assumption) पद्धति।

चैपिन ने दूसरा विभाजन प्रस्तुत किया है—

(१) ऐतिहासिक पद्धति (Historical)
(२) सांख्यिकीय पद्धति (Statistical)
(३) कार्यक्षेत्र सर्वेक्षण पद्धति (Field work observation)

हार्थ ने पाँच और भी पद्धतियाँ बतायी हैं—

(१) सामान्य बुद्धि पद्धति (Commonsense)
(२) ऐतिहासिक पद्धति (Historical)
(३) म्यूजियम सर्वेक्षण पद्धति (Museum Observation)
(४) प्रयोगात्मक पद्धति (Fxperimental)
(५) सांख्यिकीय पद्धति (Statistical)

प्रायः यह मतभेद वाह्य रूप सम्बन्धी ही है।

समाजशास्त्र मे हमें वर्तमान समाज का अध्ययन करना पड़ता है। वर्तमान संस्थाओं और उनकी कार्य-प्रणालियों का अध्ययन किया जाता है। समाज में जो हो रहा है उस सबको दृष्टि के अन्तर्गत रखा जाता है। इसलिये हमें अतीत के विषय में भी जानना पड़ता है। ऐतिहासिक प्राचीन लेखों से सहायता लेनी पड़ती है। उनकी सहायता से हम निरंतर होते परिवर्तन को जान लेने की चेष्टा करते है। अतीत और वर्तमान के भेद हमारे सामने स्पष्ट हो जाते हैं। इतिहास हमें बताता है कि बहुत सी बातें अपना रूप बदल कर किस प्रकार नयी बन जाती है, या रूढि के रूप में ही बनी रहती है। परन्तु हमारे पास जो इतिहास के आलेख है, उनमें भी कई प्रकार की कमियाँ हैं।

प्राचीन इतिहास प्रायः राजाओं का वर्णन करते हैं। उनमें जनसाधारण और समाज के बहुजनों का उल्लेख कम ही मिलता है। दूसरे वे वर्णन किसी विशेष वर्ण या वर्ग द्वारा किये गये हैं, अतः उनमें हमें निष्पक्षता के दर्शन प्रायः ही नहीं होते। इसीलिये अतीत के समाज के विषय में हमारी जानकारी बहुत ही कम हो पाती है। इसीलिये केवल ऐतिहासिक आलेखों के अध्ययन की पद्धति को अलं नहीं कहा जा सकता। प्रायः ही चाटुकार दरबारियों ने अपने शासकों को संतुष्ट करने के लिये झूँठी-झूँठी बातें लिख दी हैं।

तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग पहले मानवशास्त्रियों ने किया और बाद में इसको समाजशास्त्रियों ने अपनाया। इस पद्धति के अन्तर्गत दो समाजों की तुलना करते हुए अध्ययन किया जाता है, जिसमें मानव जीवन के विभिन्न रूप, विकास के वैविध्य इत्यादि को लिया जाता है। यह समानताएँ और असमानताएँ हमें समाज के अध्ययन के विषय में एक सहायता देती हैं। सांस्कृतिक आदान-प्रदान को जानने के लिये यह एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है। इसी के अन्तर्गत हमें प्राचीन काल की वस्तुओं को खोजने वाले पुरातत्व-वेताओं के भी दर्शन होते हैं, जो आधुनिक तथा प्राचीन का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। समाज विकास में सभ्यता और संस्कृति के स्तर विभेदों की ओर इन लोगों ने ध्यान दिलाया है। इन लोगों की कार्य-प्रणाली वैज्ञानिक ढंग से ही चलती है। इनका अध्ययन बड़े ध्यान से होता है।

अनुवीक्षण पद्धति में कार्य-क्षेत्र में जाकर जाँच करनी पड़ती है और तथ्य एकत्र करने पड़ते हैं। उन तथ्यों के एकत्रीकरण के उपरांत शोधकर्ता अपनी व्याख्या से उनका विभाजन करके परिणाम निकालता है। अनुसंधान-कर्ता स्वयं कार्य-क्षेत्र में जाता है और उसी विशेष समाज में घुल-मिल जाता है। उस समाज की जानकारी प्राप्त करता है। इसी को तथ्य एकत्र करने का सर्वश्रेष्ठ साधन माना जाता है। किन्तु इसमें एक कठिनाई आती है। अनुसन्धानकर्ता को समाज विशेष के किसी व्यक्ति को अपने साथ लेना पड़ता है। उसकी सहायता से अपना कार्य पूरा करना पड़ता है। इसमें अनुसंधान करने वाले की विद्वत्ता से भी अधिक आवश्यक होती हैं—उसकी सच्चाई, उसकी बौद्धिक निष्पक्षता, दूरदर्शिता, सामाजिक प्रक्रियाओं की भीतरी बातों को देख लेने वाली दृष्टि। उसकी कल्पना को संयमित होना आवश्यक है। उसे किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रहों से काम नहीं लेना चाहिये और अपने विचारों के चश्मे में से नये तथ्यों को ग्रहण करना उसके लिये उचित नहीं है।

सर्वेक्षण पद्धति दो प्रकार की होती है। एक में अनुसंधानकर्त्ता सीधे ही बातचीत करता है। दूसरी में वह किसी के माध्यम से बातचीत करता है।

किंतु प्रायः यह पद्धति एक दोष के वशीभूत होती है। अनुसंधानकर्त्ता की अपनी भी एक विचारधारा होती है और इसलिये वह प्रायः ही पूर्वाग्रह बनाये रखता है। प्राप्त तथ्यों को वह मनोनुकूल रूप में ही ग्रहण करता है। पूर्वाग्रह जातीय, धार्मिक, वर्ण संबंधी या अनेक प्रकार के हो सकते हैं।

निर्धारण (Inductive) पद्धति में सामान्य से विशेष की ओर गमन किया जाता है। अनेक सामान्य समाजशास्त्रों में तथ्यों को देख कर विशेष निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सामान्य निष्कर्ष के आधार पर विशेष के विषय में भी वही स्वीकार कर लिया जाता है। किन्तु मानव स्वभाव में भेद होता है। इसके विपरीत जब विशेष से सामान्य निष्कर्ष (Deductive) निकाला जाता है, तब अनुसंधान-कर्त्ता का क्षेत्र सीमित रह जाता है। कुछ का अध्ययन करके औसत रूप से उसे सबके बारे में मान लिया जाता है। इसलिये आवश्यक यह है कि दोनों ही पद्धतियों को अपनाने से जो तथ्य निकलें उन्हीं को अधिक महत्त्व दिया जाये। इनको अलग अलग करके देखना समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिये हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

दार्शनिक मत-निर्धारण पद्धति में हम अतीत के दर्शनों की सहायता लेते हैं। इस प्रकार भी अनेक मत बनाये जाते हैं। किन्तु प्रत्येक संगठन, संस्था और समाज में हम इस प्रकार गहराई से अपनी पैठ करना कठिन ही पाते हैं। किन्तु इसमें अनुसंधान-कर्त्ता का अपना दार्शनिक मतनिर्धारण सामने आ जाता है और वह उसी के आधार पर सारी व्याख्या करता चला जाता है।

सांख्यिकीय पद्धति में अंकों और संख्याओं के आधार पर अध्ययन किया जाता है। प्रायः यह पद्धति अपने गणित के ठोस आधार के कारण अधिक प्रचलित होती जा रही है। किन्तु इसका समाजशास्त्र में क्षेत्र अधिक व्यापक नहीं है। जन-संख्या, तथा ऐसे ही विषयों तक प्रायः इसकी पहुँच है। किंतु यह प्रायः मात्रात्मक अध्ययन है और इसका गुणात्मक अध्ययन से अधिक संबंध स्थापित नहीं हो सका है। जब तक मात्रात्मक अध्ययन के साथ अच्छी व्याख्या नहीं होती, तब तक संख्या और अंक अधिक समर्थ नहीं बन पाते।

म्यूजियम सर्वेक्षण पद्धति में अनेक अतीत की वस्तुओं को संग्रहालय में एकत्र करके विशेषज्ञों द्वारा वर्त्तमान-कालीन वस्तुओं से उनका तुलनात्मक

अध्ययन होता है और वे विकास-क्रम को देखने का प्रयत्न करते हैं। किंतु इस में भी एक कमी रहती है कि कालनिर्धारण कठिन होता है। रेडियो कार्बन तिथि-निर्णय की प्रणाली प्रत्येक वस्तु पर लागू नही होती। अतः विशेषज्ञो में मतभेद हो जाना कठिन नहीं होता।

साधान्य बुद्धि पद्धति में हार्थ यह मानता है कि हम अपनी सामान्य बुद्धि से ही बहुत से तथ्य एकत्र कर सकते हैं। वस्तुतः यही पद्धति प्रत्येक पद्धति के मूल में होती है।

अतः समाजशास्त्रीय अध्ययन वास्तव में बहुत सश्लिष्ट कार्य कहला सकता है। इसमें हमें विभिन्न विज्ञानों से काम पड़ता है।

आधार-भूमि पद्धति (Method of Hypothesis) में हम कोई भी कार्य प्रारंभ करने के पहले अपने मन मे एक धारणाओं की आधार-भूमि बना लेते है। विगत के अनुभवो का ही इसमे सहारा लिया जाता है। किंतु अपने आप में यह भी ठीक पद्धति नही है। यह आवश्यक नही है कि विगत के अनुभवो के जो फलस्वरूप परिणाम हम निकालें, वे हमारे लिये एक ठीक आधार-भूमि ही बन जायें।

मानव-जीवन के समस्त रूप और कार्य-व्यापार एक दूसरे से असंपृक्त नहीं, उनका अन्योन्याश्रित संबंध होता है। किसी को भी अलग करके उसका विशेष अध्ययन किया जा सकता है, किन्तु संपूर्ण का अध्ययन अंग विशेष मे सीमित नही हो सकता। आधुनिक शरीर-विज्ञान में डाक्टर लोगो मे कोई कान-विशेषज्ञ होते हैं, कोई आँख-विशेषज्ञ, किन्तु वे संपूर्ण शरीर के विशेषज्ञ नही बन सकते। इसीलिये संपूर्ण का अध्ययन एक व्यापक दृष्टि चाहता है।

समाजशास्त्र का संबंध प्रायः सभी सामाजिक विज्ञानों से है। उसका जीवशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, तथा रसायन और भौतिकशास्त्रो से भी संबंध है।

सामाजिक उत्पादन, वस्तु वितरण, वस्तु-प्रयोग-व्यय, इत्यादि अर्थशास्त्र के विषय होने पर भी समाजशास्त्र के अन्तर्गत आते है। प्रत्येक आर्थिक प्रक्रिया का एक सामाजिक मूल्य होता है।

मानव का अध्ययन होने के कारण समाजशास्त्र के लिये मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। सामाजिक जीवन में मनुष्य किन विचारों से प्रेरित होता है, यह जानना समाजशास्त्र का विषय है। समाज में मनुष्य क्यों रहता

है। उसकी समुदाय प्रवृत्ति, इसके लिए उत्तरदायी है। कुछ के मतानुसार मनुष्य के रूप में दो बातें होती हैं—उसकी प्राणि-चेतना और उसकी सामाजिक चेतना। प्रथम में आनुवंशिक सामर्थ्य होती है, जिसके द्वारा वह परंपरा, रिवाज, इत्यादि को समाज में अपनाता है। सामाजिक चेतना में मनुष्य अपने समस्त सामाजिक कार्य करता है। दोनों ही चेतनाएँ वास्तव में अन्योन्याश्रित होती हैं। व्यक्ति समाज में अपने लिये स्थान बनाता है और इसलिये वह अपने को कुछ झुकाता उठाता है। प्राणि-चेतना प्रवृत्ति (Instinct) से संबंध रखती है। सामाजिक चेतना संपर्क और संसर्ग से उत्पन्न होती है। समाज में मनुष्य किस प्रकार रहे, वह इसी चेतना द्वारा ज्ञात होता है। व्यक्ति में दो प्रकार की प्रक्रियाएँ होती हैं। एक का परिचालन उसके अंतःकरण और प्रवृत्ति द्वारा होता है, दूसरे का पारस्परिक संबंधों द्वारा। उसकी सामाजिक चेतना का संचालन सामाजिक दृष्टिकोण (attitude) द्वारा होता है। व्यक्ति की सामाजिक चेतना पर प्रभाव व्यक्ति की प्राणिचेतना का भी निरंतर पड़ता रहता है। व्यक्ति से व्यक्ति तक जाते-जाते हमें जो उनके व्यवहारो में भेद मिलता है, वह इसीलिये कि प्राणिचेतना में भेद होता है। सामाजिक चेतना ही सबके सामाजिक व्यवहार और क्रिया-कलापों को समाज के अनुकूल बनाती है।

सामाजिक मनोविज्ञान हमारे सामाजिक सम्बन्धों और व्यवहारों की व्याख्या करता है। समाजशास्त्र व्यक्ति के मनोविज्ञान को समाज से सापेक्ष करके देखता है, जब कि मनोविज्ञान व्यक्ति को ही अपना पूर्ण क्षेत्र मान लेता है।

समाजशास्त्र का विधि-विज्ञान (Jurisprudence) से भी संबंध होता है। विधि-विज्ञान में हम कानूनों के बारे में अध्ययन करते हैं। कानून राज्य द्वारा लागू होते हैं। राज्य ही उनका परिचालन करता है। मनुष्यों के अस्तित्व से समाज का निर्माण होता है। समाज बिना मनुष्य के नहीं रह सकता। समाज मनुष्यों से ही बनता है। समाज और व्यक्ति का संबंध आदि काल से ही है। मनुष्यों का जीवन सुचारु रूप से चले इसीलिए समाज बना है। इस व्यवस्थागत अस्तित्व के लिये कुछ आम कानून प्रारंभ से ही बनाये गये हैं। मनुष्य ने समाज में विधियों के अनुसार जीवन व्यतीत किया है। समाज ने ही राज्य को भी बनाया है। राज्य के नियमों को विधि या कानून कहा जा सकता है। सरकार नियमों का प्रतिपालन कराती है।

किन्तु नियम या विधि अपने आप हवा में से नहीं बन जाते। मनु ने तो कहा है कि विधि वेद के अनुकूल हो, परन्तु उससे भी आवश्यक है कि वह देश-विशेष की परम्पराओं का निर्वाह करे। हिन्दुओं के लिये बने नियम मनुस्मृति के आधार पर ही थे। सामाजिक जीवन और परम्पराओं को देखकर ही विधि नियत की जाती है—अन्यथा लोग उन विधियों को स्वीकार नहीं करते। विद्रोह होते हैं।

समाजशास्त्र का नीतिशास्त्र (Ethics) से भी गहरा सम्बन्ध है। नैतिक नियमों और सामाजिक नियमों में संपर्क काफी निकट होता है। किन्तु दोनों में भेद भी वर्तमान होता है। नैतिक नियम बदले नहीं जा सकते, क्रमशः बदलते हैं, किन्तु सामाजिक नियम बदले जा सकते हैं। नैतिक नियमों के पीछे एक प्रकार की धर्म-भावना होती है। अतः उन्हें पवित्र माना जाता है।

प्राणिविज्ञान और समाजशास्त्र का भी संबंध होता है। मनुष्य प्राणी है, जीव है। तभी वह समाज का सदस्य बनता है। व्यक्ति पहले प्राणी होता है, तब होता है सामाजिक। काल उसे बढ़ाता है। मानव-विकास के अध्ययन के लिये हमें प्राणिविज्ञाम का भी अध्ययन आवश्यक होता है; क्योंकि एक दूसरे के लिए दोनों ही आवश्यक हैं। मानव-विकास के साथ ही सामाजिक विज्ञान भी विकसित हुआ है और निरन्तर होता जा रहा है।

समाजशास्त्र का इतिहास से काफी संबंध है। किसी भी समाज और संस्था के अध्ययन के लिये आवश्यक है कि उसका अतीत देखा जाये। इस प्रकार इतिहास और समाजशास्त्र की घनिष्टता स्पष्ट हो जाती है।

२

विज्ञान का दाय : भारतीय समस्या

आज प्रत्येक विषय का अध्ययन करते समय हम विज्ञान की भरसक सहायता लेने की चेष्टा किया करते हैं। और इसीलिये भारत में यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि हम अतीत में भी विज्ञान की उन्नति दिखाने की चेष्टा करने लगे हैं। इसी को पुनरुत्थानवाद कहा जा सकता है। परंतु दूसरी ओर एक अतिवाद है कि भारत में पहले कुछ भी नहीं था, जो आया वह बाहर से ही आया है। यूरोपीय विद्वान भारत के ज्ञान का स्रोत पहले यूनान को मानते थे, और अब विवश होकर वे मैसोपोटामिया को भारत का गुरु बताने लगे हैं।

हमारे सामने दोनों प्रकार की बातें हैं। एक ओर अति-राष्ट्रीयता है, दूसरी ओर राष्ट्रीय-तिरस्कार। किन्तु हमें किसी भी ऐसी विचारधारा से उन्मेलित होने की आवश्यकता नहीं है।

किसी भी देश की प्रौद्योगिक उन्नति (Technological Advancement) का वहाँ के विज्ञान से गहरा संबंध होता है। इस उन्नति से सभ्यता का विकास जाँचा जाता है। लेकिन इससे संस्कृति की जाँच नहीं की जाती। संस्कृति का अध्ययन अन्य आधारों से किया जाता है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का संबंध सभ्यता की उपलब्धियों और उनकी संभावनाओं पर प्रकाश डालना है। अतः आवश्यक हो जाता है कि भारत के अतीत पर दृष्टिपात करें और यह देखें कि भारत ने पहले कितनी उन्नति कर ली थी।

सभ्यता को वाह्य-विकास कह सकते हैं। संस्कृति मानव का आंतरिक विकास है। परन्तु वाह्य और आंतरिक का परस्पर संबंध होता है। हमारी बहुत सी धारणाएँ अपने युग के वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित होती हैं। भारतीय संस्कृति ने अपना श्रेष्ठ लक्ष्य योग को माना है। योग अंततोगत्वा विज्ञान ही है। अन्य देशों में धर्म कला हैं, भारत में उसका ध्येय 'विज्ञान की एक विजय ही है। देखने को लगता है कि यह एक विरोधाभास है, परंतु ध्यान से देखने पर यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।

मनुष्य का विकास आंतरिक हो, यही भारत की चेष्टा रही है। परन्तु उसने वाह्य का भी तिरस्कार नहीं किया था। विकास की ओर भारत ने प्रयत्न अवश्य किया, किन्तु परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि उसे वाह्य विकास का अधिक अवसर और अवकाश प्राप्त नहीं हुआ। राजनीतिक और सामाजिक कारणों ने भारतीयों के विकास को गतिरुद्ध कर दिया। इसके बावजूद भी भारत ने मानव के अन्तर का विकास करने की चेष्टा की थी।

पश्चिम ने एटम बम बनाया है। पूर्व के लोगों ने सुना और आश्चर्य किया। कुछ दिनों बाद लोगों को उद्जन बम के बारे में पता चला, जो अपनी भयंकरता में अणुबम से कई गुना आगे बढ़ा हुआ था। अभी पूर्व इसे पूरी तरह से रमा भी नहीं पाया था, कि सहसा आकाश में मानव के फेंके हुए नकली उपग्रह घूमने लगे और रॉकेट चन्द्रमा की ओर जाने लगे। विज्ञान की एक उन्नति ने एक्सरे, बेतार के तार, इत्यादि सब अन्वेषण पीछे छोड़ दिये। लेकिन फिर भी भारत में एक आवाज उठी : अपने यहाँ पहले यह सबकुछ था। समय ने उसे नष्ट कर दिया।

चित्र १—ब्रह्मा की तश्तरियाँ। संख्या पूरी नहीं है।

प्रश्न आज की बात का नहीं है, इसमें प्राचीन भारत की संस्कृति और इतिहास का प्रश्न है। भारत के शास्त्रों में अग्न्यास्त्र, वायव्यास्त्र, ब्रह्मास्त्र इत्यादि भयानक फेंके जाने वाले हथियारों का जो वर्णन आया है, वे क्या किसी समय इस देश के मनुष्यों के पास सचमुच थे? या वह सब मनुष्य की कल्पना है? मनुष्य की कल्पना कितनी हो
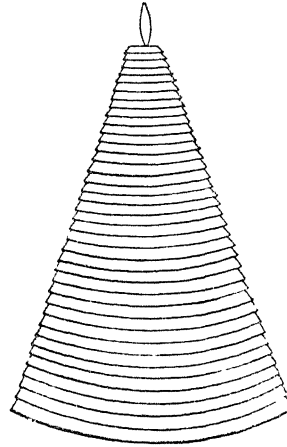
सकती है ? इसका कोई अंत नहीं है। यदि मुझसे कोई पूछे कि संसार में चलचित्र (सिनेमा) की कल्पना सबसे पहले किसने की तो मैं कहूँगा कि हिन्दी के ही एक लेखक ने। लेकिन, क्योंकि हिन्दी के लेखक की उस समय बिल्कुल ही पूछ नहीं थी, इसलिये उसका उल्लेख भी किसी ने नहीं किया।

उस हिन्दी के लेखक का नाम था—देवकीनन्दन खत्री। उसने चन्द्रकान्ता संतति में इन्द्रदेव के तिलिस्म में सिनेमा के ही प्रकारान्तर की कल्पना विगत शताब्दी में की थी। उस समय यूरोप में सिनेमा नाम की कोई चर्चा नहीं थी। यह सब जानते हैं, कि उस समय संसार में सिनेमा नहीं था, लेकिन देवकी नन्दन खत्री ने कांच की दीवार के पीछे रात में बिजली के जोर से पुतलों में चाल भरकर पूरा महाभारत का नाटक कर दिखाया। एच. जी. वैल्स को इंगलैंड का वैज्ञानिक कथाकार माना जाता है। वह लिखता था, कल्पना करता था, और वैज्ञानिक वैसी ही चीजें ईजाद करते थे। तो यह स्पष्ट है, कि कल्पना हो सकती है। कल्पना अनन्त होती है, पर उसके लिये भी आधार होना चाहिये। तो पहले आधार क्या था ? आधार था पशु-पक्षी, प्रकृति आदि का साम्य। पक्षी उड़ता है, तो उड़नखटोला भी उड़ने लगा।

लेकिन हमें इसे इस प्रकार सहज नहीं समझना चाहिये। पहले हमें भारतीय विज्ञान की उपलब्धियाँ देखनी होंगी। पुरानी किताबों तथा इतिहास में भारत की बहुत सी आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ हमें मिलती हैं।

वेद में वर्णन है, कि अश्वनीकुमार बड़ा अच्छा ऑपरेशन (शल्य-चिकित्सा) करते थे। उन्होंने विश्पला की जाँघ कटने पर सीं दी थी। ऋषि श्वान की अंधी आँखों को उजाला दिया था। च्यवन की जवानी लौटायी थी। उपनिषद् में नारद ने सर्प-विष चिकित्सा इत्यादि अनेक विद्यायें सीख डाली थीं।

रामायण में अस्त्रों की बात छोड़ दें; तब भी नल-नील जैसे जबर्दस्त इंजीनियर थे, और सुषेण जैसा अच्छा वैद्य था।

महाभारत में शिखण्डी का सैक्स बदला था। (क्या स्थूणाकर्ण यक्ष कोई वैद्य था ? क्या तब इतना ज्ञान था ?) ईसा के आसपास के युग में, भारत ने सबसे पहले ० (शून्य) की ईजाद की थी। इस क्रान्तिकारी परिवर्त्तन ने संसार के गणित को जबर्दस्त तरक्की की तरफ बढ़ाया। पहले सौ लिखने के लिये यूरोप वाले X को दस बार लिखते थे—XXXXXXXXXX १००० लिखने में तो आफत आ जाती थी। भारत ने तो बिन्दियों में

कमाल कर दिया। न कुछ जोड़ने से संख्या बढ़ा दी। अरब के लोग यहीं से अंक ले गये, जो यूरोप पहुँचे। वे अंक को 'हिन्दसा' कहते थे।

लोग यूक्लिडसे ज्योमैट्री (ज्यामिति) का प्रारम्भ मानते हैं। पर भारत में उपनिषदों और सूत्रों में ही यज्ञभूमि के नापने और निर्माण में त्रिकोण आदि बनते थे। तांत्रिक परम्परा में तो त्रिकोण आदि का ज्ञान और भी बहुत पुराना है। आपस्तंब्र में हमें त्रिकोण का निर्माण बहुत पुराना मिलता है।

आश्वलायन ईसा से बहुत पहले ही ज्योतिष विज्ञान का आचार्य माना जाता था। पालकाप्य पशु-चिकित्सा करता था। पंचाल बाभव्य काम-विज्ञान का अन्वेषक था। हारीत विष-चिकित्सा करता था। बौधायन में रेखागणित के उल्लेख मिलते हैं। लाट्यायन कृमि-शास्त्र (कीड़े मकोड़े के विज्ञान की जानकारी) का पण्डित था। लगध ज्योतिष का पण्डित था। भेड आयुर्वेदाचार्य था। पितामह ज्योतिष का पण्डित था। चरक आयुर्वेदाचार्य था। ईसा से पहले ही इनके अतिरिक्त हमें और भी नाम मिलते हैं। अस्त्र-शस्त्र विद्या (धनुर्वेद) के पण्डित का नाम वृद्ध श्रांगधर मिलता है। शब्द और भाषा विज्ञान के पण्डित थे शाकपूणि और यास्क।

ईसा के बाद भी अनेक पण्डित भारत में हुए। मनुष्य के शरीर की चीराफाड़ी करके उसे भीतर से देखने वाला, संसार का सबसे पहला विद्वान सुश्रुत था। उसी ने शरीर की पहली जाँच की थी। ब्राह्मण था, और इस काम के लिये मुर्दे चुरा कर काटता था। एक दिन पकड़ा जाकर पिटा और पिशाच और राक्षस कहलाया। परन्तु कुछ दिन बाद लोगों ने उसकी महत्ता को समझा। वैद्यों की परम्परा बहुत दिन तक चलती रही। ईसा की पाँचवी छठी सदी में अरब में भारत के वैद्य मनका (माणिक्य) का बड़ा सम्मान हुआ।

ईसवी ४७६ में आर्य्यभट्ट ने संसार में सबसे पहले यह कहा था कि यह पृथ्वी घूमती है और सूर्य्य का चक्कर लगाती है। इस घटना के लगभग १००० बरस बाद ही कोपर्निकस के द्वारा यूरोप को इसका पता लगा। लेकिन यह सिद्धान्त भारत में मान्य नहीं हुआ। लल्ल ने इस तर्क को काटा था। उसने कहा था, कि यदि पृथ्वी घूमती है, तो सबेरे घोंसले से उड़ी चिड़िया को शाम के वक्त अपना घोंसला वहीं क्यों मिलता है? सीधी-सी बात थी, लोगों ने मान ली। उस समय तक पृथ्वी के आकर्षण तथा उसके वायुमंडल के उससे मिले रहने की बात लोग नहीं जानते थे।

लेकिन सन् ११७८ ई० के लगभग भास्कराचार्य हुआ। उसने न्यूटन से ६०० वर्ष पूर्व के लगभग संसार में पहली बार पृथ्वी के आकर्षण के सिद्धान्त को प्रमाणित किया। सम्भवतः इस घटना के २०-२५ वर्ष बाद ही गोरी का हमला न होता, तो खोज बढ़ती पर नया हमला सारी संस्कृति को ही उखाड़ दे रहा था, किताबें जलायी जा रही थी। विज्ञान का काम बन्द हो गया। भारत की शक्ति संस्कृति को बचाने में लग गयी। धर्म के लिये संत भक्ति होने लगे।

किन्तु भारत में इतनी ही खोज हुई हो, ऐसा नहीं है। गणित में यहाँ भारी काम हुआ। अरब-वासियों ने सस्सा बिन दाहर नामक एक भारतीय पण्डित का उल्लेख किया है। दहर विद्या का उपनिषदों में उल्लेख आया है। दाहर भारतीय शब्द है। बिन अरबी शब्द है, जिसका अर्थ है बेटा। सस्सा शायद शशि जैसे किसी शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है, जैसे माणिक्य का अरबों में नाम चलता है मनका। इस सस्सा बिन दाहर ने शतरंज के खेल की ईजाद की थी। शतरंज का नाम कुछ लोग चतुरंग से निकला मानते हैं, जिसका अर्थ है चार हिस्सों से लैस फौज। कुछ लोग कहते हैं कि 'शतानि रंजयति' (सौ का मनोरंजन एक साथ करती है) अतः यह शतरंज है। तो दाहर ने अपनी खोज राजा शिरराम (श्रीराम) को बतायी। राजा ने इनाम माँगने को कहा। उसने माँगा : एक बिसात पर चौसठ खाने हैं। पहले पर एक दाना गेहूँ रखवा दें। दूसरे पर दो, तीसरे पर चार, चौथे पर आठ, और इसी तरह बढ़ाते जायें। राजा ने कहा : यह तो मामूली बात है। पर जब दाने रखे जाने लगे, तो दिवाला निकल गया। पूरे चौंसठ खाने भरने के लिये १८,४४६,७४४,०७३,७०६,५५१,६१५ दानों की जरूरत थी। संसार में गेहूँ की जो पैदावार है, यदि २००० वर्ष की पैदावार भी ली जाये, तो ही वह इसको पूरा कर सकती है।

इस कथा से गणना, अपरिमित संख्या और भारतीयों का अनंत का ज्ञान प्रकट होता है।

किंवदंतियों में इस प्रकार का ज्ञान बहुत दिलचस्पी से प्रकट किया गया है। इसी तरह की कथा है, कि काशी में एक गुम्बद है, जो संसार का मध्य-बिन्दु है। उसमें एक ताँबे की तख्ती है। उस पर तीन हीरे की कीलें जड़ी हुई हैं। उनमें एक पर सोने की ६४ तश्तरियाँ रखी हैं। सबसे नीचे की सबसे बड़ी है। और सबसे उपर की सबसे छोटी। यह ब्रह्मा की मीनार है। वहाँ का पुजारी

दिन रात बैठा, ब्रह्मा के नियमानुसार उन तश्तरियों को एक कीली से दूसरी पर हटा कर रखता है, पर ऐसा वह कभी नहीं कर सकता, कि एक बार भी छोटी तश्तरी, बड़ी वाली के नीचे आ जाये, साइज का ध्यान उसे बराबर रखना पड़ता है। जब एक कील से दूसरी कील पर वह सब तश्तरियों को ऊपर छोटी तथा नीचे बड़ी करके रख देगा, तब प्रलय का समय आ जायेगा। पहली तश्तरी तो एक बार हटाई जा सकती है, पर हर अगली तश्तरी को छोटी ऊपर बड़ी नीचे के क्रम से रखने में हटाने की संख्या बढ़ती ही जायेगी। ६४ तश्तरियाँ हटाने में उन्हें कुल मिलाकर १८,४४६,७४४, ०७३,७०९,५५१,६१५ बार उठायी-धरायी करनी पड़ेगी। और यह संख्या मस्सा बिन दाहर वाली ही है। यदि पुजारी दिन-रात बिना रुके काम करता है और मान लिया जाये, कि वह एक उठायी-धरायी में एक सेकंड लगाता है, तो वर्ष में क्योंकि ३१,५५८,००० सेकंड होते हैं, उसे यह काम पूरा करने में ५८,०००,०००,०००० वर्षों से भी अधिक लग जायेंगे। और आश्चर्य तो यह है, कि आधुनिक वैज्ञानिक भी सृष्टि के लिये यही आयु बताते हैं। वैज्ञानिक गेमाउ ने इस विषय पर बहुत सुन्दर ढंग से लिखा है।

उपर्युक्त वर्णनों से प्रगट होता है, कि भारतीय असंख्य का वर्णन करते थे। इसीलिये हमारे यहाँ कलि ४ लाख ३२ हजार, द्वापर ८ लाख ६४ हजार त्रेता १२ लाख ९६ हजार, तथा सत्ययुग १७ लाख २८ हजार वर्ष तक के माने गये हैं। एक चतुर्युगी ४३ लाख २० हजार वर्ष की मानी गयी। ७१ चतुर्युगी का एक मन्वन्तर माना गया है। १००० चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन और १००० चतुर्युगी की ब्रह्मा की एक रात होती है। इस हिसाब से सृष्टि के इस कल्प के समाप्त होने में, अभी लगभग २ अरब, ३३ करोड़, ३२ लाख, २७ हजार तथा कुछ वर्ष बाकी हैं। स्पष्ट ही यह संख्या पहली से कम है। हमारी संख्या में नील है, आकाश और समुद्र जैसी व्यापकता का बोध। पद्म के दल भी बढ़ाते चले जाइये, अन्त नहीं होगा। शंख बनाना प्रारम्भ करें तो उसकी गोलाई ही पूरी नहीं होगी। यदि उसकी छोर की रेखा नीचे न झुकाई जाय, तो कभी अन्त ही न हो।
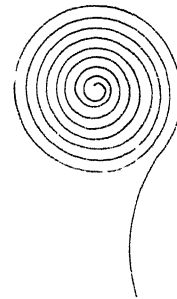
चित्र २

हमारी स्वस्तिका भी अनन्त का ही चिन्ह है। इसके छोर बढाने पर भी कभी मिलेंगे नहीं।[1]
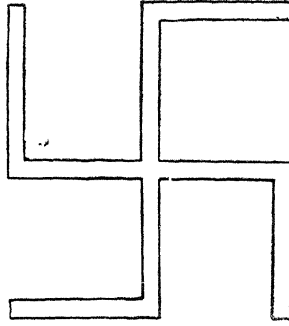
चित्र ३

इसी प्रकार गर्ग संहिता में कथा आयी है कि एक बार कृष्ण अपने गोलोक में थे। उनसे मिलने ब्रह्मा, विष्णु, महेश गये। राधा मिली। इन लोगों ने कहा, कि हम कृष्ण से मिलना चाहते हैं। हम ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। राधा ने पूछा : आप किस सौर-मंडल के ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। यह कह कर राधा ने उँगली के इशारे से कई लुढ़कते गोले दिखाये। ये तरह-तरह के लोक थे, जो जल उठते थे, बुझ जाते थे।

यह कथा बताती है, कि भारतवासी प्राचीन काल में सैंकड़ों सौर मंडलों का होना मानते थे।

गार्गायण के प्रणववाद में कहा गया है कि सात ग्रहों के साथ एक सूर्य को ब्रह्माण्ड कहते हैं। ऐसे ७ ब्रह्माण्डों से एक जगत बनता है। वैसे १००० जगत से एक विश्व बनता है। वैसे डेढ़ करोड़ विश्वों से एक महाविश्व बनता है। वैसे दो शंख महाविश्व एक लोक के बराबर होते हैं। वैसे १ महाशंख

---

१ **स्वस्तिका बहुत प्राचीन चिन्ह है। यह हरप्पा और मोअनजोदड़ो में भी प्राप्त हुआ है। प्राचीन हौलियेगलिथिक संस्कृति (१५००० वर्ष पूर्व) में भी इस चिन्ह को अंकित किया जाता था। कुछ लोगों का मत है कि स्वस्तिका परवर्ती काल में चतुर्भुज गणेश का प्रतीक-चिन्ह थी। स्वस्तिका आज भी ग्राम ग्राम में शुभ चिन्ह मानी जाती है। हिटलर ने अपने को आर्य समझकर ही इसे स्वीकार किया था।**

लोक से एक महालोक बनता है। और वैसे १०० पद्म महालोकों से एक संसार बनता है। यह कहानी बताती है, कि भारतीय प्राचीन काल में यह नहीं मानते थे, कि बस इसी पृथ्वी पर सबकुछ है। और भी असंख्य लोक हैं। यह विचार कितना पुराना है? कैसे बताया जा सकता है। वेद में 'पुरुषसूक्त' में बताया गया है, कि यह सृष्टि कैसे बनी। उसमें जब निर्माण का उल्लेख है तब कहा गया है, कि 'यथापूर्वम कल्पयत' अर्थात् पहले जैसी बनायी। पहले कब? भारतीय चिन्तन ने सबकुछ को साइकिल (चक्र) जैसा माना है। यह चलता है, चलता ही रहेगा। इसीलिये हमारे यहाँ ६० वर्षों का एक चक्र माना जाता है। हर संवत्सर का अलग नाम होता है। जब ६० समाप्त हो जाते है, तब फिर पहले से गिनना शुरू कर देते हैं। इसी मनोवृत्ति के कारण हमारे यहाँ क्रमबद्ध इतिहास भी लिखने की आवश्यकता नहीं समझी गयी। प्राचीनतम पुराणों में भी इतिहास के शिक्षाप्रद भाग को ही समेटा गया है। तो यह 'चक्र' मानना हमारी संस्कृति में उतर गया हैं। यह परंपरा कब से है? चक्र मोहनजोदड़ो में लिपि में आता है। पुराणों में उल्लेख है, कि रावण ने हस्तिनागपुर (हस्तिनापुर) (शायद नागों की पुरानी बस्ती, जिसे कुरुओं ने जीत लिया था) से धर्मचक्र ले जाकर लंका में स्थापित किया था। बहुत बाद में यह रघुवंशी लिच्छविगण में मिलता है। इसे लिच्छवियों से लेकर अशोक ने चलाया। लगभग २२०० वर्ष बाद फिर इसे जवाहरलाल नेहरू ने चलाया है।

अनंत (इटर्निटी) की भावना तो भारत में बहुत प्राचीन है। आइन्स्टाइन ने प्रमाणित किया कि हमारा समय सूर्य की गति के कारण है। हमारी पृथ्वी का जो सूर्य से सम्बन्ध है, उसके कारण ही दिन-रात हैं, और हम इसे समय कहते हैं। यह सूर्य से सापेक्ष है। पर समय इसी में सीमित नहीं है। यह विचार भारतीय जानते थे। पौराणिक कथा है, कि सत्ययुग में एक राजा थे, जिनका नाम था रेवत। उनकी लड़की रेवती को वर नहीं मिला, तो वे सलाह लेने ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के पास गये। वहाँ उस समय महफिल में हाहा और हूहू नामक गन्धर्व गाना गा रहे थे। राजा रेवत भी गाने की समाप्ति की प्रतीक्षा में बैठे रहे। दस पाँच मिनट में गीत खत्म हुआ। ब्रह्मा ने स्वागत करके उनके आने का कारण पूछा। जब राजा ने बताया तो ब्रह्मा हँसकर बोले—तुम जो इस लोक में दस मिनट बैठे रहे, पृथ्वी लोक में तो सत्ययुग और त्रेतायुग बीतकर अब द्वापर लग गया।

यह कथा बताती है कि भारतीय लोग समय की सापेक्षता (रिलेटिव टाइम) की बात जानते थे या अनुभव करते थे।

विज्ञान के नये-नये विचार हमारे सामने आते हैं। विज्ञान के आचार्य कहते हैं, कि समय एक है। मनुष्य उसे भूतकाल, वर्तमान काल, और भविष्यत् काल के रूप में मानता है। पर यह इसलिए कि वह एक साथ तीनों को देख नहीं पाता। पर प्राचीन भारतीय इसे मानते थे, कि कोई आदमी यदि योग साधन कर लेता, तो वह 'त्रिकालज्ञ' अर्थात् तीनों कालों को जानने वाला हो सकता है। यानी मनुष्य का दिमाग इतनी जबर्दस्त ताकत है कि वह समय को उसके अखंड रूप में देख सकता है। पर वह किस 'अखंड समय' को देख सकता है? पृथ्वी और सूर्य के सम्बन्ध के समय को। वह ५२२ दिन के साल वाले ग्रह से सूर्य के सम्बन्ध को नहीं जान सकता, वह तो ३६५ दिन के साल वाले ग्रह पृथ्वी से सूर्य के सम्बन्ध में होने वाले समय को जान सकता है।

फ्रायड ने बताया है, कि मनुष्य के दो दिमाग होते हैं। वह जो चेतन है। हम उसी से सब काम करते हैं। उसी में विवेक होता है। वही शरीर का राजा है। वह रोज आराम करता है। दिल, जिगर, फेफड़े, आँतें, नसें, तिल्ली यह सब हमेशा काम करते रहते हैं। पर दिमाग रोज सोता है। इस दिमाग के साथ एक उपचेतन भी है। उसमें बहुत से अक्स उतरते हैं। वे रात को सपने बन कर दीखते हैं। दूसरा सिद्धांत यह भी है, कि जब विवेक सोता है, तब मालिक की गैर-हाजिरी में भी नौकर काम करते रहते हैं। उस समय उनमें तारतम्य नहीं होता। तभी ऊटपटाँग सपने दिखाई देते हैं। उस समय भी दिमाग बाहरी दुनिया के चित्र अपने भीतर लेता रहता है, पर उनमें कोई खास कायदा नहीं होता। बेतरतीबी होती है।

राइहन के मत से सपनों में कभी-कभी भविष्य की बातें भी आ जाती हैं। यह दिमाग इतना जबर्दस्त है कि इसे भौतिक-विज्ञान के नियमों से आँका नहीं जा सकता।

भारतीय योगी इस बात को प्रमाणित कर चुके है। वे अपने दोनों दिमागों पर काबू कर चुके हैं। वे आग पर चल सकते हैं, हवा में पैर धर सकते हैं, पानी पर चल कर दिखा चुके हैं। विज्ञान के इस क्षेत्र में भारत ने सबसे अधिक उन्नति की है, जिसे यूरोप वाले अब देख रहे हैं। पर योग साधन क्या है? इसमें ईश्वर को मानना जरूरी नहीं है, क्योंकि बौद्ध और जैन जो परमात्मा को नहीं मानते, बड़े योगी हो चुके हैं। योग का कोई एक

सिद्धांत नहीं है, न इसका कोई एक फार्मूला है। प्रायः तो योगी मानते हैं, कि शरीर में षट् चक्र होते हैं। सिर में एक सहस्र दल कमल हैं, जिसमें शिव रहते हैं। पार्वती या शक्ति या शिवा मनुष्य की नाभि के पास रहती हैं, वह कुंडलिनी है, अर्थात कुंडली मारे एक नागिन के रूप में रहती है। मनुष्य की गुदा के पास एक कालसूर्य होता है। वह शिव यानी उस कमल से टपकते अमृत को जलाया करता है। मनुष्य की नाड़ियाँ तो असंख्य हैं, पर तीन मुख्य हैं। इडा, पिंगला और सुषुम्ना। दायीं सांस और बायीं सांस, इडा और पिंगला के कारण चलती हैं। एक सूर्य की प्रतिनिधि है, एक चंद्र की। इसीलिए इन नाड़ियों को 'ह' और 'ठ' भी कहते हैं। इन दोनों को मिलाने की क्रिया को (योग को) हठ-योग कहते हैं। इनके मिलने से बीच की नाड़ी सुषुम्ना जाग उठती है। सुषुम्ना के जागने पर वह नागिन कुण्डलिनी मुँह खोल कर सीधी खड़ी हो जाती है और तब वह ऊपर से टपकता अमृत पीती हुई ऊपर की ओर चढ़ती है और अंत में परम शिव से मिल जाती है। वह मनुष्य की सबसे बड़ी पहुँच है। पानी पर चलना, आग बरसाना, हवा में पैरना, समाधि लगा जाना, यह सब तो नीचे दर्जे की चीजें हैं। इस लाइन में यह बातें बहुत ही थोड़ी शक्ति की मानी जाती हैं। जिसको शिव-शक्ति मिल जाती है, वह असली परमात्मा बन जाता है।

यह विज्ञान राहिन और फ्रायड से आगे है। पर इसका कोई स्टैंडर्ड फार्मूला नहीं है। योगवाशिष्ठ में कुंडलिनी का उल्लेख है, पंतजलि में हठ-योग का नाम भी नहीं। अनुगीता में केवल मूलाधार चक्र का नाम है। गोरखनाथ छह से कहीं ज्यादा चक्र इस शरीर में मानते थे। वे यह भी मानते थे, कि शरीर के भीतर ही एक लिंग है, और एक योनि है। इन्हें वहीं मिलाना चाहिए, तभी कुण्डलिनी जागेगी। प्रायः हजार वर्ष तक के शिव लिंगों की मूर्तियों में योनि (जिसे अब जलहरी कहते हैं) पर एक सांपिन बनी रहती है। गोरथनाथ स्थूल स्त्री से सम्बन्ध ही नहीं चाहते थे। अन्यत्र योगियों में ५३ चक्रों का भी उल्लेख है। मत्स्येंद्र और जालंधर न केवल विचित्र आसन करते थे, उनके विचार भी और थे।

योग का यह विषय बहुत बड़ा है। संक्षेप में इतना ही कि भारत न मैस्मेरिज्म, पैरासाइकॉलॉजी, साइकॉलॉजी, इत्यादि के रूप में योग विज्ञान का विकास किया था।

क्योंकि योग एक विज्ञान है, जिसमें मनुष्य की उन्नति है, सो इसे ब्राह्मण

धर्मी, वैष्णव, वैदिक शैव, अवैदिक शैव, बौद्ध, जैन, तांत्रिक इत्यादि सबने ही स्वीकार किया है।

भारत की यह वैज्ञानिक उन्नति विचित्र रही है, पर हमें कोई एक फार्मूला नहीं मिलता। योगियों की एक शाखा में बड़े-बड़े वैद्य हुए हैं, जिनमें चर्पटनाथ का नाम लिया जा सकता है। वे रसेश्वरमत को मानते थे। उनके हिसाब से पारा भगवान शिव का वीर्य है, और गंधक देवी पार्वती का रज। वे इनको सिद्ध करते थे। उन्होंने ही जड़ी बूटियों की खोज बढ़ायी। वैसे तो आयुर्वेद में 'काष्ठ' चिकित्सा पुरानी है। कहते हैं गौतमबुद्ध के समय में एक जीवक नामक वैद्य था। वह तक्षशिला में पढ़ा था। गुरु ने उससे कहा था कि मुझे एक कोस के घेरे में से ऐसी जड़ी बूटी ढूँढ़ कर ला दे, जिसकी दवाई न बनती हो। वह महीने भर तक ढूँढ़ता रहा, पर उसे ऐसी कोई बूटी नहीं मिली। जीवक चीराफाड़ी भी करता था। उसने राजा बिम्बसार की भगंदर ठीक की थी। उसने एक बार एक भिक्षु का ऑपरेशन किया। चूंकि उन दिनों क्लोरोफार्म (बेहोशी की दवा) न थी, भिक्षु के बहुत दर्द हुआ। गौतम बुद्ध ने ऑपरेशन को हिंसा कह दिया। चुनांचे बौद्धों के प्रभाव ने इस विज्ञान को नष्ट किया। आगे के समय में छुआछूत बढ़ गयी। मुर्दे चीरने वाले सुश्रुत की संतान ब्राह्मणों ने इसे गंदा समझ कर छोड़ दिया। फिर तो ऑपरेशन, और हड्डी बैठाना, सुतना, सब आ पड़ा हमारे जर्राह-नाई पर। गांव गांव में नाई भी डाक्टर होते हैं। पर चर्पटनाथ ने 'काष्ठ' के साथ 'धातु' की दवा चलायी। सोना, चाँदी, लोहा इत्यादि का भस्म करना। दवाओं की दुनिया में चमत्कार आया। लेकिन योगी तो इन दवाओं से काया शुद्ध करते थे। और भारतीय समाज में यह चीज सामंतों की ऐयाशी का साधन बनी और वैद्य लोगों ने खोज छोड़कर, वशीकरण, बाजीकरण, स्तंभन इत्यादि की दवाएँ बनायीं।

पर इसी शाखा में राजा भोज और व्याडि का नाम लेना होगा। व्याडि विज्ञान के चमत्कार दिखाता था। भोज की एक किताब मिली है, जिसमें विमान बनाने की तरकीब है पर उड़ता वह कैसे था, यह पता नही है। शायद कोई गुब्बारों से उड़ाने वाला रहा होगा। विमान जैसी चीज थी भी तो साधारण उड़ान करने वाली। आजकल के से जहाज नहीं थे। जैन आगमों में भी विमानों का वर्णन है, पर उड़ते कैसे थे, यह स्पष्ट नहीं होता।

आजकल साइको-रसायन के क्षेत्र में चर्चा है, कि दवाओं से आदमी के

दिमाग को बिगाड़ा जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता, कि किन जड़ी-बूटियों से वे ऐसा करते थे। प्राचीन काल में अच्छे मसाले बनते थे। पत्थर की रोगन बनती थी। दशरथ और बुद्ध के शव को बहुत दिनों तक तेल में रखा गया था, कि वे सड़ें नहीं।

अब दो बातें ऐसी हैं, जिन्हें सुनकर ही आश्चर्य होता है। सब जानते हैं, कि एक किताब है, जिसे 'भृगु-संहिता' कहते हैं। इसमें सवा लाख जन्मपत्रियाँ हैं, और हर एक के तीन जन्मों का भविष्य है। जो सुनता है, वह इसे पंडितों की पोपलीला कहता है। पर इसके पीछे सचाई क्या है? यह भारत का पुराना विज्ञान है। उन दिनों भारतीयों ने रातों-रात जागकर आकाश का बिना दूरबीन के ही अध्ययन किया। ग्रह अलग छाँटे, क्योंकि वे जल्दी जगह बदलते थे। फिर नक्षत्र छांटे। फिर राशियाँ देखीं। पर उन दिनों मनुष्य यह भी समझता था, कि जो कुछ है वह आदमी के लिए है। तब उस समय के विद्वानों ने आदमी और सितारों का संबंध जोड़ा, ज्योतिष विद्या बनी। पर वह पूर्णरूप से सफल नहीं रही, इसका कारण यह है, कि अब तक यह विद्या अपूर्ण है। गौर से देखा जाय, तो संपूर्ण आकाश का अध्ययन समग्र समय और दिक् (कम्पलीट टाइम एण्ड स्पेस) का अध्ययन है। ऐसा अध्ययन होने पर भविष्य अपने आप स्पष्ट हो जाएगा। पर यह देखना आवश्यक है, कि भृगु-संहिता के पीछे मनुष्य का कितना परिश्रम है! आकाश में तारे देखना, ग्रह देखना, जन्म-समय देखना, फिर कई-कई लोगों के जीवन के बारे में पूछना, निष्कर्ष निकालना, सहज नहीं है। साढ़े चार लाख निष्कर्ष निकालने को कितने लोगों से, कितनी सदियों से, इन्टरव्यू ली गयी होगी? तब भृगु ने उन सारे तथ्यों को छाँटकर संपादन किया होगा। इतना परिश्रम क्या महान नहीं है?

एक कथा वाल्मीकि रामायण में है। एक बार रामचन्द्रजी की सभा में एक गिद्ध और एक उल्लू आ गये। झगड़ा एक पेड़ के पीछे था। दोनों का दावा था, कि पहले से एक रहता था, दूसरे ने फिर हमला करके मकान छीना। भगवान राम ने गिद्ध से पूछा : 'तुम वहाँ कब से रहते हो?' गिद्ध ने कहा :

इयं वसुमतीराम मनुष्यै परितो यदा।
उत्थितैरावृता सर्वा तदा प्रभृति मे गृहम् ॥

अर्थात्, हे राम! सृष्टि के प्रारम्भ में जिस समय यह पृथ्वी मनुष्यों से युक्त हुई और जब सब लोग इस पर बस गये, तभी से इस घर पर मेरा अधिकार चला आ रहा है।

तब उल्लू ने कहा :

उलूकश्चाब्रवीद्रामं पादपैरूपशोभिता ।
यदेयं पृथिवी राजंस्तदा प्रभृति मे गृहम् ।।

अर्थात्, हे राजन ! जब से यह पृथ्वी पेड़ों से शोभित हुई, तब से मैं इस घर पर रहता हूँ।

राम ने फैसला दिया, कि पृथ्वी पर मनुष्यों मे पहले पेड़ थे, अतः उल्लू ठीक कहता है ।

यह कथा देखकर लगता है, जैसे रामचन्द्रजी आधुनिक विज्ञान के विकासवाद के सिद्धान्त को मानते थे । आजकल की नृतत्त्व विज्ञान की हिन्दी पुस्तकों में विद्वान कहते हैं, कि भारतवासी विकासवाद को जानते थे, तभी तो उनके अवतारों में मछली (मत्स्य), कछुआ (कच्छप) आदि के क्रम से मनुष्य का विकास दिखाया गया है । इसी विचार के लोग वेदों में कुछ भी खोज सकते हैं। बन्दूक, मशीनगन, तोप कुछ भी । लेकिन वेद में से वह चीज तब निकलती है,जब यूरोप से बनकर आ जाती है । ऐसा नहीं देखा गया, कि कुछ पहले से लोग बता दें, कि इस सिद्धान्त से अमुक वस्तु बनेगी और उसे बनाया जाये ।

हमारे यहाँ ऐसे बाण होते थे, जो फेंकने वाले के पास लौट आते थे । आस्ट्रेलिया के आदिवासियों के पास भी बूमरैंग पाये गये हैं । परन्तु बूमरैंग चिड़िया मारता है । क्या वह १४००० सैनिकों को मार सकता है ? यह प्रश्न प्रकट करता है कि संभवतः वैसे बाण नहीं होते थे । वेद में वर्णित वस्तु में सायण टीका के आधार पर तो चमत्कार कम मिलते हैं, परन्तु परवर्ती पुस्तकों में अधिक ।

दूसरी बात है महाभारत में संजय का दिव्य दृष्टि से सारे कुरुक्षेत्र के युद्ध को देखना । कुछ लोगों का मत है, कि वह कोई टैलिविजन जैसी चीज थी । मेरे मत में वह कवि कल्पना है, या अगर दिमाग पर जोर डाला जाय, तो वह योग क्रियाओं का कुछ चमत्कार है । यहाँ मैं यह कहना उचित समझता हूँ, कि भारत में एक तंत्र विज्ञान भी है । मैं उसका कुछ उल्लेख योग के अन्तर्गत कर आया हूँ । किन्तु इस तंत्र में योग से भेद है । इसमें मंत्र भी आता है । यह सच है, कि लोग थाली पीठ से चिपकाकर सांप काटे का जहर उतारते हैं । यह कौनसी प्रक्रिया है, यह अभी तक स्पष्ट नहीं है । मैं उनमें हूँ, जो समझ में न आने वाली बात का उपहास नहीं करते । पैसिफिक तथा अन्य

देशों की आदिम जातियों में भी ऐसे मंत्र-प्रयोग पाये जाते हैं। यह एक गवेषणा का विषय है।

भारत ने इसके बाद जो सबसे अधिक जोर दिया, वह मनुष्य के मरने के बाद की अवस्था को जानने के विज्ञान पर। आत्मा के बारे में उसने काफी बात की है। यह सच है, दार्शनिकों में आत्मा परमात्मा के बारे में मतभेद है, लेकिन शैव, वैष्णव, जैन, आत्मा को न मानने वाले बौद्ध, अपने को हिन्दू न कहने वाले आदिवासी गौंड आदि भारत के सब संप्रदाय पुनर्जन्म को मानते हैं। अक्सर ऐसे बच्चों की कहानियाँ कही जाती हैं, जो पुराने जन्म की बात बताते हैं। क्या यूरोप और अमेरिका इत्यादि में ऐसा नहीं होता ? क्या कारण है, कि सम्प्रदायों के परे भारत में तो यह सिद्धांत मान्य है, पर बाकी ईसाई, यहूदी, मुसलमान, बल्कि संसार की कोई भी जाति इसे नहीं मानती ? मेरे मत में इस विषय में प्रवेश का रास्ता केवल योग-मार्ग है, मतलब दिमाग की ताकत को बढ़ाने से शायद इसकी जानकारी हासिल हो। पैरासाइकॉलोजी इसी का नया रूप है। किन्तु पुनर्जन्म का सिद्धान्त ऐसी जातियों में रहा है, जिनमें विज्ञान की खोज बहुत ही कम रही है। आर्यों में यह पूर्ण रूप से जाबालि के समय मान्य हुआ, परन्तु उस समय योग-मार्ग की महत्ता आर्यों में कम थी।

विज्ञान के विकास ने पश्चिम के विश्वासों की जड़ें हिला दी हैं। वहाँ का आदमी अपनी छाया से स्वयं डरने लगा है। विज्ञान ने इतने व्यापक विस्तार बताये, कि प्रसिद्ध विचारक एडिंग्टन ने रहस्यवाद को प्रश्रय दिया और कहा कि उसी के द्वारा सर्वात्म की अनुभूति हो सकती है। जीन्स ने इशारा किया, कि यह सबकुछ है नहीं, ऐसा हमें लगता है। अन्य रूप में यह बात भी स्पष्ट हुई, कि वस्तुतः किसी वस्तु में कोई रंग नहीं है। हमारी आँख की बनावट ही ऐसी है, जिसके कारण हमें सूर्य के प्रकाश के संयोग से विभिन्न रंग दिखते हैं। वह प्रकाश दीपक द्वारा भी मिलता है। अंधकार में कुछ नहीं दिखता।

शंकराचार्य ने साँप में रस्सी का भ्रम बहुत पहले बताया था। कहा था सब मिथ्या है, है नहीं, लगता है। केवल ज्ञानानुभूति से ही ब्रह्म मिल सकता है, जिसका हम कोई वर्णन नहीं कर सकते। भारतीय परमाणुवादी वैशेषिकों ने भी, सृष्टि-क्रम चलता ही रहता है, माना है। शंकराचार्य के युग में भारत में जैनों को बड़ा वैज्ञानिक माना जाता था। कहानी है, कि जैनों से पूर्णिमा की तारीख पर ब्राह्मणों की बहस पड़ गयी। जैनों ने एक दिन पहले कहने की

गलती कर दी। अब क्या होता। लेकिन जैनों ने थाली चमकाकर आकाश तक चढ़ा दी। यह कहानी सच्ची नहीं है, लेकिन यह बताती है कि जैन वैज्ञानिक खोज करते थे। उनकी विद्या को बिना आधार के ही आसमान पर चढ़ने वाली—"निरालंब गगनारोहिणी' कहा गया है। जैनों की स्यादवाद की धारणा, करीब-करीब आइन्स्टाइन के सापेक्षवादके निकट है। जैन हर पुदगल के लिए एक आकाश मानते हैं। स्याद्वाद में आपेक्षिक सत्य दस हैं—जनपद सत्य, सम्मत सत्य, नाम सत्य, स्थापना सत्य, रूप सत्य, प्रतीति सत्य, व्यवहार सत्य, भाव सत्य, योग सत्य, तथा उपमा सत्य। यह सब सत्य को सापेक्ष मानते हैं। आधुनिक विज्ञान भी इसी को प्रकट करता है। इस विषय पर मुनि श्री नगराजजी ने बहुत ही सुन्दर व्याख्या की है।

किन्तु जहाँ दार्शनिक व्याख्या एक ओर इतनी वैज्ञानिक प्रतीत होती है, दूसरी ओर भौगोलिक तथा वैज्ञानिक विचार जैनों में भी पुराने ढंग के मिलते हैं। उनकी युग-कल्पना भी असंख्यात है, और अनंत की ओर इंगित करती है।

लेकिन इन उपलब्धियों की पृष्ठभूमि क्या थी? वृक्षों के मानव से पहले होने की कथा राम ने बतायी है : 'आरंभ में सूर्य, चन्द्र, आकाश, पर्वत, वन
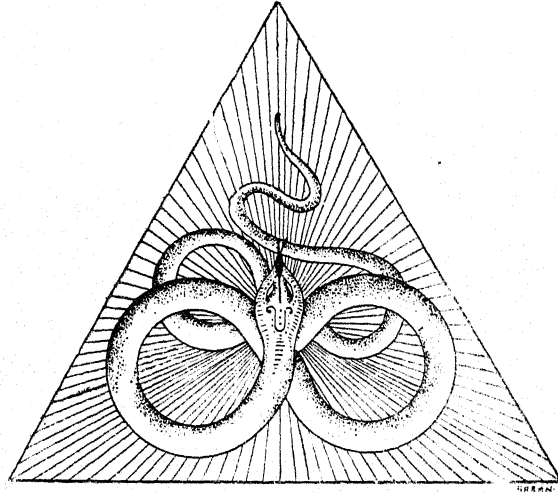
चित्र ४—भारतीय द्रष्टाओं द्वारा साक्षात की गयी वह कुण्डलिनी, जिसके जागृत होने पर, जीवन-मरण, जन्मान्तर और अनन्तकोटि अगोचर ब्रह्मांडों के रहस्य कपाट खुल जाते हैं

समेत तीनों लोक विष्णु के उदर में थे। वे सोते रहे। ब्रह्मा उनके पेट में घुसे। तब उनकी नाभि से सोने का-सा कमल निकला। उसमें ब्रह्मा योग-बल से प्रकटे। उन्होंने सबकुछ तप के प्रभाव से रचा। उन्हीं के कान के मैल से मधु कैटभ दैत्य पैदा हुए। वे ब्रह्मा को खाने दौड़े। ब्रह्मा चिल्लाये। तब विष्णु ने प्रकट होकर उन्हें मारा। उनकी चर्बी से पृथ्वी तर हो गयी। तब विष्णु ने उसे शोधा। तब पवित्र पृथ्वी पर वृक्ष उगे। चर्बी से छा जाने के कारण पृथ्वी का नाम मेदिनी पड़ा।

इस कथा से विकासवाद पुष्ट नहीं होता।

अवतारवाद को हम वैज्ञानिक नहीं मान सकते। वह जातीय अंतर्मिलन में विभिन्न देवताओं को परमात्मा के रूप में स्वीकार करने की कहानी है। बुद्ध भी बाद में अवतार बने हैं। एक अवतार तो होना बाकी है।

भारत में पृथ्वी चपटी मानी जाती थी। सूर्य सुमेरु के चारों ओर घूमता है, ऐसा माना जाता था। आकाश ज्ञान में यूरेनस, नैप्च्यून और प्लूटोका भी पता नहीं था। कुल पाँच तत्त्व माने जाते थे, जबकि अब सौ से भी ऊपर ज्ञात हैं। अभी तक खुदाइयों ने विज्ञान के विकास के बारे में अधिक प्रगट नहीं किया है।

अणु-परमाणु को काबू में करना विज्ञान के श्रेष्ठ यंत्रों पर निर्भर है, जिसका कहीं उल्लेख नहीं है। इससे प्रकट होता है, कि भारत ने इस क्षेत्र में इतनी उन्नति नहीं की थी।

भारत की उपलब्धि थी मस्तिष्क-विज्ञान के क्षेत्र में। वह योग है। भारत ने दर्शन, चिंतन और अनुभूति की गहराई को देखा था। वह हमें जैनों, वैष्णवों और वेदान्तियों में मिलता है। क्रमशः शल्य-चिकित्सा, रसायन, भौतिक विज्ञान, ज्योतिष आदि विकास कर रहे थे। अगर उनमें रुकावट नहीं आती तो शायद भारत दौड़ में आगे रहता। उसका चिंतन बहुत व्यापक था। काल (टाइम), स्पेस (दिक), सापेक्षता, परमाणु-पुदगल (मैटर) इत्यादि के बारे में उसने सोचा था। उसने यंत्र-तंत्र (ब्लैक मैजिक) पर भी काम किया था। पर सहसा ही तुर्क आक्रमणों ने उसकी गति को रोक दिया। जो विकास होता चला आ रहा था, वह एकदम रुक गया। इसी तरह यह विकास यूरोप में ईसाई मत के फैलने पर रुक गया था। ईसा के बाद एक हजार साल तक यूरोप ने कुछ नहीं किया। उसके बाद फिर वहाँ जागरण हुआ। फलस्वरूप

धीरे-धीरे उन्नति हुई। यह उन्नति कोपर्निकस से मोड़ खा गयी। न्यूटन से तेज हो गयी। और डार्विन तक दौड़ने लगी। अब वह उड़ रही है। लेकिन जब तक यूरोप के पाँव धरती पर रहे, उसे भौतिकवाद पर घमंड रहा, ज्योंही उसने आकाश को देखा, उसका मन हिल गया। आज यूरोप दर्शन खोज रहा है। उसे शांति का दर्शन भारत दे सकता है, पर उसे वैज्ञानिक खोजें तो यूरोप से ही लेनी पड़ेंगी। भारत के पास एक क्षेत्र के प्रयोग अधिक हैं, वह है योग-विज्ञान। भारत इस विद्या को, यूरोप को सिखा सकता है। परन्तु इस विद्या में भी भारत को अभी तक बहुत खोज करनी है।

यदि भारत के विकास में बाधा नहीं पड़ती, तो कौन जाने हम कहाँ पहुँचते ? यहाँ आर्यभट्ट को स्वीकार नहीं किया गया। यहाँ भास्कर के सिद्धान्त को मान्यता नहीं मिली। अब हम इन दोनों के ढोल पीटते हैं, क्योंकि यूरोप में इन्हीं मान्यताओं को आदर मिल चुका है, परन्तु मान्यता तब मिली नहीं, इसका अर्थ यह नहीं, कि मिलती ही नहीं। उसके बाद के युग में शोध और अन्वेषण के मौके ही नहीं मिले। यूरोप में जो कुछ मध्यकाल में था, शोध, अमृत बनाना, पारस ढूँढ़ना, प्रेतपिशाच सेना, जादू करना, टोना-टोटका मंत्र करना; पुरानी शल्यक्रिया का प्रयोग करना, जड़ी-बूटी खोजना, ज्योतिष की खोज करना, यह सब पहली से दसवीं सदी के भारत में मौजूद था। इन्हीं बातों में से, मौका मिल जाने के कारण यूरोप बढ़ गया। भारत में स्वतंत्रता छिन जाने से अवसर जाता रहा। कायदे की शिक्षा के न रहने से यहाँ अंध-विश्वास बढ़ गया। इस्लाम के उदय के समय अरबों में विज्ञान के प्रति बड़ी रुचि थी, लेकिन जब वे ईरान आये, तो ईरानी संस्कृति ने इस्लाम को रँग दिया। इस्लाम की प्रगति रुक गयी। भारत में आने पर तो वह बिल्कुल ही नष्ट हो गयी। भारत में आठ सौ वर्ष में भी ईस्लामी शासक वर्ग एक भी वैज्ञानिक नहीं दे सका। थोड़े से फकीरों में जरूर कीमियाई चलती रही, लेकिन वे फकीर, पुराने जोगी या बौद्ध थे, जिनमें परम्परा चलती रही। इस्लाम में जो तंत्र-मंत्र था, वह भी पुराने यहूदियों के 'कबालों' और मूर्तिपूजक अरबों से उतरा था। इस प्रकार भारतीय विज्ञान अपना विकास नहीं कर सका।

भारत में कल्पना बहुत सशक्त थी। किन्तु अस्त्रों के लिए सूक्ष्म यंत्र चाहियें वे भारत में कहाँ थे ? उनका उल्लेख कहीं नहीं है। बाबर से पहले बारूद यहाँ नहीं था। अग्न्यास्त्र थे, परन्तु अग्न्यास्त्र से आग फेंकी जाती थी। ऐसे अस्त्रों को शतघ्नी, भुशुण्डी इत्यादि कहते थे। अणुबम में अणु को तोड़ा जाता है। इसका

फार्मूला बड़ा विचित्र है जो–० पर आधारित है। वह भारत में इस रूप में नहीं था। तत्त्व को एक रूप से दूसरे रूप में बदलने के लिये एक जबर्दस्त गर्मी चाहिए, जो एटम तोड़कर पैदा की जाती है। अपने यहाँ तो ऐसे किस्से हैं, कि साधू ने पीतल या ताँबा चिलम में रखा, एक जड़ी-बूटी रखकर दम लगाया और चिलम उलट दी, तो ताँबे का सोना हो गया। जड़ी-बूटी में ऐसा चमत्कार हो सकता है, यह सहज मान्य नहीं है, पर मैं मानता हूँ, कि हो सकता है। संजीवनी बूटी भी इसी तरह विख्यात है। पर क्या यह सब चीजें सहज थीं। यूरोप में भी आबेजमजम (अमृत), पारस पत्थर और कीमियाई मध्यकाल में ज्ञात तथ्य थे। गेटे ने भूतों से भी बातें करते पात्र दिखाये हैं। वह मध्यकालीन विश्वास था। ग्यारहवीं सदी में भारत में आये विदेशी अलबेरूनी ने लिखा है, कि भारतीय अपने पूर्वजों की बहुत तारीफ करते हैं, और कैसे भी झूठ पर झट भरोसा कर लेते हैं। बहुत से लोग कहते हैं, कि यदि सूर्य न घूमता और पृथ्वी घूमती, तो भारतीय गणित के हिसाब से ग्रहण ठीक समय पर क्यों पड़ता। यह तो सीधी-सी बात है। किसी को भी घूमता माना जाये, यदि दोनों की गति का ध्यान है, तो नतीजा हमेशा ठीक निकलेगा।

यह माना जाता है कि पहले सबकुछ था और फिर नष्ट हो गया। हम वेद, उपनिषद, जैनागम, बौद्धस्रोत, पुराण इत्यादि में सृष्टि कैसे हुई इसका उल्लेख पाते हैं। सब अलग-अलग वर्णन हैं और चमत्कारपूर्ण हैं। उनको वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। कल्पना और अनुभूति से भारत में जिस व्यापकता के दर्शन होते हैं, उसके पीछे गहन मनन है, साधन साध्यता नहीं है। साधनों के अभाव में ही चिन्तन अधिक हुआ। उसके फल हमारे सामने मौजूद हैं। यह सोचना, कि लोक कई हैं, संभव है। यह सोचना कि समय 'एक' है, योग द्वारा जाना जा सकता है। अस्त्रों की भयानकता की कल्पना की जा सकती है। रामायण में तो अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन है, माया युद्धों का उल्लेख है, पर वेदों में नहीं। कायदे से देखा जाय, तो पहले वेद में उल्लेख होना चाहिए। रामायण के बाद वर्णन है महाभारत में। पर इस सारे युग में सवारी का सबसे तेज साधन रथ था। हाँ, यह बात अवश्य है, कि वे घोड़े वायुवेग से चलते थे। थे तो घोड़े, कोई यंत्र नहीं था। हल हाथ से चलाया जाता था, ट्रैक्टर भी नहीं थे। महाभारत और रामायण के युग में दिये जलते थे, बिजली नहीं। पंखे हाथ से झले जाते थे, बिजली से नहीं चलते थे। परमाणु पर काबू करने वाले लोग ऐसा क्यों करते थे? कुएँ बनवाते थे, नल नहीं लगवाते थे। महाभारत में लिखा है : "अहो! कैसा आश्चर्य है

कि स्त्री । सबकुछ पचा लेती है, पर उसके पेट में वीर्य नहीं पचता ।" वे यह बात सुश्रुत के पहले नहीं जानते थे कि पेट में बच्चा एक अलग झिल्ली में होता है । वे तो यह समझते थे, कि वीर्य किसी भी भाँति स्त्री में पहुँचना चाहिए। इसीलिए कान-नाक से होने वाले बच्चों का भी वर्णन है। इसीलिए यह भी कहा जाता है, कि पुनर्जन्म में जीव माता के गर्भ में मल-मूत्र में पड़ा नरक यातना भोगता है । क्या संजय की दिव्य दृष्टि से इस ज्ञान का मेल बैठता है ? योगियों ने मस्तिष्क की शक्ति बढ़ायी, पर भूगोल और अन्य ज्ञानों पर उन्होंने प्रभाव नहीं डाला । परम योगी घेरण्ड और गोरख ने भी इस विषय पर कुछ प्रकाश नहीं डाला ।

पर चिंतन में भारतीय जानते थे कि एक ही 'वार्ता' है—जो जानने योग्य है, कि सूर्य इस पृथ्वी को आकाश के 'पुट' में रखकर पका रहा है। कितना गौरव है एक ओर, और कितना अभाव है दूसरी ओर । भारत में योग क्यों बढ़ा ? बाह्य साधन कम बने। और आदमी के लिए सबसे बड़ा रहस्य बना अपने आपको खोजना । यहाँ इतनी सभ्यताएँ बनीं, बिगड़ीं कि खंड़हर देख-देखकर मनुष्य ने बाहरी उन्नति को झूठा समझा । वैष्णवों ने 'नियतवाद' (डिटरमिनिज्म) को प्रतिपादित किया, उसी ने 'कल्पों' की कल्पना को जन्म दिया । इसके कारण एक ओर 'व्यापकता की भावना' फैली, दूसरी ओर वैज्ञानिक चिंतन का ह्रास हुआ ।

इतनी उन्नति है, पर कुछ भी नहीं है । हम यह नहीं जानते कि जो भोजन हम खाते हैं, उससे मस्तिष्क में विचार कैसे जन्म लेता है ? हम यह नहीं जानते, कि मनुष्य कैसे इस पृथ्वी पर आया ? हम यह नहीं जानते, कि अचेतन से चेतन जीव कैसे जन्मे ? क्योंकि अभी तक विज्ञान मूल प्रश्नों को नहीं समझा सका है, यह सारी उन्नति बाहरी उन्नति है । आज भी वही समस्या हमारे सामने है, जो वेद के कवि के सामने थी या उपनिषद्कारों के सम्मुख थी। याज्ञवल्क्य से लेकर शंकर तक के सामने जो समस्या थी, वही हमारे सामने है। डार्विन, फ्रायड, एडलर, जुंग, हक्सले, आइन्स्टाइन, राहिन तक सब उसी को सोच रहे हैं । जीन्स, एडिंग्टन, व्हाइट ऐड, और न जाने कितने यही पूछते नजर आते हैं । तो जिन सवालों का जवाब प्राचीन द्रष्टा माँगते थे, हम भी उन्हीं का मांगते हैं । असली सवाल आज तक का वैज्ञानिक विकास भी हल नहीं कर सका है । प्राचीनों ने सोचकर हल निकाले थे । हम उन्हें देखकर ताज्जुब करते हैं, पर आगे कैसे सोच सकते हैं ? बहुत-सी बातों में

हम छोटे-छोटे सुधार कर सके हैं। बच्चा यों जन्म लेता है, ग्रहण यों पड़ता है, एटम यों टूटता है, बेतार का तार यों बजता है, सैक्स यों बदलता है, पर यह सब छोटे सवाल हैं। बड़े सवाल हैं—जीव कैसे आया ? मृत्यु के बाद क्या होता है ? प्राणी कैसे सोचता है ? मनुष्य के मस्तिष्क में कितनी शक्ति है, विचार इस पदार्थ (मैटर) पर काबू कर सकता है या नहीं ? सृष्टि क्यों हुई ? मनुष्य कब जन्मा ? और क्यों जन्मा ? अचेतन मे चेतन प्राणी कैसे बना। पर 'कैसे' की व्याख्या से भी काम नहीं चलता। मनुष्य जानना चाहता है—'क्यों ?'

इस 'क्यों' का उत्तर कौन देगा ? हमारे भारत ने वैदिक चिंतन में परमात्मा को साथ लेकर सोचा। जैन चिंतन में परमात्मा को छोड़कर सोचा। बौद्ध चिंतन में आत्मा को भी अस्वीकार करके सोचा। इसने ब्रह्मचर्य से रह-कर देखा। फिर 'वाममार्ग' का प्रयोग किया। और न जाने क्या-क्या प्रयोग किया। पर उत्तर नहीं मिला। इसका उत्तर अभी तक पश्चिम भी नहीं दे सका है। इसीलिए हम यह देखकर चौंकते है कि प्राचीन लोग न जाने क्या-क्या सोच गये हैं। लेकिन सचाई यह है, कि आज तक जो सोचा गया है, वह संभाव्य था, और सीमित वैज्ञानिक साधन, जैसे कि मौजूद हैं, वे भी उस चिंतन से आगे नहीं जा सके। इसीलिए विचार-स्वातंत्र्य के इस देश में जो अनेक प्रयत्न हुए, वे हमारे लिए गौरव का विषय हैं।

जिस क्रम से मैंने विकास दिखाया है, वह एक जीवंत देश की ही परंपरा को प्रकट करता है। दुर्भाग्य से उसके बाद हमें संस्कृति की रक्षा में लग जाना पड़ा। शिक्षा के साधन कम हो गये। उसके बाद वैज्ञानिक खोज साधुओं के हाथ में चली गयी। साधुओं के हाथों में वह स्थिर खोज नहीं बनी रह सकी। साधुओं ने उसमें चमत्कारवाद बढ़ाया और विज्ञान के सिद्धान्त अलग नहीं रह सके। और योग का विकसित विज्ञान भी यहाँ इतना एकांतिक रहा, कि उसने कोई विशेष जागरण नहीं किया।

यह निश्चय है, कि भारत को अभी वर्तमान वैज्ञानिक स्तर पर आने के लिए बहुत सीखना है, जो मनुष्य के विकास की अगली मंजिल है। इस विकास की ओर वैष्णव और जैन चिंतन ने हमें विशेषतया बढ़ाया है। गौतम बुद्ध का यह विचार कि कुछ भी अपरिवर्तनशील नहीं रह सकता, वैज्ञानिक था। लेकिन बुद्ध ने विज्ञान का विकास परोक्ष रूप से रोका। जब सूर्य, चंद्र, परलोक इत्यादि के सम्बन्ध में जिज्ञासा के प्रश्न उठे, तब बुद्ध ने कह दिया कि

जिस गाँव हमें जाना नहीं, उसका नाम जानने से हमें क्या लाभ है ? जिज्ञासा विज्ञान की जननी है। बार-बार सृष्टि को समझने की चेष्टा हुई है। यह समस्त सृष्टि सीमित है, यह आइन्स्टाइन ने कहा है। इसकी पुरानी व्याख्या है अंडकटाह।' इसे वैष्णवों की अनुभूति ने बताया है। पर आगे वैज्ञानिक व्याख्या नहीं है।

यूरोप, रूस, अमेरिका ने क्या नहीं किया ? रामायण, महाभारत की सब चीजें बना डालीं। सैक्स बदल डाला, टैस्ट्यूब से बच्चे पैदा कर दिये। बिना वीर्य के ही स्त्री के शरीर में रजकण को बिजली के झटकों से तोड़कर लड़की पैदा कर दी। चीराफाड़ी में प्लास्टिक सर्जरी कर ली। बेतार का तार, टेलीविजन, अग्न्यास्त्र, रॉकेट, विमान, रेल, ब्रह्मास्त्र, सब बना डाले। लेकिन हार किससे खायी ? हिंदी के उसी लेखक से। बेहोशी दूर करने की दवा में वह सब अभी तक वही तासीर नहीं ला सके हैं, जो हमारे देवकीनंदन खत्री के लखलखे में थी, कि सुंघाया और दो छींकें क्या आयीं, कि कड़ी से कड़ी बेहोशी गायब !

इस प्रकार हमने देखा कि भारतीय संस्कृति ने भौतिक उन्नति भी की थी और काफी विकास भी किया था। पिल्ले का मत है कि भारत में पहले चांद्रमान माना जाता था। बाद में जब सूर्यमान माना जाने लगा तब वैवस्वत मन्वन्तर का प्रारंभ माना गया। वैवस्वत विवस्वान अर्थात् सूर्य का पुत्र माना गया है। पिल्ले का मत है कि विवस्वान संबंधी कहने के लिए विवस्वान से वैवस्वत शब्द बनाया गया है। यह विषय अभी तक बहुत विवादास्पद है अतः इस पर हम अभी अंतिम बात नहीं कह सकते। किन्तु संस्कृति के विकास में सभ्यता और उसके आधार विज्ञान का विकास बताता है कि हम जिस रास्ते पर चले थे, उसे पूरा नहीं कर सके, और हमारी दिशा एकांगी बनकर रह गई।

३

मनुष्य के रूप : महाद्वीपीय अध्ययन

भूगोल का मानव जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसलिये आवश्यक है कि हम संसार के विभिन्न प्रदेशों का अध्ययन करें। इससे हमको स्पष्ट होगा कि मनुष्य कहाँ कहाँ किस प्रकार रहता है। इसी से हमको उन कारणों का भी ज्ञान होगा जो मनुष्य के बारे में यह बता सकेंगे कि मनुष्य अमुक स्थान पर अमुक ढंग से ही क्यों रहता है ?

हमें यह पता चलता है कि विभिन्न भूखंडों में मनुष्य एक ही ढंग से नहीं रहता। संस्कृतियों के अनेक प्रकार के भेद होते हैं। इनको मोटे तौर पर यों बाँटा जा सकता है—

(१) भौगोलिक प्रभाव

(२) ऐतिहासिक प्रभाव

(३) वैज्ञानिक विकास का प्रभाव

(४) दार्शनिक प्रभाव

भूगोल में हम प्राकृतिक परिस्थितियों का ही विशेष कर अध्ययन करते हैं।

ऐतिहासिक प्रभाव वे हैं जो किसी जाति विशेष के साथ बने रहते हैं और भौगोलिक परिस्थिति बदलने पर भी पुराने रिवाजों से आदमी चिपका रहता है।

विज्ञान का विकास नयी प्रौद्योगिकी को जन्म देता है। प्राकृतिक आवश्यकताओं से नयी नयी वस्तुओं का जन्म होता है।

कभी-कभी एक मनुष्य सम्प्रदाय का एक प्रकार का चिंतन हो जाता है, और वह फिर उसे रूढ़ि बना कर अपना लेता है।

सबसे पहला प्रभाव भौगोलिक होता है, अतः हम संक्षेप में उसी पर दृष्टिपात करते हैं।

जल और थल को मिला कर पृथ्वी की संज्ञा दी जाती है। पृथ्वी के विशाल वक्षस्थल पर कहीं शुष्क भूमि दृष्टिगोचर होती है तो इसमें कहीं सरोवर, झील, व सरिता आदि दिखाई देते हैं। पृथ्वी के सभी भागों में जल का साम्राज्य फैला हुआ है। पृथ्वी के दो भाग हैं, पहला थल तथा द्वितीय उदधि। थल और उदधि की सीमाएँ निर्धारित नहीं हैं। प्राचीन समय से ही इन सीमाओं में परिवर्तन होता आया है। यह परिवर्तन धीरे धीरे सहस्रों वर्षों के अन्तर्गत होता है। इस परिवर्तन को लघु आयु वाला मानव अपने-नेत्रों से नहीं देख सकता है। अर्वाचीन युग में जहाँ आज विशाल समुद्र दृष्टि-गोचर होते हैं वहाँ पहले विशाल पर्वत थे। धीरे-धीरे ये पर्वत नष्ट हो गये और आज वहाँ विशाल समुद्र लहरा रहा है। महाद्वीपों की सीमाएँ टूट कर समुद्र बन गईं। गोंडवाना महाद्वीप, जो प्राचीन युग में विश्व का विशाल महाद्वीप था, कालान्तर में उसके मध्यवर्ती भाग समुद्र बन गये, जिन्होंने दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया को पृथक-पृथक कर दिया। इतना ही नहीं बल्कि जहाँ विशाल समुद्र थे आज वहाँ तुङ्गशिखर वाले पर्वत स्थित हैं। जहाँ आज हिमालय पर्वत स्थित है, वहाँ पर पहले कभी तेथिस नामक महासमुद्र था।

सम्पूर्ण पृथ्वी को छह महाद्वीपों में विभाजित किया गया है। जो क्रमशः एशिया, यूरोप, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के नाम से पुकारे जाते हैं। इन महाद्वीपों की प्राकृतिक सीमाएँ, रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, रंग-रूप और जाति-धर्म आदि सभी भिन्न-भिन्न हैं। क्योंकि मानव को भौगोलिक परिस्थतियों के अनुसार रहना पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियों के समक्ष मानव नगण्य है। भूतल पर सभी परिवर्त्तन भौगोलिक परिस्थितियों के कारण होते हैं।

भूमंडल के जल को ५ महासागरों में विभाजित किया गया है, जो क्रमशः प्रशान्त महासागर, अटलांटिक महासागर, भूमध्यसागर, हिन्द महासागर व आर्कटिक महासागर के नाम से पुकारे जाते हैं। थल की अपेक्षा जल अधिक भाग में फैला हुआ है, समस्त विश्व के दो तिहाई भाग में जल फैला हुआ है,

शेष एक तिहाई भाग में थल का साम्राज्य है जिसमें उच्च पर्वत, गहरी घाटी व समतल मैदान हैं।
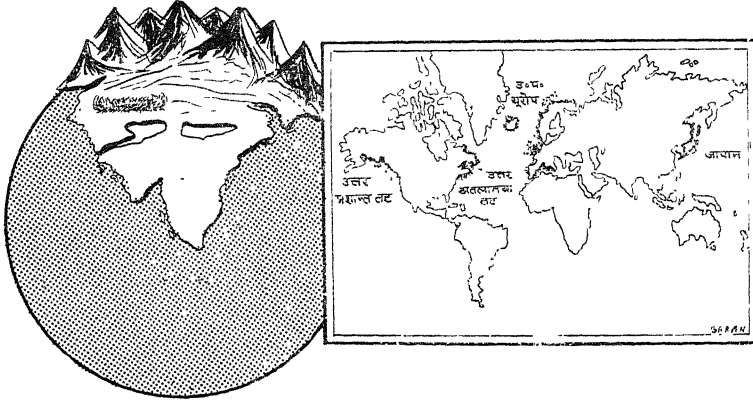
चित्र ५

प्रत्येक महाद्वीप के मानव समाज पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है जिससे वहाँ के निवासियों के आचार-विचार, रीति-रिवाज, रंग रूप, और धर्म-जाति आदि पृथक हो गये हैं। इतना ही नहीं एक महाद्वीप के अन्तर्गत विभिन्न देश पाये जाते हैं उनका भी रहन-सहन, वातावरण, रंग रूप आदि सब पृथक होते हैं। एशिया महाद्वीप में ही चीन तथा भारत या अरब की भौगोलिक परिस्थितियाँ विभिन्न हैं। चीन में मंगोल जाति के मनुष्य रहते हैं जब कि अरब में बद्दू लोग पाये जाते हैं। इनके रीति-रिवाज, खान-पान, वेशभूषा, रहन सहन में बहुत अन्तर पाया जाता है।

एशिया

एशिया विश्व का सबसे विशाल महाद्वीप है, जो क्षेत्रफल तथा विस्तार में अन्य महाद्वीपों की अपेक्षा बड़ा है। यह महाद्वीप उत्तर से दक्षिण तक लगभग ५३०० मील चौड़ा है। यह क्षेत्रफल में यूरोप महाद्वीप से पाँच गुना अधिक बड़ा है तथा उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका के क्षेत्रफल के समतुल्य है। यूरोप और एशिया की प्राकृतिक सीमाएँ परस्पर मिली हुई हैं। इनके बीच में एक यूराल नामक पर्वत पड़ता है जो इतना नीचा है कि सहज में ही पार किया जा सकता है। एशिया महाद्वीप कुछ प्रमुख विशेषताओं के कारण सर्वश्रेष्ठ महाद्वीप कहा जाता है।

प्राचीन सभ्यताएँ, जिनका विश्व में अक्षुण्य स्थान है, उनका उद्भव स्थान एशिया है। इन सभ्यताओं में सुमेर घाटी की सभ्यता, जिसका विकास बैबीलोनिया, मेसोपोटामिया आदि में हुआ था। सिन्धु घाटी की सभ्यता जिसका विकास हरप्पा-मोहनजोदड़ो में हुआ था, ह्वांगहो नदी की सभ्यता का विकास इसी महाद्वीप के अन्तर्गत हुआ था। इन सभ्यताओं की विशेषता यह है कि इनका विकास नदियों की घाटियों में हुआ जिसका तात्पर्य यह है कि हमारे आदि पुरुष नदी की घाटियो में रहना अधिक पसंद करते थे। इन घाटियों में उन्हें अनेक सुविधायें प्राप्त होती थीं। कृषि के लिए उत्तम भूमि, सिंचाई के लिये नदियों का जल, मनोरंजन के लिये नौका विहार, व्यापार के लिये उन्हें नदियाँ उपलब्ध थी। ये सभी साधन एशिया में उपलब्ध थे।

प्राचीन धर्म, जिनके ऊपर विश्व को गर्व है, उनका उद्गम स्थान एशिया है। विश्व मे चार प्रमुख प्राचीन धर्म माने जाते हैं। (१) हिन्दू-धर्म या वैदिक धर्म, (२) बौद्ध धर्म (३) इस्लाम धर्म (४) ईसाई धर्म। इनका प्रचार और प्रसार भी एशिया से प्रारम्भ हुआ। इनके संस्थापको ने भी एशिया में जन्म लिया। इस प्रकार एशिया में सभ्यता का ही नही बल्कि संस्कृति का भी सबसे पूर्व विकास हुआ।

विश्व की सबसे प्राचीन भाषा का विकास भी एशिया में हुआ। कुछ लोग संस्कृत को मानते हैं, कुछ लोगो का मत है कि विश्व की सबसे अधिक प्राचीनतम भाषा हिताइत है जो कि एशिया माइनर में कैपेडोशिया नामक स्थान पर १८०० ई० पू० में बोली जाती थी। दोनों ही आर्य्य भाषाएँ है।

प्राकृतिक स्थितियों में एशिया महाद्वीप अन्य महाद्वीपों की अपेक्षा अधिक उन्नत तथा वैभवशाली है। एशिया में विश्व की सबसे ऊँचो चोटी एवरेस्ट है जिसकी औसत ऊँचाई २९,१४१ फीट है।

विश्व में सबसे अधिक नीची भूमि भी एशिया में पाई जाती है, जो कि मृतसागर के निकट है।

एशिया महाद्वीप इतना विशाल है कि इसमें भौगोलिक विषमता पूर्ण रूप से पाई जाती है। जहाँ एक ओर सबसे ऊँची पर्वत चोटी है वहाँ दूसरी ओर नीची भूमि भी है। साथ ही सबसे ऊँचा पठार भी है जो कि पामीर का पठार कहलाता है। इसे "दुनिया की छत" भी कहते हैं।

विश्व में सबसे अधिक वर्षा वाला स्थान भी एशिया मे है। भारत के चेरापूँजी नामक स्थान पर औसतन ५००" वर्षा होती है।

इसके बिल्कुल विपरीत में एशिया में ऐसा स्थान भी है, जहाँ सबसे कम वर्षा होती है । यह स्थान तरीम का बेसिन कहलाता है ।

विश्व का सबसे अधिक ठण्डा प्रदेश भी एशिया में है जो कि बरखोयास्क कहलाता है ।

उपरोक्त विशेषताओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्व में सबसे अधिक सामाजिक विकास, सभ्यता तथा संस्कृति की उन्नति एशिया में हुई थी । प्राचीन युग में यही सभ्यता तथा संस्कृति के विकास का प्रमुख केन्द्र था । एशिया महाद्वीप, अनेक द्वीप तथा देशों को मिलाकर बना है । इनमें भारत, चीन, अरब, जापान, साइबेरिया, पूर्वी द्वीप-समूह, ईरान, ईराक आदि देश सम्मिलित हैं । भौगोलिक परिस्थितियों ने यहाँ के मनुष्यों में एक दूसरे को भिन्न बना दिया है, जिससे इन देशों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ भिन्न भिन्न हो गई हैं । हिंदू इसे जम्बू द्वीप कहते थे ।

जलवायु का स्थान भौगोलिक परिस्थितियों में प्रमुख है । मनुष्य-मात्र की उन्नति और उसका जीवन जलवायु पर ही आधारित है । आर्थिक अवस्था के साथ-साथ इसका प्रभाव सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर भी अधिक पड़ता है । मनुष्य का स्वभाव, चाल-चलन, रीति-रिवाज, वेष-भूषा, रहन-सहन और उद्योग-धन्धे आदि सभी जलवायु पर आधारित है । जल और वायु ही वहाँ के वस्त्रों का निर्धारण करती है । गर्म प्रदेश के लोग ठंडे और सूती वस्त्र पहिनते हैं, और ठंडे देशों में ऊनी वस्त्र धारण किये जाते हैं । पेड़-पौधे, व वनस्पति का निर्धारण भी जलवायु के आधार पर किया जाता है । विशेष प्रकार के उद्योग-धन्धे, एक विशेष जलवायु में ही स्थापित हो सकते हैं । मनुष्य के स्वास्थ्य और कार्य-क्षमता पर भी जलवायु का प्रभाव पड़ता है । एशिया में भी विभिन्न प्रकार का जलवायु पाया जाता है । अधिक शीत पड़ने के कारण उत्तरी साइबेरिया व्यर्थ का प्रदेश साबित हुआ है, क्योंकि वहाँ पर हमेशा बर्फ जमी रहती है । यहाँ की पैदावार भी अन्य देशों की अपेक्षा विभिन्न प्रकार की है । वनस्पति नाममात्र को पैदा होती है । पूर्वी द्वीप-समूह में अत्यधिक गर्मी पड़ने के कारण काली मिर्च, गर्म मसाला, रबर, गन्ना आदि अधिक मात्रा में पैदा होते हैं ।

एशिया के अधिकांश भागों में मानसूनों से वर्षा होती है । कुछ स्थानों पर साल भर लगातार वर्षा होने से अच्छी पैदा होती है जैसे—इन्डोचाइना,

जापान, पूर्वी द्वीप-समूह, मलाया, लंका आदि। यहाँ की औसत वर्षा लगभग ८०'' प्रति वर्ष है। मद्रास केवल ऐसा स्थान है जहाँ पर सर्दियों के दिनों में वर्षा होती है। एशिया के अरब, ईरान, और थार के रेगिस्तान, तुर्किस्तान, गोबी का रेगिस्तान, साइबेरिया आदि के देशों में १०'' से भी कम वर्षा होती है। ये प्रदेश या तो अधिकांश रेगिस्तानी हैं अन्यथा सर्वाधिक शीतोष्ण प्रदेश हैं। एशिया में विभिन्न प्रकार की जलवायु पायी जाती है। अत्यधिक उष्ण भी, अत्यधिक शीतोष्ण भी तथा कहीं-कहीं समशीतोष्ण भी पायी जाती है। यहाँ का सर्वाधिक तापक्रम ८०° फार्नहाइट है। एशिया की कुल १½ अरब जनसंख्या में से ८५ करोड़ से भी अधिक व्यक्ति मानसूनी प्रदेशों में निवास करते हैं। साइबेरिया, मंगोलिया, तुर्किस्तान, ईरान, अरब आदि में कम जनसंख्या पाई जाती है।

एशिया महाद्वीप की व्यापकता तथा विशालता के अनुरूप ही यहाँ पर जातियाँ पाई जाती हैं। इन जातियों के रंग-रूप, शक्ल-सूरत, खान-पान, रहन-सहन पर भौगोलिक परिस्थितियों का अमिट प्रभाव पड़ा है। यहाँ की प्रमुख जातियों में काकेशस, मंगोलियन, हब्शी प्रारम्भ की जातियाँ हैं। भविष्य में इन जातियों के अनेक वर्ग हो गये तथा अनेकों उपजातियों का प्रादुर्भाव हो गया।। अर्वाचीन युग में एशिया में सहस्रों प्रकार की जातियाँ पाई जाती हैं। काकेशस जाति के लोग आर्य कहलाते हैं। ये लोग दीर्घाकार, लम्बे, गौर वर्ण, व्यक्तित्व में गठन तथा सौन्दर्य लिये हुए, सीधे नेत्रों वाले होते हैं। इनके बाल बड़े मुलायम होते हैं। ये लोग ईरान, अफगानिस्तान, भारत और पश्चिमी एशिया में पाये जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि यूरोप के लोग भी इन्हीं की सन्तानें हैं। मंगोलियन जाति के लोगों का रंग पीला होता है, इनकी नाक चपटी और कुछ पिचकी हुई होती है। आँखें बन्द सी और तिरछी होती हैं। इस जाति के लोग चीन, जापान, मलाया, इन्डोचायना में बसे हुए हैं।
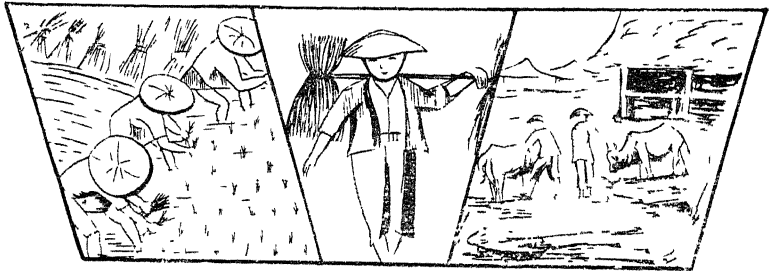
चित्र ६

तीसरे प्रकार की जाति हब्शी पायी जाती है। काकेशस जाति में जब कोई व्यक्ति अधिक कुरूप हो जाता है तो उसे 'हब्शी' नाम से सम्बोधन करके चिढ़ाया जाता है। हब्शी जाति गहरे श्यामवर्ण की होती है। इनका कद प्रायः नाटा, लगभग ३ फीट से ३½ फीट तक ऊँचा होता है। इनके ओठ मोटे और भद्दे होते हैं। बाल बड़े और कड़े तथा बल खाये हुए और घुँघराले होते हैं। इनके पूर्वज प्रायः जंगली अवस्था में रहकर पशुओं का शिकार किया करते थे। अब इनकी अवस्था में भी सुधार होता जा रहा है। अंडमान, पूर्वी द्वीपसमूह तथा मलाया में ये लोग निवास करते हैं।

चित्र ७

एशिया के सम्पूर्ण उद्योग-धन्धे वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों पर आधारित हैं। समुद्र के निकटवर्त्ती स्थानों पर मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। जिससे वहाँ पर अधिकांश व्यक्ति, मछली उद्योग द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं। सघन वनों से लकड़ी-उद्योग प्रचलित है। साथ ही शिकार भी किये जाते हैं। पठारी स्थानों पर भेड़ें चराई जाती हैं। समतल तथा उपजाऊ भूमि पर कृषि की जाती है। एशिया के उद्योगों पर एक विहंगम दृष्टि डालने के पश्चात् स्पष्ट होता है कि उनमें प्रमुख व्यवसाय निम्नलिखित हैं—

एशिया के अधिकांश देशों में कृषि की जाती है। कृषि उन देशों में होती है जहाँ मानसूनों से वृष्टि होती है या सिंचाई के अन्य साधन उपलब्ध होते हैं। कृषि-प्रधान देशों में भारत, ब्रह्मा, स्याम, चीन आदि देश प्रमुख हैं। इन देशों की प्रमुख पैदावार चावल, तम्बाकू, गेहूँ, जौ, अफीम, कपास आदि है। साइबेरिया प्रदेश में गेहूँ को खेती में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। आसाम, पूर्वी चीन, जापान में चाय पैदा होती है। अरब, मालाबार, बोर्नियो में कहवा उत्पन्न होता है। एशिया माइनर, तुर्किस्तान, भारत में विभिन्न प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा खनिज खोदना भी एशिया का प्रमुख व्यवसाय है। खनिज, प्राकृतिक साधन है जिनसे किसी भी देश की आर्थिक अवस्था में आश्चर्यजनक परिवर्तन आ सकता है। किसी देश की आर्थिक उन्नति, सुख-समृद्धि इन्हीं खनिजों पर आधारित होती है। एशिया के प्रमुख

खनिज पदार्थों में सोना, चाँदी, कोयला, ताँबा, अभ्रक आदि प्रसिद्ध हैं। सोना साइबेरिया में, अल्टाई पहाड़, मन्चूरिया, मैसूर, जापान, बोर्नियो तथा काकेशिया में मिलता है। गोलकुण्डा में हीरा, ब्रह्मा में लाल, मलाया में टीन, जापान में ताँबा और पारा। भारत, चीन, जापान में कोयला मिलता है। फारस, ब्रह्मा में मिट्टी का तेल, पेट्रोल आदि मिलता है। पर्वतीय प्रदेशों में लकड़ी काटने का काम किया जाता है। इन लकड़ियों पर विभिन्न उद्योग-धन्धे आधारित होते है। हिमालय की तराई, स्याम, ब्रह्मा में लकड़ी काटने का कार्य अधिक किया जाता है। इन वनो में साल, सनोवर, चीड़, देवदार, स्प्रूस, बाँस, रबर आदि कीमती वृक्ष होते है। समतल मैदान तथा चारागाहों में जानवरों को पालने, चराने तथा एकत्रित करने का कार्य किया जाता है। तुर्किस्तान, साइबेरिया इस कार्य के लिये अधिक प्रसिद्ध हैं। समुद्र तटों पर मछली मारने का उद्योग किया जाता है। यह व्यवसाय जापान सागर, जापान, कोरिया, फिलीपाइन आदि देशों में किया जाता है। साइबेरिया सघन वनों से आच्छादित होने के कारण वहाँ पर शिकार का व्यवसाय किया जाता है। शिकार में विभिन्न वनपशु जैसे—शेर, चीता, व्याघ्र, हिरन, भेड़िया, रीछ आदि प्रमुख हैं। समुद्रों के समीप बसे हुए देशों को एक बड़ा लाभ और है कि समुद्रों मे मोती पाये जाते हैं। बहुत से स्थानो पर गहरे समुद्रों से मोती निकाले जाते है जैसे कि फारस की खाड़ी इसके लिये अधिक प्रसिद्ध है। इन व्यवसायों के अतिरिक्त एशिया में बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हैं। इन कारखानों के लिये कच्चा माल पृष्ठभूमि से ही प्राप्त हो जाता है। इन कारखानों के कच्चे माल के उत्पादन पर भौगोलिक परिस्थितियाँ अपना प्रभाव डालती हैं। सूती कपड़े के कारखाने नम जलवायु में ही स्थापित हो सकते हैं। जापान और भारत में लोहे, ऊन, कपास तथा रेशमी कपड़ों के कारखाने पाये जाते हैं। चीन में रेशम के कारखाने तथा बंगाल में जूट के कारखाने हैं।

भौगोलिक परिस्थितियो में पर्वतों का भी अपना विशिष्ट स्थान है। पर्वतो से अनेकानेक लाभ है। पानी भरी हवायें इन्ही पर्वतो से टकरा कर समीपवर्ती प्रदेशो मे वर्षा करती है। तलहटी प्रदेशो में वनपशु अधिकांश पाये जाते है। ढालू भागो पर चारागाह तथा पर्वतीय भागो पर सघन वन खड़े होते है। इन वनों से विभिन्न प्रकार की लड़कियाँ तथा अन्य धातुएँ प्राप्त होती है। एशिया के पश्चिम में से दो पर्वत श्रेणियाँ चलती हैं और बहुत दूर तक साथ-साथ चलकर पामीर के पठार में एक-दूसरे से मिल जाती है।

पामीर के पूर्व मे तिब्बत का पठार पड़ता है। यह पठार बड़ा विस्तृत है। एशिया के दक्षिण मे अरब तथा दक्षिणी भारत का पठार जमीन से प्रथक निकले हुए प्रतीत होते है। इन पहाड़ो के समीप लम्बी नदियाँ बहती हैं तथा नदियों के तटवर्ती प्रदेशो मे अनेक नगर बसे हुए है। इन नदियो द्वारा लाई हुई मिट्टी से ये मैदान बड़े उपजाऊ है। पामीर का पठार बहुत ऊँचा है। पामीर के पठार से जो पर्वत पूर्व की ओर एक ऊँची दीवार के सदृश चला गया है, यही हिमालय पर्वत है।
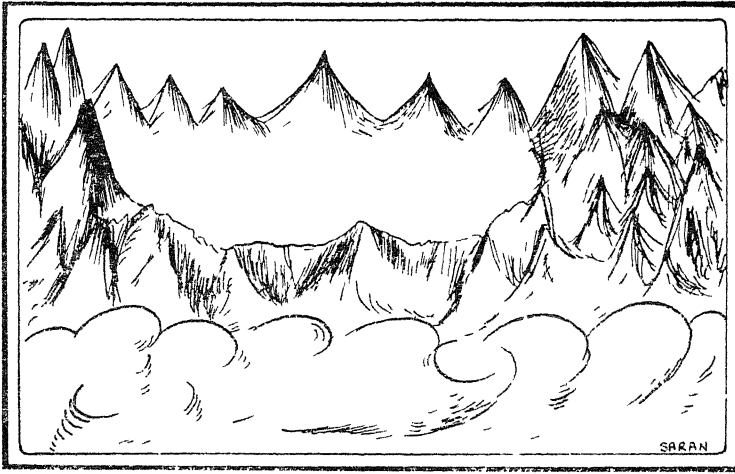
चित्र ८

यह संसार का सबसे ऊँचा पर्वत है। एवरेस्ट इसकी सबसे ऊँची चोटी है। इसके दक्षिणी ढालो पर घनी वर्षा के कारण सघन वन है। हिमालय आर्थिक दृष्टि से भारत के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसका भारतीय दार्शनिक चिन्तन पर भी प्रभूत प्रभाव पड़ा है।

मैदानों का मानव-जीवन पर काफी प्रभाव पड़ा है। नदियो के निकटवर्ती समतल मैदानो में ही मनुष्य की प्रचीन सभ्यताओं ने विकास किया है। इन उपजाऊ मैदानो मे ही आजकल अधिक जनसंख्या पायी जाती है। उपजाऊ होने के कारण मानव-जीवन पर इन मैदानो का बड़ा प्रभाव पड़ा है। हिमालय के उत्तर मे दक्षिण से उत्तर की ओर झुका हुआ एक विशाल मैदान है। यह साइबेरिया का मैदान कहलाता है। इस मैदान के उत्तरी भाग में इतनी अधिक

सर्दी पड़ती है, कि विषवत् रेखा के समीपवर्ती लोगों को असह्य हो जाती है। अधिक बर्फ़ पड़ने के कारण यहाँ वनस्पतियों का पूर्णतया अभाव रहता है। बर्फ के घर, माँस-मछली का भोजन, यहाँ की विशेषतायें हैं। यहाँ के लोग पशुओं की खाल के वस्त्र पहिनते हैं। इस बड़े मैदान में, ओबी, यनीसी, लीना नामक तीन नदियाँ बहती हैं। किन्तु साल के कुछ महिनों को छोड़ कर, वर्ष
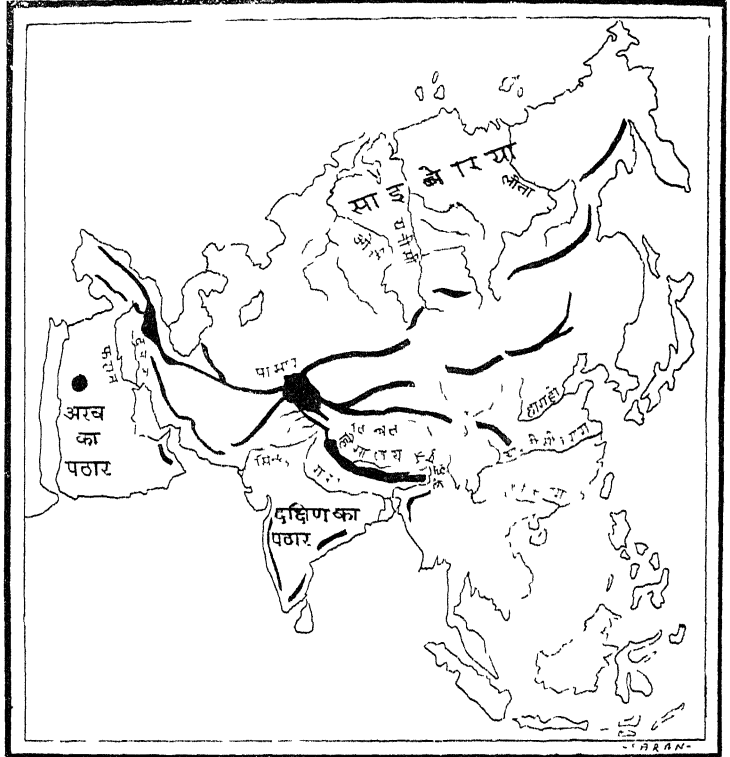
चित्र ६

भर जमी रहती हैं, जिस कारण से इनमें व्यापारिक जहाज भी नहीं आ जा सकते हैं।

एशिया के दक्षिण में नदियों द्वारा बनाये गये दो बड़े मैदान हैं। उनमें से एक भारत में, गंगा, सिंध, ब्रह्मपुत्र द्वारा बनाया गया है। उपजाऊपन की दृष्टि से यह मैदान विश्व के प्रमुख उपजाऊ मैदानों में से एक है। इस मैदान

की प्रमुख पैदावार, गेहूँ, जौ, चना, चावल, चाय, कहवा, गन्ना, जूट इत्यादि वस्तुएँ हैं। दूसरा प्रमुख मैदान दजला फरात का है। दजला और फरात की नदियों के बीच यह बड़ा मैदान है। इसे मैसोपोटामिया का मैदान भी कहते हैं। पैदावार की दृष्टि से श्रेष्ठ होने के कारण यहाँ की जनसंख्या बहुत अधिक है।

इसी बीच एशिया के प्रमुख देशों के मैदानों पर भी दृष्टि डालना आवश्यक है। हिमालय के पूर्व में चीन प्रदेश है। इस प्रदेश में नदियों ने बड़े-बड़े मैदान बनाये हैं। ह्वांगहो नदी द्वारा निर्मित मैदान में करोड़ों की जनसंख्या बसी हुई है। कृषि के लिए यह मैदान उत्तम है। जिसमें चावल अधिक पैदा होता है। यांगसीक्यांग नदी के मैदान में तालाब और झीलें अधिक हैं। तिब्बत से निकल कर यह नदी दुर्गम स्थानों में होती हुई मैदान में पहुँचती है। इस मैदान में बहुत अधिक वर्षा होती है तथा उष्ण जलवायु होने के कारण यहाँ चावल अधिक पैदा होता है। चावल ही यहाँ के मनुष्यों का प्रमुख भोजन है।

मध्य एशिया में, विश्व का सबसे बड़ा रेल मार्ग है। जिसने दो महाद्वीपों को परस्पर मिला दिया है। जो ट्रान्स साइबेरियन रेलवे के नाम से जाना जाता है। कुल रेल मार्ग की लम्बाई ५७०० मील है और इसके द्वारा यात्रा करने में १५ दिन लगते हैं। यूरोप महाद्वीप के मास्को नगर से ब्लाडीवोस्टक बन्दरगाह तक पहुँचने के लिये केवल १५ दिन लगते हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य गाड़ी भी ट्रान्स कास्पियन रेलवे सुप्रसिद्ध है जो लगभग २००० मील लम्बी है।

पशुओं का जीवन देश की वनस्पति तथा जलवायु पर आधारित होता है। इनमें कुछ पालतू पशु होते हैं जिनसे घरेलू कार्य किये जाते हैं तथा दूध, घी, मांस, मक्खन प्राप्त होता है। चीन के पामीर के पठार में स्थित, मैसोपोटामिया में भेड़िया, रीछ, लोमड़ी, भालू, चीता आदि जंगली जानवर मिलते हैं। टुन्ड्रा प्रदेश में बारहसिङ्गा तथा स्टैपी में घोड़े, भेड़, बकरी, बैल, मिलते हैं। ईरान में ऊँट और घोड़े, तिब्बत में याक नाम का जानवर होता है। याक, भारत के बैल से मिलता-जुलता जानवर है जो बैल के ही सदृश काम करता है। रेगिस्तानी प्रदेशों में ऊँट लाभदायक पशु होता है। इसके अतिरिक्त मरुस्थली प्रदेशों में, घोड़ा, हिरन, शेर भी मिलते हैं। मान-

सूनी प्रदेशों में तथा पूर्वी द्वीप समूह के टापुओं में जैसे—जावा, सुमात्रा, बोर्नियो इत्यादि में बन्दर, चीते, भालू, हाथी, लैमूर, हिरन, हाईना, तापिर, बैल, घोड़े, भैंस, भेड़, बकरी आदि जानवर पाये जाते हैं। विशाल आकार के पशुओं को एक विशेष जलवायु की आवश्यकता पड़ती है। उनके अनुकूल वातावरण में ही वे पनप सकते हैं। प्राचीन दीर्घकाय सरीसृप प्रायः लोप हो चुके हैं। अर्वाचीन युग में भी दीर्घाकार शरीर वाले जानवर जैसे, शेर, मगर, हाथी, गेंडा आदि धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं। आवागमन के साधनों तथा विध्वंसकारी हथियारों के प्रयोगों से इनका जीवन यापन दुर्लभ है।

एशिया के बिलकुल उत्तर में एक टुंड्रा प्रदेश है। यहाँ पर बर्फ अधिक पड़ती है। यह हर समय बर्फ से ढका रहता है। यहाँ ओब्री, यनीसी, लीना नाम की तीन नदियाँ बहती हैं। सर्दियों में इनके निकलने का उदगम स्थान जम जाता है। यहाँ झीलें तथा दलदल अधिक है। यहाँ के रहने वाले लोग ऐस्कीमो कहलाते हैं। ये लोग धरती के दूसरे लोगों से बिलकुल अलग होते हैं। इनका काम मछली मारना और शिकार खेलना होता है। यहाँ बारहसिंगा नामक जानवर पाया जाता है। इसके पैरों के खुर चिरे होने के कारण यह बर्फ पर नहीं फिसल सकता है। इसके अतिरिक्त यहाँ कुत्ते भी पाये जाते हैं। ये दोनों जानवर ऐस्कीमो लोगों की स्लेज गाड़ी को खींचने के काम आते हैं। ये लोग बर्फ में घर बनाते हैं तथा बारहसिंगा की खाल के कपड़े पहिनते हैं। ये लोग माँस मछली खाते हैं। यहाँ पेड़ पौधे पैदा नहीं होते हैं।

टुंड्रा प्रदेश के नीचे दक्षिण में पूर्वी साइबेरिया नाम का देश है। समस्त प्रदेश पठारी होने के कारण यहाँ मैदान का अभाव है। यह पठारी भाग जंगलों से ढँका हुआ है। ये जंगल बहुत दूर तक फैले हुए हैं। इन जंगलों में फर, सनोवर, लार्च के पेड़ बहुत हैं। अत्यधिक ठण्ड पड़ने के कारण यहाँ की जनसंख्या बहुत कम है। इसके पूर्व में ब्लाडीवोस्टक बन्दरगाह है।

ब्लाडीबोस्टक ही ट्रान्ससाइबेरियन रेलवे का अंतिम स्टेशन है। यहाँ का वरखोयास्क नामक स्थान संसार का सबसे ठण्डा स्थान है।

इन देशों के निकट ही साइबेरिया का दूसरा हिस्सा, पश्चिमी साइबेरिया है। यह एक चौरस मैदान है। जो यूराल पर्वत तथा यनीसी नदी के बीच में है और ओबी नदी इसमें बहती है। इस देश में रूस का राज्य है। अभी रूस ने इनमें गेहूँ पैदा करने का विचार तय किया है। इस देश का ऊपरी

हिस्सा तो बहुत ठण्डा है। और बीच में गेहूँ वाला हिस्सा है। और नीचे वाला भाग जानवरों के चरने का स्थान है। यहाँ एक अल्टाई नाम का विशाल पर्वत है जिसमें सोना, चाँदी, सीसा मिलता है। इसकी राजधानी टोमस्क है। इस शहर के पास ही अधिक सोना मिलता है। इसके अतिरिक्त यहाँ ओमस्क नाम का बड़ा शहर है। यहाँ से मक्खन का व्यापार बहुत होता है।

तुर्किस्तान—इस देश को तूरान भी कहते हैं। इस देश में तुर्क लोग अधिक रहते हैं। यहाँ पर बड़े-बड़े मैदान हैं। जिनमें घास उगती है। इन घास के मैदानों में कहीं-कहीं झीलें तथा दलदल हैं। इसे स्टैपी प्रदेश भी कहते हैं। यहाँ पर लगभग चार माह तक बर्फ पड़ती है। इस बर्फ के पिघलते ही यहाँ सुन्दर फूल उगते हैं, जो गर्मी में सूख जाते हैं। यहाँ के रहने वाले लोगों को खिरगीज तथा कालमुक कहते हैं। इन लोगों का रहन-सहन अन्य देशों से भिन्न है। इनके चरने के स्थान बँटे हुए होते हैं। ये लोग गर्मी के दिनों में अपने जानवरों को चरने के लिये ऊँचे पहाड़ पर ले जाते हैं। इनका एक चलता फिरता घर होता है, जिसे 'कबतिका' कहते हैं। इसे मुड़ाकर ऊँटों पर भी बाँधा जा सकता है। ऊन, चमड़े के थैले, कालीन, गलीचा, कपड़े, माँस, सबकुछ इन्हें अपने जानवरों से प्राप्त होता है। एक जगह घास समाप्त होने पर ये अपने जानवरों को दूसरी जगह ले जाते हैं। इनका रहन-सहन भ्रमणशील जातियों की भाँति होता है। तुर्किस्तान के नीचे की ओर सर तथा आमू नदियों से सिंचाई होती है, जिससे गेहूँ, सन, तम्बाकू आदि की खेती होती है तथा शहतूत के पेड़ों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। सेव, नासपाती, अंगूर आदि फल बहुत होते हैं। इस प्रदेश में ट्रान्स-कास्पियन रेलवे चलती है। इस देश का सबसे बड़ा शहर ताशकन्द है। ताशकन्द ही यहाँ की राजधानी है। यहाँ पर फल अधिक पैदा होते हैं तथा चाकू बनाने का काम किया जाता है।

एशिया के पास ही भूमध्यसागर है। उसके निकटवर्ती देशों को भूमध्य सागरीय प्रदेश कहते हैं। इस प्रदेश में कुछ बड़े देश हैं, जैसे—एशिया माइनर, आरमीनियाँ, कुर्दिस्तान, मैसोपोटामियाँ, सीरिया, पैलेस्टाइन और काकेशिया आदि। ये देश भूमध्यसागर के बिलकुल निकट हैं। जलवायु भी वैसी ही है।

एशिया माइनर—इसका अधिकांश भाग पठारी है। बगदाद रेलवे यहीं होकर जाती है। ओक, फर, जैतून, अंजीर, नारंगी, नीबू, सेव के पेड़ यहाँ पर अधिक हैं। यहाँ की बकरियों की ऊन सुन्दर तथा मुलायम होती है।

यहाँ सोना, चाँदी, सीसा, लोहा और कोयला भी मिलता है। यहाँ के त्रिबूजन, स्मरना, ब्रूसर आदि प्रसिद्ध नगर हैं। बगदाद रेल्वे त्रिबूजन से प्रारम्भ होती है।

आरमीनिया और कुर्दिस्तान—यह एक बहुत ऊँचा पठारी भाग है। यहाँ पर अरारात नाम का बहुत बड़ा पहाड़ है, जिससे दजला-फरात नाम की दो बहुत बड़ी नदियाँ निकलती हैं। यहाँ खारे पानी की तीन बड़ी झीलें हैं। यहाँ पर तम्बाकू, कपास और अंगूर पैदा होते हैं। यहाँ के लोगों का मुख्य धन्धा भेड़ें पालना और खेती करना है। भेड़ों की ऊन से कम्बल, कालीन दुशाले आदि बनते हैं। इसकी राजधानी एरीवान है।

फिलिस्तान और सीरिया—यह दो पहाड़ों के बीच एक घाटी के समान बसा हुआ है। इसमें जार्डन नामक नदी बहती है। जो मृत सागर नामक समुद्र में गिरती है। यहाँ बैरुद नामक बन्दरगाह है तथा यह सीरिया की राजधानी है। यहाँ की घाटियों में जैतून, अंगूर, अंजीर आदि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ एक जरूसलम नामक नगर है, जो फिलस्तीन की राजधानी है। अब यहूदियों ने अलग ही इजराइल नामक राज्य बना लिया है। जार्डन नदी इतनी खारी है कि उसमें मछलियाँ भी जीवित नहीं रह सकती हैं। इसलिये यहाँ अधिक मात्रा में नमक बनाया जाता है।

मैसोपोटामिया—इसी भाग में दजला, फरात नामक नदियाँ बहती हैं। इन दोनों के बीच का स्थान मैसोपोटामिया कहलाता है। अब यह भाग ईराक के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ की मिट्टी अच्छी होने के कारण मक्का, गेहूँ, जौ, कपास आदि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है, इस कारण से यहाँ के लोग जमीन के भीतर मकान बनाकर रहते हैं। यहाँ मिट्टी का तेल भी निकाला जाता है। नदियों में नावों द्वारा व्यापार भी किया जाता है। मोसल, बगदाद, बसरा आदि यहाँ के प्रसिद्ध शहर हैं। बगदाद तो पुराने समय में खलीफाओं की राजधानी भी रहा है। इसमें छुआरे अधिक पैदा होते हैं। यहाँ के छुआरे प्रसिद्ध होने के कारण उन्हें दूर-दूर तक भेजा जाता है। बगदाद और बसरा हवाई रास्ते के बीच में पड़ते हैं। यहाँ से लन्दन, सिंगापुर को हवाई जहाज जाते हैं।

कॉकेशिया—यह कालासागर तथा कास्पियन सागर के बीच में स्थित है। अब इसके दो भाग हो गये हैं जो क्रमशः जार्जिया तथा एजन-वैजान के नाम से पुकारे जाते हैं। इस देश के बीच की घाटी में गेहूँ, अंगूर, नारंगी,

मक्का, तम्बाकू, कपास आदि अधिक पैदा होती है। यहाँ तरह-तरह की जाति रहती हैं। यहाँ पर मिट्टी का तेल बहुत निकलता है। इसके लिये वाकू नामक शहर बहुत प्रसिद्ध है। इसके आसपास तेल के सैकड़ों कुए हैं।

मरुस्थलीय प्रदेश शुष्क होते हैं तथा चारों ओर बालू रेत के पहाड़ होते हैं। पानी बहुत कम बरसता है, जिससे पैदावार कम होती है तथा कहीं-कहीं तो बिलकुल ही नहीं होती है। एशिया में अरब, फारस, अफगानिस्तान आदि बड़े रेगिस्तानी देश हैं।

अरब देश के तीनों ओर समुद्र है, इसका पश्चिमी भाग तो बिलकुल रेगिस्तान है, यहाँ खजूर के पेड़ अधिक हैं। यहाँ का मुख्य नगर मक्का है। यहीं पर मुसलमान धर्म-प्रचारक हजरत मुहम्मद साहब पैदा हुए थे। इसलिये मक्का मुसलमानों का तीर्थस्थान है। यहाँ का दूसरा शहर मदीना है। मदीना में भी खजूर अधिक पैदा होते हैं। यह शहर भी मुसलमानों का धार्मिक स्थान है। इसका नीचे का भाग उजाड़ पड़ा हुआ है। वर्षा भी बहुत कम होती है। यहाँ की जन-संख्या बहुत कम है। इस भाग में अदन एक बड़ा बन्दरगाह है, जहाँ जहाज कोयला लेते हैं। अरब में बद्दू लोग रहते हैं। ये लोग घर बनाकर नहीं रहते हैं। ये ऊँट, घोड़े, भेड़, बकरियाँ पालते हैं। ऊँट यहाँ का रेगिस्तानी जहाज है। ये लोग माँस, खजूर, दूध आदि से पेट पालते हैं। जानवरों को चराना, तथा काफिलों को रास्ता बताना ही इनके मुख्य कार्य हैं। अरब के बीच में वास्तविक रेगिस्तान है। जहाँ पर रात में भारी ठण्ड पड़ती है तथा दिन में वैसी ही गर्मी जिससे चट्टानों का टूटने-फूटने का कार्य होता रहता है। यहाँ थोड़ा अनाज, खजूर, दाल आदि पैदा होते हैं। फारस की खाड़ी अरब के नीचे है। जहाँ पर बहरिन नामक टापू है। टापू के चारों तरफ जल होता है। यहाँ मोती निकालने का कार्य किया जाता है। नजद नामक पठार अरब के बीच में है। यहाँ के लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। इनका मुख्य भोजन खजूर तथा ज्वार है तथा यही यहाँ की पैदावार है।

फारस एक पहाड़ी रेगिस्तान है। यहाँ नदियाँ बहुत कम हैं। यहाँ तम्बाकू कपास, अनाज, रेशम, ऊन, अफीम, शराब और गुलाब के फूल अधिक होते हैं। फूलों से इत्र निकाला जाता है। यहाँ पर काफी तेल के कुए हैं तथा केवल एक रेलवे लाइन है। इसका प्रसिद्ध शहर तेहरान है। यही राजधानी है। शीराज नामक शहर गुलाब का इत्र तथा शराब के लिये प्रसिद्ध है।

भारत और रूस के बीच में एक छोटा सा देश अफगानिस्तान है। यह पहाड़ी देश है। इसके एक भाग में रेगिस्तान है। यहाँ पर जाड़ों में बर्फ पड़ती है और गर्मियों में विशेष गर्मी, फिर भी पहाड़ों के उपरी भाग की जलवायु अच्छी है। यहाँ के निवासी अफगान कहलाते हैं। ये लोग घूमते रहते हैं। इनका कार्य जानवर चराना तथा व्यापार करना है। यहाँ की घाटियों में गेहूँ व फल होते हैं। यहाँ सोना, चाँदी, लाल, लोहा, ताँबा आदि की खानें हैं। यहाँ से ५ बड़े-बड़े रास्ते विदेशों को जाते हैं। काबुल अफगानिस्तान की राजधानी है। यह प्रसिद्ध शहर भारत और एशिया के बीच का व्यापारिक स्थान है। कन्धार भी एक बड़ा शहर है। यह शहर भारत का द्वार कहलाता है।

मानसूनी प्रदेशों में निश्चित महीनों में वर्षा होती है। यहाँ पर एशिया के सबसे अधिक लोग रहते हैं। यह देश अधिक धनवान तथा व्यापार में सबसे आगे है। इसके अतिरिक्त यहाँ की मिट्टी अच्छी होने के कारण यहाँ पैदावार भी अच्छी होती है। जितने भी पुराने आविष्कार तथा संस्कृतियाँ सभ्यतायें हैं, वे सब भारत तथा चीन से प्रारम्भ हुई हैं। पुराने धर्म यहीं से चले थे। मानसूनी देशों में भारत, पाकिस्तान, लंका, बर्मा, मलाया, इन्डोचायना, चीन, जापान हैं।

बर्मा—यह भारतवर्ष के पूर्व में स्थित बर्मा या ब्रह्मा नाम से जाना जाता है। पहले यह भारत का ही एक अंग था। यहाँ धान, कपास, मकई, ज्वार, बाजरा, तम्बाकू आदि पैदा होते हैं। रंगून यहाँ की राजधानी है। यह एक विशाल बन्दरगाह है। यहाँ पर लकड़ी, चावल तथा तेल साफ करने के कारखाने हैं। दूसरा प्रसिद्ध शहर माण्डले है, जो यहाँ की प्राचीन राजधानी थी। यहाँ व्यापार अधिक होता है, यहाँ लकड़ी चीरने के कारखाने हैं। बर्मा में मिट्टी का तेल निकाला जाता है। यहाँ हाथी अधिक पाये जाते हैं। यहाँ के सफेद हाथी अधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँ चाँदी तथा शीशे आदि की खानें हैं।

चीन—एशिया के पूर्वी भाग में चीन है, यहाँ पर विश्व में सबसे अधिक लोग रहते हैं। यहाँ की जनसंख्या लगभग ६० करोड़ है। इसका क्षेत्रफल ३७ लाख वर्गमील के लगभग है। इसके मध्य में एक पहाड़ है जो इसको दो भागों में विभक्त कर देता है। यहाँ की जमीन बहुत उपजाऊ है। ऊपर के भाग में गेहूँ अधिक पैदा होता है तथा नीचे के भाग में अधिक वर्षा होती है।

यहाँ पर अन्य देशों से अधिक चावल पैदा होता है। यहाँ शहतूत के पेड़ अधिक हैं। यहाँ रेशम, चावल, चाय, सूत, अण्डे आदि अधिक पैदा होते हैं। इनका व्यापार भी दूसरे देशों से होता है। यहाँ पर कोयला, लोहा, ताँबा, टीन, सीसा; काँसी आदि खनिज पदार्थ अधिक पाये जाते हैं। यहाँ रबड़ तथा पटसन के कारखाने हैं। घरेलू दस्तकारियों में चीन बहुत बढ़ा चढ़ा है। यहाँ चीनी के बर्तनों पर सुन्दर बेल-बूटे बनाये जाते हैं और रेशम तथा जरी का कार्य बहुत सुन्दर किया जाता है। रेशम की पट्टियों पर नाना प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं जिनका व्यापार पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यहाँ पैदावार अच्छी होती है तथा ह्वांगहो और यांगसीक्यांग नामक नदियाँ बहती हैं। ह्वांगहो तो 'चीन का शोक' कहलाती है, क्योंकि इसमें बाढ़ आने से शहर के शहर बर्बाद हो जाते हैं।

नेपाल—तिब्बत और भारत के बीच में नेपाल नामक देश है। इसमें कॉफी पैदा होती है। इस देश के नीचे का भाग तराई का भाग कहलाता है। इसके ऊपरी भाग में पहाड़ अधिक हैं। धौलगिरी, कंचनजंघा तथा एवरेस्ट की बहुत ऊँची श्रेणियाँ यहीं पर हैं। एवरेस्ट विश्व का सबसे ऊँचा शिखर है। यह लगभग ५½ मील ऊँचा है। यहाँ पर कपास, चावल, गेहूँ, गन्ना, तम्बाकू आदि पैदा होते हैं। साल, शीशम, बाँस, आदि के बड़े जंगल हैं। यहाँ चाय भी होती है। जंगलों में बड़े-बड़े जानवर जैसे शेर, चीता, हाथी, भेड़िया, लकड़बग्घा और हिरन आदि जानवर पाये जाते हैं। कस्तूरी का हिरन भी यहीं मिलता है। यहाँ ताँबा, सीसा, जस्ता आदि की खानें अत्यधिक मात्रा में पायी जाती हैं। यहाँ भूरे रंग का कोयला, चूने का पत्थर आदि भी काफी मात्रा में मिलता है। यहाँ मंगोल जाति के लोग निवास करते हैं। नैपाल की तराई में गोरखा नामक जाति रहती है, जो अपनी बहादुरी और वफादारी के लिये बहुत प्रसिद्ध है।

हिन्द महासागर तथा प्रशान्त महासागर के बीच छोटे बड़े बहुत से टापू हैं। इन टापुओं को 'इन्डोनेशिया' कहते हैं। ये टापू लगभग ३००० हैं। जिनकी लम्बाई लगभग ३००० मील और चौड़ाई लगभग ११०० मील है। इनमें बड़े टापू, सुमात्रा, जावा, सेलबीज, बोर्नियो और न्यूगिनि हैं। इनमें भी न्यूगिनी सबसे बड़ा है। इन टापुओं की जमीन बहुत पथरीली है। इन पहाड़ों से गर्म लावा निकलता है, जो बाद में ठण्डा होने पर काली मिट्टी का रूप धर लेता है। इन्डोनेशिया में ऐसी ही जमीन है, जिसका एक तिहाई भाग अधिक

उपजाऊ है। इसमें धान, मकई, साबूदाना, चाय, कॉफी, सिन्कोना आदि पैदा होते हैं। जो बाहर के देशों को भेजे जाते हैं। यहाँ से मछली, पेट्रोलियम, टिन, रबड़, नारियल, चाय आदि का दूसरे देशों से व्यापार अधिक
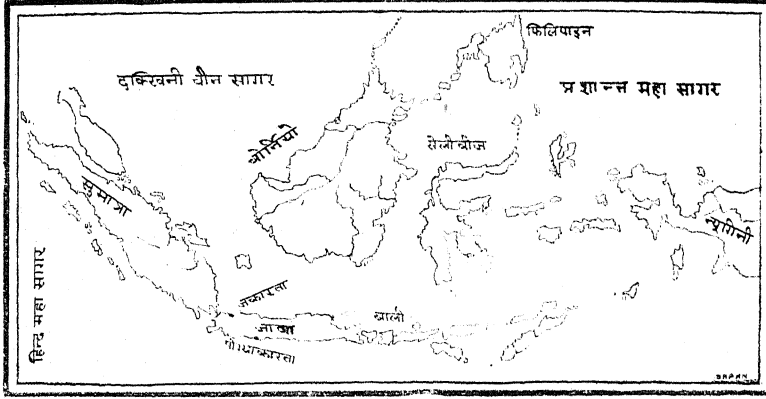
चित्र १०

होता है। इन्डोनेशिया में नदियाँ कम गहरी तथा तेज बहने वाली होती हैं। यहाँ झीलें भी अधिक हैं। यहाँ भारी जंगल हैं। इन जंगलों में शेर, सूअर, साँप, गैंडा तथा अति सुन्दर चिड़ियायें अधिक हैं।

यहाँ की जनसंख्या लगभग ६ करोड़ है। यहाँ मलायी जाति के मनुष्य अधिक रहते हैं। यहाँ पुरुष अधिकांश तहमद लगाते हैं। यहाँ की शहरी स्त्रियाँ यूरोप जैसी पोशाक पहनती हैं। यहाँ पर साल भर वर्षा होती है। यहाँ की जलवायु अच्छी है। यहाँ पर न अधिक गर्मी पड़ती है और न अधिक सर्दी ही। यहाँ अनेकों भाषाएं बोली जाती हैं। यहाँ की राष्ट्रभाषा मलयाई है।
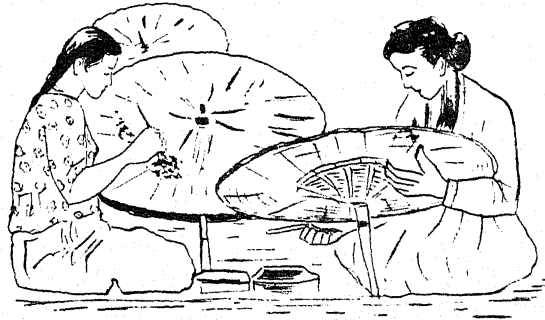
चित्र ११—इण्डोशियन लोग

इन्डोनेशिया की नृत्यकला अधिक प्रसिद्ध है। बाली टापू का नृत्य विश्व-विख्यात है। जकरता, ज़ोग्जाकारता, सराबिया, इन्डोनेशिया के प्रसिद्ध शहर हैं। जोग्जाकारता इसकी राजधानी है। इन टापुओं को पूर्वी द्वीप समूह भी कहते हैं। ये टापू गन्ना तथा गरम मसाले के लिये प्रसिद्ध हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व जापान का निर्मित माल दूसरे देशों को निर्यात किया जाता था। उस समय जापान देश उन्नति के शिखर पर था। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध में हार जाने के कारण इसकी बहुत औद्योगिक हानि हुई, जिसकी यह अब पूर्ति कर रहा है। यह कई बातों में यूरोप से मिलता-जुलता है। जापान की शक्ल केले के सदृश है। यह पूरा पहाड़ी देश है। यहाँ पर फ्यूजीयामा नामक ज्वालामुखी पर्वत बहुत प्रसिद्ध है।

यहाँ पर ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होती है तथा शरद ऋतु में सूखा पड़ती है। यहाँ एक क्योरोसीवो नामक गर्म पानी की धारा बहती है। यहाँ के मध्यभाग से समुद्र लगभग सौ मील दूर है। यहाँ पर जल विद्युत, कोयला, पेट्रोल अधिक होते हैं। यहाँ का समुद्री किनारा कटा-फटा-सा है। यहाँ कई तरह के कारखाने भी हैं। जंगल अधिक होने के कारण, इनमें कोक, पाइन, कपूर के पेड़ अधिक पाये जाते हैं। इसके मध्य पतझड़ वाले जंगल पाये जाते हैं। यहाँ के लगभग ५०% आदमी खेती करते हैं। जौ, जई, राई, आलू, गेहूँ, बाजरा आदि बहुत पैदा होते हैं। यहाँ की मुख्य फसल चाय, चावल, शहतूत की है। यहाँ सबसे अधिक चाय पैदा होती है। विश्व की ५०% चाय जापान से ही प्राप्त होती है। यहाँ की जमीन ढालू तथा चाय के लिये उचित जलवायु है। चाय का दूसरे देशों से निर्यात किया जाता है। गर्मी थोड़े ही समय पड़ने के कारण चावल की एक ही फसल काटी जाती है। यहाँ चावल अन्य देशों की प्रति एकड़ मात्रा से बहुत अधिक पैदा होता है। शहतूत के लिये जापान प्रसिद्ध है। शहतूत के पेड़, खेत के चारों तरफ लगा दिये जाते हैं तथा इनमें रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। रेशम के लिये भी जापान अधिक प्रसिद्ध है।

ताँबा, तेल, लोहा तथा कुछ कोयले की भी खानें पायी जाती हैं। सूती तथा रेशमी कपड़े बनाने का कार्य अधिक होता है। समुद्र के किनारे मछली अधिक पकड़ी जाती हैं। यहाँ की जनसंख्या को देखते हुए कोयला और लोहा बहुत कम निकलता है। जापान की जनसंख्या लगभग ६ करोड़ है। यहाँ के

क्षेत्रफल के अनुसार आबादी बहुत घनी है। टोकियो यहाँ की राजधानी है जो एक बन्दरगाह भी है। खेती के लिये यहाँ चौरस जमीन है। यहाँ का ओसाका नामक शहर सूती कपड़े के लिये अधिक प्रसिद्ध है। नागासाकी में भाँति-भाँति के कारखाने हैं तथा कोयले की खानें भी हैं। इसके अतिरिक्त कोबे, नागोया आदि जापान के प्रसिद्ध शहर हैं।

प्राचीन युग में भारत अपनी सभ्यता और संस्कृति के लिये प्रसिद्ध था। कुछ वर्ष पहिले पाकिस्तान, भारत का एक अंग था किन्तु अब इसके दो भाग हो जाने के कारण भारत का कुछ भाग पाकिस्तान में चला गया। भारत विश्व में एक बड़ा देश माना जाता है। भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत बहुत विशाल है। बाकी तीन ओर समुद्र है। दक्षिण में हिन्द महासागर, पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। इसके पड़ौसी देश लंका, पाकिस्तान और ब्रह्मा हैं। भूमि की बनावट के अनुसार इसे हम चार भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला उत्तर का वह भाग जो हिमालय के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरा इससे नीचे गंगा और सिंध नदियों का मैदान है। यह भाग बड़ा उपजाऊ और समृद्धिशाली है। तीसरा भाग दक्षिणी भारत का पठार है। तथा चौथा भाग है समुद्री तट। भारत के दक्षिण में पूर्वीघाट और पश्चिमी घाट की दो पहाड़ों की कतार सी बनी हुई है। इसके बीच का भाग समुद्री तट का मैदान कहलाता है। यहाँ नारियल, खजूर, गरम मसाले अधिक पैदा होते हैं।

भारत की जनसंख्या लगभग ४० करोड़ है। जनसंख्या के दृष्टिकोण से इसका विश्व में द्वितीय स्थान है। यहाँ का मुख्य धन्धा खेती करना है। यहाँ के लोग अधिकांश गाँवों में रहते हैं। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, आदि अनेक जातियाँ रहती हैं। यह देश बड़ा होने के कारण कई राज्यों में बाँट दिया गया है। इन सभी राज्यों की वेशभूषा, रहन-सहन, आदि सभी अलग-अलग हैं तथा सभी की भाषा भी अलग-अलग पायी जाती है।

यहाँ नदियों के जल से जल-विद्युत उत्पन्न की जाती है तथा नावों द्वारा व्यापार भी होता है। उत्तर भारत की नदियों में गंगा और इसकी सहायक नदियाँ, सिन्ध और उसकी सहायक नदियाँ तथा ब्रह्मपुत्र आदि मुख्य हैं। दक्षिण भारत की नदियों में, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्वदा, ताप्ति, पेनार, बेगई आदि प्रसिद्ध हैं। इन नदियों से सिंचाई के अतिरिक्त जल-विद्युत भी तैयार की जाती है।

भारत एक विशाल देश है। इसमें कहीं अधिक गर्मी पड़ती है तो कहीं अधिक सर्दी। पहाड़ी भागों में सर्दी अधिक पड़ती है और चौरस मैदानों में कम। बरसात भी यहाँ एक सी नहीं होती है। चेरापूँजी नामक स्थान पर यहाँ विश्व में सबसे अधिक वर्षा होती है। जबकि राजस्थान राज्य में बहुत ही कम पानी बरसता है। वर्षा गर्मी सर्दी दोनों में होती है। सर्दी में वर्षा केवल मद्रास में होती है।

भारत में कई तरह के जंगल पाये जाते हैं। जिनमें शुष्क वन, मानसूनी वन आदि हैं। शुष्क वन वहाँ पाये जाते हैं जहाँ पानी कम बरसता है। ये वन अधिकांश राजस्थान में मिलते हैं। इनमें कीकर, बबूल के पेड़ मुख्य रूप से पैदा होते हैं। सदाबहार वन, पहाड़ी वन, गोरन वन आदि भी पाये जाते हैं। इन जंगलों में, लाख, चमड़ा रंगने का सामान, बाँस, कागज बनाने की सवाई घास, तारपीन व लकड़ी का तेल तथा बहुत तरह की कीमती लकड़ी भी मिलती है, जिनमें चीड़, देवद्वार, स्प्रूस, सनोवर, प्लाईवुड आदि प्रसिद्ध हैं।

यहाँ की फसलों में गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, जौ, मकई, गन्ना, चाय, कहवा, तम्बाकू आदि मुख्य हैं। गेहूँ और चावल तो बहुत पैदा होता है। यहाँ जूट सबसे अधिक पैदा होता है। कपास भी काफी मात्रा में उत्पन्न होती है तथा बाहर देशों को भी भेजी जाती है। चाय पैदा करने वाले देशों में इसका द्वितीय नम्बर है।

भारत में कोयला, लोहा, मैंगनीज, अभ्रक आदि खनिज पदार्थ अधिक मात्रा में पाये जाते हैं तथा कुछ सोना, ताँबा, शोरा भी निकलता है।

देहली भारत की राजधानी है। इसके अतिरिक्त जमशेदपुर, बम्बई, कानपुर, कलकत्ता, अहमदाबाद, जयपुर, नागपुर, मद्रास आदि इसके प्रसिद्ध शहर हैं।

भारत को चार प्राकृतिक भागों में बाँटा गया है। जो ऊपर लिखे जा चुके हैं।

(१) **उत्तरी पहाड़ी प्रदेश**—यह हिमालय पर्वत का भाग है। यहाँ सर्दी के दिनों में बर्फ जम जाती है तथा गर्मी के दिनों में पिघलना प्रारम्भ हो जाती है। यही पानी गंगा और यमुना का रूप धर लेता है। इसीलिये गंगा नदी बारह महीने बहती रहती है। हिमालय पर्वत सबसे ऊँचा तथा १५०० मील लम्बा है। यह उत्तर से दक्षिण तक १५० से २०० मील तक लम्बा

है। हिमालय पहाड़ के ऊपर की तरफ पामीर का पठार है। जिससे हिमालय पहाड़ निकला है। काश्मीर से लेकर आसाम तक के भाग को बड़ा हिमालय कहा जाता है। इसकी ऊँचाई लगभग २० हजार फुट है। इसी भाग में एवरेस्ट की चोटी भी है। जिसकी ऊँचाई २९००२ फीट है। इस भाग में नन्दा देवा तथा धवलगिरी आदि चोटियाँ भी है। इसके नीचे ५० मील चौड़ा और लगभग १५ हजार फुट ऊँचा भाग है जो छोटा हिमालय कहा जाता है। इस जगह पर भारत के सुन्दर पहाड़ी शहर बसे हुए हैं। जिनमें गर्मी के दिनों में लोग आते हैं। शिमला, नैनीताल, मंसूरी, दार्जिलिंग आदि शहर यहीं बसे हुए हैं। इसका तीसरा भाग सहायक हिमालय कहा जाता है। यह भाग उत्तरी मैदानों के मध्य है। यहाँ की मुख्य चोटी को शिवलिक कहते हैं। छोटे हिमालय तथा सहायक हिमालय के मध्य उपजाऊ घाटियाँ भी हैं जो कही कहीं दून के मैदान कहे जाते हैं। हिमालय के नीचे का भाग तराई कहलाता है। इस भाग में घने जंगल खड़े है। वर्षा अधिक होने के कारण यहाँ पानी अधिक एकत्रित हो जाता है, जिससे दलदल हो जाता है। यहाँ की जलवायु अच्छी न होने के कारण से यहाँ जन-समाज नही रहता है।

यह कहा जाता है कि जिस स्थान पर आज हिमालय पर्वत स्थित है, इस स्थान पर पहिले तेथिस नामक एक बड़ा समुद्र था जिसमें नीचे बड़े-बड़े पहाड़ थे। इस समुद्र में नदियाँ हर साल मिट्टी लाकर इकट्ठी कर देती थीं, इस प्रकार मिट्टियाँ लगातार जमती रहीं। धीरे-धीरे यही मिट्टी का ढेर ५ मील ऊँचा हो गया। इस ढेर के बोझ से समुद्री तल नीचे चलता चला गया और हिमालय ऊपर आ गया। इस तरह हिमालय बना।

हिमालय से हमें अनेक लाभ हैं। हिन्द महासागर से पानी लेकर हवायें चलती हैं और इससे आकर टकरा जाती हैं, तब नीचे के मैदानों में वर्षा होती है। हिन्दुस्तान की मुख्य नदियाँ गंगा जमुना आदि सभी इससे ही निकलती है, जिनमे खेतों की सिंचाई होती है तथा उससे पैदावार अच्छी होती है। भारत से ऊपर साइबेरिया, जो बहुत ठण्डा प्रदेश है, से ठण्डी हवायें चलती हैं, जो हिमालय से रुक जाती हैं। यदि हिमालय न होता तो इन ठण्डी हवाओं के आने से भारत में बहुत ठण्ड पड़ती। इसके दक्षिण में बहुत जंगल हैं, जिनसे कीमती लकड़ी मिलती है। पहाड़ी भागों में कई तरह के जानवर भी पाये जाते है, जिनका शिकार किया जाता है। इस पहाड़ के ढालों पर जानवर चराये जाते हैं तथा चाय भी पैदा की जाती है।

(२) **उत्तरी भारत का मैदान**—यह मैदान हिमालय से निकली नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना है। पहले यहाँ समुद्र था परन्तु जब समुद्र सूख गया तब यहाँ मैदान बन गया। यह मैदान लगभग २००० मील लम्बा है। नदियाँ जो मिट्टी अपने साथ पहाड़ से बहा लाती हैं, उसे इस मैदान में लाकर बिछा देती हैं। यह मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है। यह मैदान विश्व के उपजाऊ मैदानों में से एक है। दिल्ली के पास इस मैदान के दो भाग हो गये हैं। एक तो पश्चिम में सिन्ध नदी का मैदान तथा दूसरा पूरब में गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी का मैदान है। यह भूमि बहुत उपजाऊ है। इस मैदान की मिट्टी बहुत गहरी है जिससे नहरें और नदियाँ सरलता से निकाली जा सकती हैं। यह मैदान कहीं कहीं चौरस तथा ढालू भी है। जिससे इसमें रेलमार्ग तथा सड़कें सरलता से निकाली जा सकती हैं। इस मैदान की जलवायु अच्छी है। यहाँ एक ओर कपास होती है तथा दूसरी ओर गन्ना। गेहूँ, चावल, जूट, तथा गन्ना अधिक पैदा होता है। यहाँ घनी आबादी बसी हुई है।

(३) **दक्षिणी पठार**—यह भाग बहुत प्राचीन है। यह हमारे देश के दक्षिण में है। जो भाग अधिक ऊँचे हैं वे तो पहाड़ बन गये हैं। पहले यहाँ ज्वालामुखी पहाड़ थे। पहाड़ों के कारण यहाँ की भूमि काली है। दक्षिणी पठार में ऊपर की तरफ विंध्याचल, सतपुड़ा की पहाड़ियाँ हैं, तथा पूर्व की तरफ राजमहल आदि की पहाड़ियाँ हैं। इसके पश्चिम में कई दर्रे हैं। जो भोरघाट, थालघाट आदि के नाम से जाने जाते हैं। इस भाग में कई नदियाँ बहती हैं, जैसे, महानदी, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी, आदि। इन नदियों की घाटी उपजाऊ है। इस पठार की मिट्टी काली है जिसमें कपास अधिक होती है। यहाँ के कुछ भागों में ठीक वर्षा होती है। यहाँ घने जंगल भी हैं। यहाँ की नदियाँ गर्मियों में सूख जाती हैं। यहाँ के झरनों से जलविद्युत पैदा की जाती है। दक्षिणी पठार में कोयला, लोहा, अभ्रक, काफी मात्रा में निकलता है। यहाँ पैदावार अन्य स्थानों की अपेक्षाकृत कम होती है।

(४) **समुद्री किनारे के मैदान**—समुद्र के पास छोटे-छोटे दो मैदान हैं। उनमें एक तो पूरब की ओर है जो पूर्वी किनारे का मैदान कहलाता है। यह मैदान पूर्वी घाट और बंगाल की खाड़ी के बीच में है। इसका ऊपरी भाग उत्तरी सरकार और नीचे का भाग कर्नाटक कहलाता है। यह मैदान महानदी, गोदावरी, कावेरी आदि के डेल्टा से घिरा हुआ है। डेल्टा वह जगह है जहाँ नदी समुद्र में गिरने के वक्त लायी मिट्टी बिछा देती है। इन डेल्टों की मिट्टी

उपजाऊ है। इसका समुद्री किनारा कटा-फटा नहीं है इसलिये बन्दरगाह भी न के बराबर ही हैं। इस भाग में केवल मद्रास और विजगापट्टम दो बड़े बन्दरगाह हैं। पश्चिम की तरफ एक दूसरा मैदान है जो पश्चिमी किनारे का मैदान कहलाता है। यह मैदान पश्चिमी घाट और अरब सागर के बीच में फैला हुआ है। इसके ऊपरी भाग को कोनकन तथा नीचे के भाग को मलाबार का किनारा कहते हैं। इसमें दो नदियाँ बहती हैं। नर्वदा और ताप्ती दोनों अरब सागर में गिरती हैं।

भारत और अफगानिस्तान के बीच में पाकिस्तान देश है। १५ अगस्त सन १९४७ से पहले यह भारत का एक अंग था, अब इसका ही एक भाग पाकिस्तान बन गया है। पाकिस्तान के भी दो भाग हैं। पहला पश्चिमी पाकिस्तान तथा दूसरा पूर्वी पाकिस्तान है। पाकिस्तान की जनसंख्या लगभग ८ करोड़ है। जूट भारत से भी अधिक होता है। भारत तथा पाकिस्तान की भौगोलिक सीमाएँ पृथक कर दी गई हैं। यहाँ का खैबर का दर्रा बहुत प्रसिद्ध है जिसके द्वारा ही विदेशी जातियाँ हिन्दुस्तान में आई थीं। पश्चिमी पाकिस्तान का नीचे का भाग सिंध नदी तथा उसकी सहायक नदियाँ, सतलज, रावी, चिनाव, व्यास, झेलम आदि से सींचा जाता है। इसलिये यहाँ अच्छी फसलें होती हैं। मुलतान के पास पाँचों नदियाँ 'पंचनद' बनाती हैं। यह भूमि गेहूँ के लिये अति प्रसिद्ध है। पूर्वी पाकिस्तान में दलदल अधिक है। अतः वहाँ की पैदावारी कम है। पाकिस्तान का मुख्य धन्धा खेती करना है। यहाँ गेहूँ, चावल, कपास, जूट, आदि अधिक पैदा होते हैं। कराँची तथा हैदराबाद यहाँ के प्रसिद्ध शहर हैं।

हमारा देश बहुत से राज्यों में बंटा हुआ है, जो कि राजनैतिक भाग कहलाते हैं।

काश्मीर—जम्मू और काश्मीर दोनों रियासतें मिल कर काश्मीर कहलाती हैं। यह राज्य हमारे देश के ऊपरी भाग में हिमालय के बिल्कुल निकट है। यह राज्य इतना सुन्दर है कि भारत का स्विट्जरलैण्ड कहलाता है। यहाँ झीलें अधिक हैं। जिनके ऊँचाई पर होने के कारण गर्मी कम पड़ती है। यहाँ पहाड़ ही पहाड़ हैं। यहाँ गर्मियों में मनुष्य जाते हैं। यहाँ पहाड़ों पर जंगल भी हैं, जिनमें चिनार, सनोवर, देवदार, फर के पेड़ अधिक हैं। यहाँ फल अधिक पैदा होते हैं। नासपाती, सेव, अखरोट, पिस्ता, अंगूर आदि यहाँ के मुख्य फल हैं। शहतूत तथा केसर की खेती अधिक होती है। यहाँ के लोग

अधिकांश भेड़ चराते हैं। इन भेड़ों की ऊन बहुत कोमल होती है, जिसके शाल, दुशाले, पश्मीना आदि बनाये जाते हैं। शहतूत के पेड़ों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। श्रीनगर में इसका बहुत बड़ा कारखाना है। जिसकी रेशमी साड़ियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। श्रीनगर यहाँ की राजधानी है। यहाँ लोग नावों पर अधिक रहते हैं तथा रेशमी और ऊनी कपड़ों के कारखाने अधिक हैं। यहाँ के तैरते हुए बाग अधिक प्रसिद्ध हैं, जिनमें शालीमार नामक बाग तो और भी अधिक प्रसिद्ध है। जम्मू भी काश्मीर की राजधानी है परन्तु यहाँ पर लोग सर्दियों में अधिक रहते हैं। गर्मियों में श्रीनगर में अधिक मनुष्य रहते हैं।

पंजाब—यह राज्य पहले बहुत बड़ा था। परन्तु अब छोटा रह गया है। यह राज्य काश्मीर से नीचे है तथा सिन्ध नदी के मैदान में पड़ता है। गर्मी के दिनों में यहाँ अधिक गर्मी तथा सर्दी के दिनों में अधिक सर्दी पड़ती है। यहाँ वर्षा कम होती है। इसीलिये नहरें निकालकर सिंचाई की जाती है। इस राज्य से होकर ही सिन्ध नदी अपनी सहायक नदियों के साथ बहती जाती है। पाकिस्तान बनने से इस राज्य को बड़ा धक्का पहुँचा था परन्तु अब उन्नति करता जारहा है। भाखरा-नांगल से गेहूँ, और कपास अधिक पैदा होती है। कांगड़ा की घाटी चाय के लिये अधिक प्रसिद्ध है। अमृतसर में ऊनी, सूती और रेशमी कपड़े के कारखाने हैं। यहाँ पर घरेलू उद्योग-धन्धे भी अधिक चलते हैं, जिनमें सूत कातना तथा शाल दुशाले बनाने का कार्य अधिक होता है। चित्रकारी करना, कसीदा करना भी प्रसिद्ध है। इस राज्य में अमृतसर, लुधियाना, अम्बाला, चन्डीगढ़ आदि प्रसिद्ध नगर हैं। चन्डीगढ़ यहाँ की राजधानी है। अमृतसर में सिक्खों का बड़ा गुरुद्वारा है। इतिहास-प्रसिद्ध जलियांवाला बाग भी यहीं है। अमृतसर एक अच्छा शहर है।

उत्तर प्रदेश—यह भारत का बहुत प्राचीन राज्य है। हमारी प्रसिद्ध एवं पवित्र नदियाँ गंगा, यमुना, गोमती, घावरा, आदि इसी राज्य में बहती हैं; जिनसे सिचाई का कार्य अधिक होता है। इस राज्य में पैदावार अधिक होती है। हमारे देश में सबसे अधिक गन्ना यहीं पैदा होता है। यहाँ गेहूँ, चावल, चना, सरसों, अधिक पैदा होती है। इस राज्य में देहरादून के निकट घने जंगल हैं। यहां खेती के अतिरिक्त कल कारखाने भी अधिक चलते हैं। कानपुर, आगरा तथा मुरादाबाद में सूती कपड़ा अधिक बनता है। यहां गन्ना अधिक होने के कारण शक्कर के कारखाने हैं। कानपुर, लखनऊ, बरेली, आदि में गन्ने के कारखाने हैं। कानपुर तथा आगरा में चमड़े की वस्तुएँ बनाने के

कारखाने हैं तथा और भी कई तरह के कारखाने पाये जाते हैं। लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी है। यह शहर गोमती नदी के किनारे बसा हुआ है। यह पहिले अवध के नवाबों की राजधानी थी। यहाँ सोना, चाँदी, हाथीदांत रेशम का काम अधिक होता है। हिन्दुओं का तीर्थ स्थान बनारस भी यहीं है। यह गंगा के किनारे बसा हुआ है। यहाँ रेशमी कपड़ा अधिक बनता है। कानपुर तथा इलाहाबाद (प्रयाग) भी गंगा यमुना के निकट बसे हुए हैं। यहाँ रेशमी कपड़ा बनता है। यहाँ बारहवें साल कुंभ का मेला लगता है। इसके अतिरिक्त मेरठ, बरेली, अलीगढ़, मथुरा, झांसी, बड़े-बड़े शहर हैं। जिनमें हर प्रकार के कारखाने पाये जाते हैं।

दिल्ली—दिल्ली का एक छोटा सा राज्य है। जो गंगा और सिन्ध नदियों के बीच में पड़ता है। यमुना नहर से इस राज्य में सिंचाई होती है जिससे यहां की पैदावार बढ़ जाती है। यह शहर हमारे देश के मध्य में होने के कारण यह भारत की राजधानी है। इसका नाम इतिहास में प्रसिद्ध है। अब इसके दो भाग हो गये हैं। पुराना शहर पुरानी दिल्ली तथा नया शहर नयी दिल्ली के नाम से जाना जाता है। यह एक व्यापारिक स्थान है। यहाँ सूती कपड़े के कारखाने अधिक हैं तथा उद्योग-धंधे भी अधिक चलते हैं।

राजस्थान—जब भारत स्वतन्त्र हुआ तब बहुत से देशी राज्यों को मिला कर राजस्थान नामक राज्य बना दिया गया। राजस्थान में जितने भी राज्य सम्मिलित हैं, उनमें पहिले राजा राज्य किया करते थे। इस राज्य में उदयपुर, कोटा, बूँदी, डूँगरपुर, बांसवाडा, झालावाड़; टोंक, जयपुर, बीकानेर, जोधपुर आदि रियासतें हैं। इस राज्य को पाँच भागों या कमिश्नरों में विभाजित किया गया है। जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर तथा कोटा। प्रत्येक कमिश्नरी को जिलों में बाँटा गया है। राजस्थान का बहुत सा भाग रेगिस्तान है। यहाँ का यह रेगिस्तान, थार का रेगिस्तान कहलाता है। इस राज्य में गर्मी अधिक पड़ती है। यहाँ कटीली झाड़ियाँ, बबूल आदि के पेड़ अधिक पाये जाते हैं। यहाँ बाजरा, चना, कपास, गन्ना, गेहूँ, आदि पैदा होते हैं। यहाँ वर्षा अधिक नहीं होती है। किन्तु चम्बल योजना, और भाखरा-नांगल योजना से राजस्थान की भूमि हरी-भरी हो गई है। यहाँ का गंगानगर नामक शहर गेहूँ, गन्ना, कपास आदि के लिये अधिक प्रसिद्ध है। जयपुर शहर यहाँ की राजधानी है।

आसाम—भारत के उत्तर-पूर्व में आसाम स्थित है। इस राज्य का

अधिकांश भाग पहाड़ों पर बसा हुआ है। आसाम का मध्यभाग पठारी है। ब्रह्मपुत्र नदी इसी राज्य में होकर बहती है। इस नदी की घाटी दलदली है। यहाँ पर घास के जंगल हैं। बीच के पठारी भाग में गारो, खासी, जेन्तिया नामक पहाडियाँ हैं। इस राज्य की जलवायु नम है। यहाँ वर्षा सबसे अधिक होती है। चेरापूँजी नामक स्थान यहीं पर है। यहीं कोयला, पेट्रोल तथा चूना, पत्थर मिलता है। यहाँ जंगल अधिक हैं जिनमें साल, सनोवर, शीशम वगैरह के वृक्ष अधिक हैं। अन्य नदियों की घाटियाँ उपजाऊ हैं। यहाँ के पहाड़ी भागों में चाय अधिक पैदा होती है, तथा समतल मैदानों में चावल अधिक होता है। यहाँ रेशम के कीड़े पाले जाते हैं, तथा गन्ना भी अधिक पैदा होता है।

बिहार—यह राज्य गंगा नदी को बीच की घाटी में बसा हुआ है। यहाँ का अधिकांश भाग नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी का बना है। यहाँ की मिट्टी अधिक उपजाऊ है। यहाँ से गंगा नदी पार होती है। यहाँ का एक भाग पठारी है जिसमें पहाड़ियाँ तो कम हैं किन्तु पठारी भाग घने जंगलों से घिरा हुआ है। जिसमें जंगली जानवर अधिक पाये जाते हैं। यहाँ नहरों द्वारा सिचाई होती है। यहाँ अच्छी खेती होती है। जंगलों में अधिक लाख पाई जाती है। पठारी भागों में चावल भी होता है। कागज बनाने के लिये सवाई घास अधिक पाई जाती है। नागपुर में खनिज पदार्थ अधिक निकलते हैं। यहाँ कोयला, लोहा, अभ्रक निकलता है। झरिया, बोकारी, गिरडीह नामक जंगलों में कोयला अधिक निकलता है। सिंहभूमि में लोहा बहुत पाया जाता है। पटना यहाँ की राजधानी है।

पश्चिमी बंगाल—यह राज्य देश की स्वतंत्रता के बाद छोटा हो गया है। इस राज्य में एक पहाड़ी भाग है जिस पर दार्जिलिंग बसा हुआ है। बाकी सारा भाग मैदानी है। बंगाल का अधिकांश भाग दलदली है। जहाँ सुन्दरी नामक जंगल पाये जाते हैं। समुद्र के निकट के दलदली भाग में सुन्दरी नामक जंगल पाये जाते हैं। वर्षा उचित मात्रा में होती रहती है। बंगाल राज्य में होकर गंगा और हुगली नदी बहती है। जो डेल्टा बनाती हुई समुद्र में गिरती हैं। यह डेलटा का मैदान अधिक उपजाऊ है। इस भूमि में चावल अधिक पैदा होता है। यहाँ के लोग चावल अधिक खाते हैं। यहाँ जूट अधिक बोई जाती है, यहाँ जूट के कारखाने अधिक हैं। दार्जिलिंग तथा जलपाईगुड़ी में चाय भी पैदा होती है। कोयला तथा लोहे की खानें हैं। यहाँ का सबसे बड़ा

शहर कलकत्ता है। जो हुगली नदी के किनारे बसा हुआ है। यह देश का प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यह देश की, पुराने समय में राजधानी भी रह चुका है। यहां व्यापार अधिक होता है। यहाँ जूट, सूती कपड़ा, तथा चावल साफ करने के बहुत से कारखाने हैं। आसनसोल यहाँ का एक अच्छा शहर है। जिसमें कोयला बहुत निकलता है। इसके निकट ही लोहे का विशाल कारखाना है।

मध्यप्रदेश—पहिले इस भाग में बहुत सी रियासतें थीं जिन्हें मिलाकर यह राज्य बना दिया गया है। इसके उत्तर में राजस्थान तथा पूरब में उत्तर प्रदेश है। इस राज्य में कहीं पहाड़ी जगह हैं, कहीं पठारी जगह तथा कहीं समतल मैदान, तो कहीं पर नदियों की घाटियाँ है। यहाँ की नदियों की घाटियाँ बहुत उपजाऊ हैं। यहाँ की जलवायु भिन्न है, इस कारण यहाँ की पैदावार भी भिन्न है। मालवे के पठार पर गेहूँ अधिक पैदा होता है। इस राज्य में दो बड़े पहाड़ हैं। एक तो सतपुड़ा, तथा दूसरा है विंध्याचल। इन पहाड़ों के होने से वर्षा अधिक होती है। इनके नीचे जंगल बहुत हैं, जिनसे लकड़ी अधिक मिल जाती है। यहाँ नदियों की घाटियाँ अधिक हैं। नर्वदा की घाटी, चम्बल की घाटी, बेतवा की घाटी, आदि की घाटियाँ हैं। यहाँ का मुख्य धंधा खेती है। खेतों की सिंचाई कुएँ, तलाबों से अधिक होती है। चम्बल घाटी-योजना तथा लोहागढ़-योजना आदि से सिंचाई बहुत होती है। इस राज्य की मिट्टी काली होने के कारण यहाँ कपास अधिक होती है। यहां सूती कपड़े के कारखाने हैं। गेहूँ, ज्वार, गन्ना आदि अधिक पैदा होते हैं। इस राज्य में लोहा, इमारती पत्थर, अभ्रक आदि बहुत निकलते हैं। सूती कपड़े तथा चीनी बनाने के कारखाने भी हैं। यहाँ के इन्दौर, ग्वालियर, रतलाम आदि प्रसिद्ध शहर हैं। इन्दौर यहाँ की राजधानी है। इस शहर से कपास का व्यापार होता है तथा इसमें सूती कपड़े की मिले हैं। रतलाम अच्छी व्यापारिक मन्डी है।

मैसूर—यह दक्षिण भारत का राज्य है। यहाँ की जलवायु अच्छी है। यहाँ कावेरी नदी बहती है। जिसके ऊपर शिव समुद्रम् नामक विशाल झरना है। जिससे जल विद्युत उत्पन्न की जाती है। यहाँ की नीलगिरी नामक पहाड़ी चाय तथा कहवा के लिये अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ की काली मिट्टी में कपास भी होती है।। यहाँ सोने की खानें अधिक हैं। कोलार नामक स्थान पर तो सोना अधिक मात्रा में निकाला जाता है। हमारे देश में केवल यहीं सोने की खानें हैं। यहाँ भद्रावती का लोहे का कारखाना है। मैसूर

और बंगलौर यहाँ के बड़े शहर हैं। मैसूर यहाँ की राजधानी है। जिसमें तेल निकालने, चन्दन तथा रेशमी कपड़े के कारखाने हैं। बंगलौर में हवाई जहाज बनाने का विशाल कारखाना है।

महाराष्ट्र—यह समुद्र के किनारे का राज्य है। इस राज्य की मिट्टी काली है। इसलिये यहाँ कपास अधिक पैदा होती है। यहाँ गुजरात का मैदान अधिक उपजाऊ है। इस भाग में नदियों द्वारा सिंचाई होती है। इस राज्य में पश्चिमी घाट की तरफ घने जंगल हैं। यहाँ वर्षा अधिक नहीं होती है। किन्तु पैदावार अधिक होती है। यहाँ नदियों द्वारा सिंचाई होती है। यहाँ का मुख्य धन्धा खेती है। किनारे के मैदानों में चावल बहुत पैदा होता है। यहाँ गन्ना अधिक पैदा होता है जिससे दानेदार चीनी बनाई जाती है। समुद्र के किनारे नारियल के वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। यहाँ सूती कपड़ा अधिक बनता है। यहाँ सूती कपड़े के कारखाने सबसे अधिक हैं। इसके अतिरिक्त रेशमी तथा ऊनी कपड़े के कारखाने भी हैं। यहाँ कागज बनाने के कारखाने भी हैं। अहमदाबाद तथा बम्बई यहाँ के प्रसिद्ध शहर हैं। बन्दरगाह के आस-पास की भूमि अधिक उपजाऊ है जो कि रेलों द्वारा देश के भीतरी भागों से जुड़ी हुई है। अहमदाबाद साबरमती नदी के किनारे पर बसा हुआ है। यह एक प्राचीन शहर है। इसके आस-पास कपास अधिक पैदा होती है। यहाँ सूती कपड़े के कारखाने अधिक हैं।

आन्ध्र—दक्षिण के पठार पर यह राज्य बसा हुआ है। यह पहले हैदराबाद के नाम से प्रसिद्ध था। यह राज्य पठारी है। गोदावरी नाम की नदी यहाँ बहती है। इसके ऊपरी भाग में काली मिट्टी पाई जाती है तथा नीचे के भाग में लाल। वर्षा कम होती है। अतः पैदावार भी कोई विशेष नहीं होती है। यहाँ का मुख्य शहर हैदराबाद है। जो इस राज्य की राजधानी है। यहाँ गोलकुंडा नामक स्थान पर पहिले हीरे की खानें थीं। यहाँ सूती कपड़े के कारखाने भी हैं।

उड़ीसा—यह एक छोटा सा राज्य है। जिसका अधिकांश भाग महानदी की निचली घाटी और डेल्टा से बना हुआ है जो कि बहुत उपजाऊ है। यहाँ लोहा, चूने का पत्थर तथा कोयले की खानें हैं। पठारी भाग में जंगल अधिक हैं। जिनमें जंगली पशु पाये जाते हैं। मयूरभंज में लोहा अधिक निकलता है।

मद्रास—यह दक्षिण भारत का राज्य है जो समुद्री किनारे पर बसा है। यहाँ सर्दी के दिनों में वर्षा होती है। इसमें सिंचाई के अन्य साधन

बहुत हैं। मूंगफली यहाँ की मुख्य फसल है। इसमें सूती कपड़े, मूंगफली तथा नारियल का तेल निकालने के कारखाने हैं। यहाँ की आबादी घनी है। यहाँ चमड़े के कारखाने भी हैं। यह एक कृत्रिम बन्दरगाह है।

सौराष्ट्र—यह पश्चिमी भारत का राज्य है। इसकी धरती से तेल निकलने की बहुत संभावना है। यहाँ अधिक जलवर्षा होती है। यहाँ काँडला प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यहाँ बाजरा और गेहूँ की पैदावार अधिक होती है।
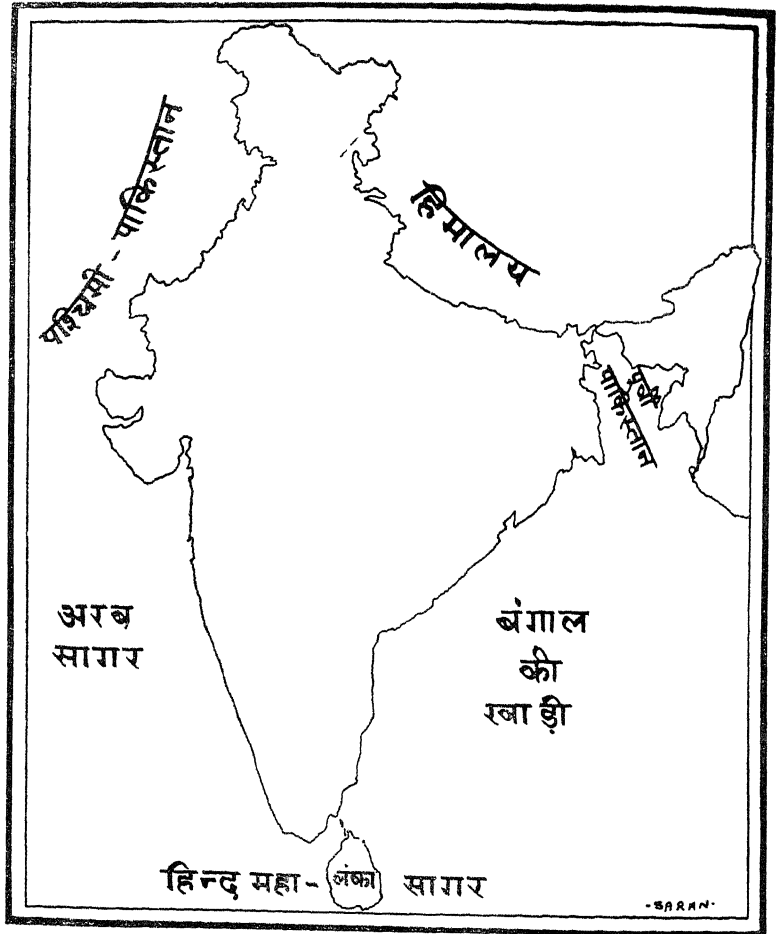
चित्र १२

यहाँ की कपास, तथा चरोतर का घी प्रसिद्ध है। पशु-पालन को काफी महत्त्व दिया जाता है।

लंका—भारत के दक्षिण में एक छोटा-सा टापू है जो, लंका कहलाता है। इसके चारों ओर पानी है। पहले, इसे सिंघलद्वीप कहते थे। इसका बीच का भाग पहाड़ी है। इस पहाड़ को श्रीराम पर्वत कहते हैं। यहाँ की नदियाँ छोटी तथा तेज बहने वाली हैं। यहाँ की सबसे लम्बी नदी महावली गंगा है। यहाँ वर्षा अधिक होती हैं। गर्मी तथा सर्दी दोनों ऋतुओं में वर्षा होती है। यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है। यह स्थान समुद्री रास्ते का पड़ाव है। यहाँ चारों ओर से जहाज आते हैं तथा पड़ाव डाल कर चले जाते हैं। पहाड़ी भागों में घने जंगल हैं जिनमें आबनूस के पेड़ अधिक पाये जाते हैं। यहाँ चाय अधिक होती है। यहाँ से लगभग २५ करोड़ पौण्ड का निर्यात प्रति वर्ष होता है। यहाँ के पहाड़ों पर इलायची, दालचीनी, लौंग, जायफल, आदि मसाले के पेड़ अधिक मात्रा में मिलते हैं। नीचे के भाग में रबड़, कहवा के बाग हैं। यहाँ के अधिकांश लोग खेती करते हैं। यहाँ नारियल का तेल निकालने, रबड़ तैयार करने तथा चावल साफ करने के कारखाने हैं। यहाँ की औसत जनसंख्या ७० लाख है। यहाँ सिंघाली लोग अधिक रहते हैं। कोलम्बो यहाँ की राजधानी है तथा बन्दरगाह भी है।

यूरोप—एशिया महाद्वीप के निकट ही यूरोप महाद्वीप है। यह महाद्वीप ऊपर से नीचे तक लगभग २४०० मील लम्बा है। यह महाद्वीप आस्ट्रेलिया को छोड़कर सबसे छोटा है।

जिस प्रकार एशिया में हिमालय पर्वत है उसी तरह यूरोप में आल्प्स पर्वत है। यूरोप के बीचोंबीच आल्पस पर्वत चारों तरफ फैला हुआ है। इसकी कुछ चोटियाँ समुद्र की सतह से लगभग ढाई मील ऊँची हैं। जिन पर हमेशा बर्फ पड़ी रहती है। यूरोप के पूरब में यूराल नामक पहाड़ है। यह यूरोप को एशिया से अलग कर देता है। यूराल के पश्चिम में रूस का बड़ा मैदान है। यहाँ सर्दी कम पड़ती है तथा गर्मी अधिक। यहाँ गेहूँ अधिक पैदा होता है। इस मैदान के नीचे का भाग गेहूँ की पैदावार के लिये प्रसिद्ध है। यूरोप की सबसे बड़ी नदी वोल्गा इसी मैदान में होकर बहती है। सर्दियों में इस पर बर्फ जम जाती है। इसलिये इसमें जहाज नहीं चलते हैं। पश्चिमी यूरोप में राइन, सेन, लोएर, रोन, डैन्यूब आदि नदियाँ बहती हैं। इन सब में राइन नदी
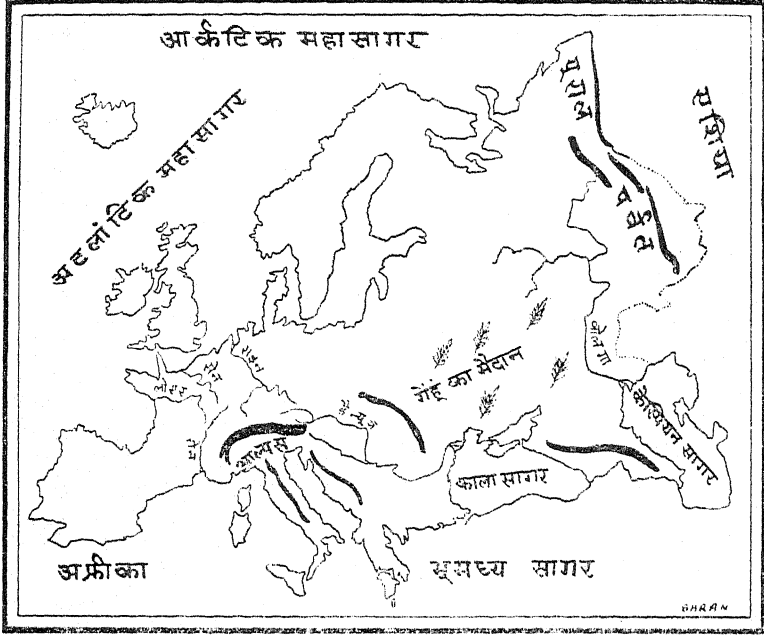
चित्र १३

सबसे प्रसिद्ध है। इस नदी के द्वारा व्यापार होता है। इन नदियों से सिंचाई के अतिरिक्त जल विद्युत भी तैयार की जाती है।

चित्र १४—वोल्गा का एक विद्युत-गृह
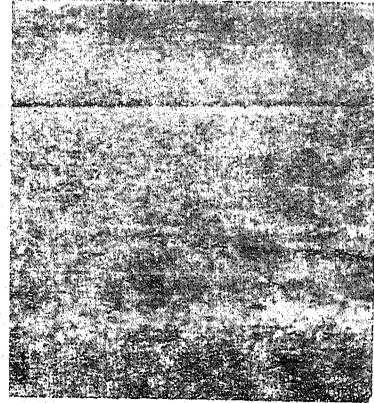
चित्र १५—वोल्गा के पानी से निर्मित एक सुन्दर झील

यूरोप का समुद्री किनारा अधिक कटा-फटा है। जो लगभग १'३०८ मील लम्बा है। ऊपर की ओर लालसागर हर वक्त जमा रहता है। इंगलैंड के निकट एक गल्फस्ट्रीम की गर्म धारा है जिससे उसके आस-पास का समुद्र नहीं जमता और व्यापार सरलता से होता है। यहाँ मछली अधिक पकड़ी जाती है।

यहाँ वर्षा अधिक होती है। गल्फस्ट्रीम की धारा जलवायु को कुछ गर्म कर देती है। सर्दियों में पूर्वी रूस पर बर्फ पड़ती है। यूरोप की जनसंख्या लगभग ४० करोड़ है। यहाँ की अधिकांश जन-संख्या खानों तथा कारखानों के निकट रहती है। यहाँ की सबसे अधिक जन-संख्या, इंगलैंड, हालैंड, बेल-जियम, फ्रान्स, उत्तरी जर्मनी, हंगरी, पो नदी की घाटी तथा पोलैण्ड में बसी हुई है। यहाँ एक वर्ग मील में लगभग २५० आदमी रहते हैं। विश्व में सबसे अधिक घनी जनसंख्या बेलजियम में है। वहाँ एक वर्ग मील में लगभग ७०० आदमी रहते हैं। टुंड्रा तथा उत्तर रूस में बहुत कम आदमी रहते हैं।

यहाँ के निवासी गोरी आर्य जाति के हैं। दक्षिण के लोगों का रंग कुछ कुछ साँवला हो गया है। ये लोग, बहुत मेहनती, हिम्मतवर, तथा व्यापार-कुशल होते हैं। यहाँ खेती अधिक होती है। रूस, फ्रांस, इंगलैण्ड, इटली, हंगरी, रूमानियाँ में खेती अधिक होती है। दूसरा मुख्य कार्य खानें खोदना है। इसके अतिरिक्त यहाँ भेड़ें पालना, शिकार खेलना, लकड़ी काटना, मछली मारना, व्यापार करना, मक्खन तथा पनीर बनाने का कार्य भी होता है। खनिज पदार्थों में कोयला, लोहा अधिक होता है। इनके कारण यूरोप बहुत धनवान देश है। इनके अतिरिक्त मिट्टी का तेल, ताँबा, शीशा, जस्ता, सोना, चाँदी, पारा, नमक, चीनी मिट्टी, सिलीका अधिक होते हैं।

यूरोप, व्यापार, कारखानों तथा उपज के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ की जलवायु सम है। न अधिक गर्मी है न अधिक सर्दी।

यूरोप में स्केन्डीनेविया नाम का एक देश है। जिसके अधिकांश भाग पठारी हैं। यहाँ पर नुकीली पत्तियों वाले पेड़ों के घने जंगल हैं।

नार्वे यूरोप का ही एक देश है। यहाँ की भूमि पहाड़ी है। यहाँ के लोगों का मुख्य काम मछली मारना है। यहाँ कॉड, हैरिङ्ग आदि मछलियाँ पायी जाती हैं। यहाँ पर लोफोडन नामक टापू है। जिसमें लगभग २०

हजार आदमी तथा ४ हजार नावें मछली मारने के काम में लगी रहती हैं। यहाँ सैमन मछली भी पायी जाती है तथा सील और ह्वेल आदि मछलियाँ आर्कटिक सागर से लाई जाती हैं। मनुष्य इन मछलियों को टीन के डिब्बों में बन्द कर दूसरे देशों को भेजते हैं। यहाँ लकड़ी के बुरादे का कागज भी बनता है। इस देश की राजधानी औसलो है। हैमर फैस्ट भी यहाँ का एक भाग है।

यूरोप में स्वीडन नामक एक देश है। इस देश की भूमि चौरस तथा मैदानी है। वैनर, वैटर, मलार आदि झीलें हैं। यहाँ की लगभग आधी भूमि जंगलों से आच्छादित है। जिनमें देवदार, फर, बर्च के वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। यहाँ के वृक्ष धीरे-धीरे बड़े होते हैं जिनकी लकड़ी, कड़ी, टिकाऊ और मूल्यवान होती है। यहाँ कड़ी लकड़ी को काट कर उसके बुरादे से कागज बनाया जाता है। गन्धक से दियासलाई बनाई जाती है। यहाँ लोहा, ताँवा, जस्ता, चाँदी, तथा मैंगनीज निकलती है। नीचे के भाग में खेती की जाती है। जिसमें ओट, राई, जौ आदि पैदा होता है। चुकन्दर भी पैदा होती है। यहाँ की राजधानी स्टॉकहोल्म है। यह शहर 'उत्तर का वेनिस' कहलाता है। इस में लोहा, लकड़ी, जस्ता, तार, दियासलाई तथा कागज के बड़े-बड़े कारखाने हैं।

डेनमार्क—यह देश कई द्वीपों को मिलाकर बना है। इसमें जीलैण्ड, फ्यूनान, सबसे बड़े हैं। यहाँ का समुद्री किनारा बहुत लम्बा है। इस देश में बालू अधिक है। इसके ऊपरी भाग में दलदल अधिक है जिसमें पीट नाम के घास के मैदान हैं। इसके आधे भाग में खेती होती है, जिसमें राई, जौ, जई, आलू, चुकन्दर आदि अधिक पैदा होते हैं। अधिक घास पैदा होने के कारण यहाँ के लोगों का मुख्य काम पशु पालना है। विश्व का ७/२१ भाग मक्खन डेन्मार्क में होता है। लगभग १५ करोड़ रुपये का मक्खन तो इँगलैंड ही प्रतिवर्ष खरीदता है। मक्खन निकला हुआ दूध सूअरों को पिला दिया जाता है। सूअर का मास तथा अन्डों के निर्यात में डेन्मार्क सबसे आगे है। यहाँ मछली भी पकड़ी जाती हैं। कौपिनहैगन यहाँ की राजधानी है तथा एक प्रसिद्ध बन्दरगाह भी है। आइसलैण्ड भी डेन्मार्क के आधिपत्य में है जिसमें लगभग एक लाख आदमी रहते हैं। यहाँ हेकला नामक ज्वालामुखी पर्वत है। इस द्वीप में भेड़, पशु, टट्टू आदि चराये जाते हैं। यहाँ से टट्टू और गन्धक दूसरे देशों को भेजे जाते हैं। आदमी अधिकांश शिक्षित तथा मेहनती होते हैं।

रूस—यह यूरोप का सबसे बड़ा देश है। भूमि मैदानी है। इसके मध्य बाल्डाई नामक पहाड़ियाँ हैं, जिनसे नदियाँ निकलकर चारों ओर बहती हैं। यहाँ गर्मी कम तथा सर्दी अधिक पड़ती है। सर्दी के दिनों में सारा देश बर्फ से ढक जाता है। इस देश को तीन भागों में बाँट सकते हैं।

(१) **टुंड्रा**—इसमें लैप, सैमोइड तथा एस्कीमो आदि जातियाँ रहती हैं। यहाँ सदैव बर्फ जमी रहती है। यहाँ का बारहसिंघा मुख्य जानवर है, जो पाला जाता है। गर्मी में जब बर्फ पिघल जाती है तब कुछ घास उगती है। नीचे की ओर देवदार तथा बर्च के जंगल हैं।

(२) **काली मिट्टी का प्रदेश**—यहाँ की काली मिट्टी अधिक उपजाऊ है। इसमें गेहूँ, तम्बाकू, राई, मक्का आदि अधिक पैदा होते हैं। नीचे के भागों में घोड़े, भेड़ें तथा अन्य पशु चराये जाते हैं। यहाँ से गेहूँ का निर्यात होता है।

(३) **नमकीन रेगिस्तान**—इसमें कुछ भी पैदा नहीं होता क्योंकि यहाँ की अधिकांश भूमि क्षारीय तथा ऊसर है।

रूस में कोयला, लोहा, ताँबा, सोना, चाँदी तथा प्लेटीनम की खानें बहुत हैं। कॉकेशस के निकट मिट्टी का तेल निकलता है। जब से रूस में सोवियत सरकार आयी है, तब से खेती, कारखाने आदि में बहुत उन्नति हुई है। पंच-वर्षीय योजनाओं द्वारा धन को बढ़ाया जाता है। जिससे बहुत से कार्य किये गये हैं। इन्हीं दिनों में यातायात के साधन बढ़ गये हैं। २६ हजार मील के लगभग नदियों में नावें चल सकती हैं। लगभग ४५ हजार मील लम्बी रेलें बन गई हैं। मास्को यहाँ की राजधानी है। विश्व की सबसे लम्बी ट्रान्स साइ-बेरियन रेलवे यहीं से प्रारम्भ होती है। दूसरा शहर लेनिनग्राड है जो कि प्रथम विश्व युद्ध से पहिले रूस की राजधानी था। गर्मी के दिनों में लकड़ी, मछली तथा नमदा दूसरे देशों को यहाँ से भेजा जाता है।

यूक्रेन नामक राज्य पहिले रूस से अलग था किन्तु अब रूस में मिल गया है। यहाँ की भूमि काली है। इसमें गेहूँ, सन, मक्का, तम्बाकू, फल आदि बहुत होते हैं।

बाल्टिक राज्य—बाल्टिक नामक समुद्र के निकट चार छोटे-छोटे राज्य हैं, जो मिलकर बाल्टिक राज्य कहलाते हैं।

फिनलैण्ड—इस देश की जनसंख्या लगभग ३४ लाख है। यह देश दल-दल तथा झीलों से भरा हुआ है। आधे से अधिक भाग में देवदार, फर, बर्च

आदि के जंगल हैं। यहाँ पर जानवर भी पाले जाते हैं। मक्खन का निर्यात किया जाता है। खेती में जौ, चुकन्दर, आलू आदि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ का प्रमुख शहर हैल्सिकी है, जो एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ से लकड़ी फ़ल, मक्खन आदि बाहर भेजे जाते हैं।

ऐस्टोनिया—फिनलैण्ड की भाँति यह देश भी अधिकतर जंगलों से आच्छादित है। इसकी जनसंख्या लगभग १८ लाख है। यहाँ पर राई, सन, जई, और आलू अधिक पैदा होते हैं।

लैटविया—यहाँ की जनसंख्या लगभग ६ लाख है। यहाँ आलू, सन, राई, ओट तथा लकड़ी अधिक पैदा होती है। रीवा यहाँ की राजधानी है, यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यहाँ कपास, टसर तथा चमड़े के कारखाने हैं।

लिथूनियाँ—इसकी आबादी लगभग ५० लाख है तथा अन्य बातों में दूसरे देशों से मिलता-जुलता है। कोबनों यहाँ का प्रमुख बन्दरगाह है।

बाल्टिक राज्य में आर्य अधिक रहते है, जो स्वीडन के आदमियों से मिलते-जुलते हैं।

पोलैण्ड—यहाँ पर गर्मियों में अधिक गर्मी तथा सर्दियों में इतनी सर्दी पड़ती है कि बर्फ जम जाती है। यहाँ की जनसंख्या लगभग ३ करोड़ है। यहाँ के लोगों का मुख्य धन्धा खेती करना है। राई, जौ, गेहूँ, सन, जई, चुकन्दर, आलू आदि उगाये जाते हैं। नीचे की ओर जानवर तथा भेड़ें पाली जाती हैं। मिट्टी का तेल तथा नमक भी निकाला जाता है। यहाँ की राजधानी वारसा है। यहाँ चमड़ा, ऊन तथा शक्कर के कारखाने हैं।

रूमानियाँ—इसमें लगभग १॥ करोड़ मनुष्य रहते हैं। वर्षा तथा जलवायु में पोलैण्ड की ही भाँति है। यहाँ की काली मिट्टी बहुत उपजाऊ है, जिसमें गेहूँ, मक्का, तिलहन, तम्बाकू आदि पैदा होते हैं। यहाँ नमक, सोना, चाँदी, लोहा, मिट्टी का तेल निकाला जाता है। यहाँ के ढालों पर भेड़ें चराई जाती हैं। बुखारैस्ट यहाँ की राजधानी है।

चेकोस्लोवाकिया—यह राज्य प्रथम विश्व युद्ध के बाद आस्ट्रिया और हंगरी के मिलने से बना है। यहाँ लगभग १½ करोड़ का जन-समाज रहता है। यहाँ गेहूँ, जौ, ओट आदि पैदा होते हैं। कोयला और लोहा भी निकाले जाते है। प्रेग यहाँ की राजधानी है तथा प्रसिद्ध शहर भी। व्यापार तथा कला में यह नगर बहुत बढ़ा-चढ़ा है। कार्ल्सबाड़ और मेरिनबाड़ में गर्म पानी के सोते हैं। यूरोप के लोग यहाँ आरोग्य के लिये आते हैं।

हंगरी—यह देश एक उपजाऊ मैदान है। जो कि वनों से भरा हुआ है। यहाँ गेहूँ, मक्का, तम्बाकू, चुकन्दर की खेती होती है। यहाँ फल भी अधिक मात्रा में होते हैं। बुडापेस्ट यहाँ की राजधानी है। यहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है। जिसमें शराब, आटा, अनाज, शहद आदि बेचा जाता है। बुडा और पेस्ट के मध्य एक नदी बहती है, जिस पर एक विशाल पुल बना है, जो इन दोनों को मिलाकर एक कर देता है। पेस्ट में आटा पीसने, चमड़ा, शराब, लोहे के कारखाने हैं। टोकाज नामक शहर शराब के कारखानों के लिये अधिक प्रसिद्ध है, क्योंकि वहाँ अंगूर अधिक पैदा होते हैं।

आस्ट्रिया—इसमें लगभग ६४ लाख मनुष्य निवास करते हैं। ऊँचाई पर यहाँ ओक, फर और बीच के वन हैं। घाटियों में अनाज, अंगूर, शहतूत आदि पैदा होते हैं। ऊपर की भूमि में घास के मैदान हैं। राई और जई यहाँ अधिक पैदा होते हैं। मुर नामक नदी की घाटी में लोहे और कोयले की खानें हैं। ग्रेम नामक शहर लोहा साफ करने तथा रेशम के कारखानों के लिये अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ का प्रमुख शहर वीयाना है। जो आस्ट्रिया की राजधानी है। इसके निकट की भूमि उपजाऊ है। इसका यातायात के साधनों द्वारा यूरोप से घना सम्बन्ध है। यहाँ लोहा, कोयला, कागज, और चमड़े के कारखाने हैं।

स्विट्जरलैण्ड—यह यूरोप का छोटा-सा राज्य है। यहाँ की जनसंख्या लगभग ४ लाख है। इसके ऊपरी भाग में जूरा नामक पहाड़ है। बीच में सुन्दर झीलें हैं। नीचे के भाग में झरने हैं। वर्षा अधिक होती है। पहाड़ों पर सर्दी तथा घाटियों में गर्मी पड़ती है। यहाँ जानवरों को चराने के लिये बहुत मैदान है। यहाँ जानवर अधिक पाले जाते हैं। मक्खन, पनीर, दही का कार्य अधिक होता है। अंगूर, गेहूँ, मक्का, राई, जई आदि मुख्य फसलें हैं। रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं। स्विट्जरलैण्ड में घड़ियाँ बनाने, कढ़ाई का काम, चाकलेट बनाना आदि अधिक होता है। यहां का प्रमुख शहर बर्न है, जो यहाँ की राजधानी है, जो घड़ियों के लिये विश्वविख्यात है। दूसरा शहर जिनेवा है, जिसमें विश्व के राष्ट्रसंघ की बैठक होती है। यहाँ भी घड़ियाँ बनती हैं।

जर्मनी—द्वितीय विश्वयुद्ध इसी पर हुआ था। जिसमें यह हार गया। सन, राई, जौ, चुकन्दर, गेहूँ, जई, फल तम्बाकू आदि यहाँ अधिक पैदा होते हैं। इस देश में जंगल भी बहुत हैं। जिनमें देवदार, सनोवर, सिन्दूर, फर के

पेड़ अधिक हैं। जिनकी लकड़ी बहुत कीमती होती है। यहाँ पर कोयले तथा लोहे की खानें हैं। इसके अतिरिक्त सीसा, जस्ता, ताँबा, स्लेट भी मिलते हैं। यातायात के साधन अधिक हैं। यहाँ का कला-कौशल बहुत बढ़ा चढ़ा है। लगभग डेढ़ करोड़ आदमी इसमें कार्य करते हैं। लोहा, फौलाद, सूती और ऊनी कपड़े तथा दवाइयाँ, शक्कर, शराब, रंग, और शीशे का सामान बनाने के कारखाने अधिक पाये जाते हैं। स्टैटिन, हैम्बर्ग में जहाज बनाने के कारखाने हैं। बर्लिन यहां की राजधानी है। यूरोप के सब देश इससे मिले हुए हैं। हैम्बर्ग व्यापार के लिये अधिक प्रसिद्ध है। यह समुद्र से ७० मील दूर है किन्तु नदियों द्वारा जहाज आते जाते हैं। आटा पीसने, साबुन बनाने, तथा जहाज बनाने के भी बहुत से कारखाने हैं। ब्रीमैन, कील, स्टैटिन, म्यूनिच, नूरिमवर्ग, लीपजिग, मैगडीवर्ग, जर्मनी के प्रमुख शहर हैं।

हॉलैण्ड—जर्मनी के पश्चिम में एक छोटा-सा देश है। जो हालैण्ड के नाम से पुकारा जाता है। इसकी भूमि नीची है। इसमें लगभग ८२ लाख आदमी रहते है। यहाँ की मिट्टी नदियों से लाई हुई होने के कारण बहुत उपजाऊ है। सन, गेहूँ, आलू, राई, चुकन्दर आदि की खेती होती है। यहां एक वर्ग मील में लगभग ६२५ मनुष्य रहते हैं। खेती करना, जानवर पालना, मक्खन, पनीर बनाना आदि यहां के लोगों का मुख्य काम है। एमस्ट्रडम यहाँ का प्रसिद्ध शहर व व्यापारिक राजधानी है। यह हीरा काटने के लिये विश्वविख्यात है। हेग भी यहाँ का सुन्दर शहर तथा राजधानी भी है।

बेलजियम—हालैण्ड और फ्रान्स के मध्य में बेलजियम नामक देश स्थित है। यह भी एक छोटा-सा देश है, जिसकी जनसंख्या लगभग ८५ लाख है। यहाँ की आबादी बहुत घनी है। यहाँ की जलवायु इंगलैण्ड के सदृश है। इसका नीचे का भाग पठारी है। जिस पर देवदार के वन हैं तथा भेड़ें चराई जाती हैं। बाकी भाग में राई, ओट, गेहूँ, आलू, चुकन्दर और सन आदि की खेती होती है। यहाँ सूअर और अन्य पशु अधिक पाले जाते हैं। इसके मध्य भाग में कोयले की खानें हैं। उसके निकट ही पठारी भाग में जस्ता, सीसा, ताँबा आदि की भी खानें हैं। मुख्य शहरों में, एन्टवर्ग एक अच्छा बन्दरगाह है। घेन्ट नामक शहर मलमल और सूती कपड़े के लिये प्रसिद्ध है। ब्रुसेल्स यहाँ की राजधानी है। इसके नीचे बाटरलू नामक शहर बसा हुआ है।

फ्रान्स—फ्रान्स विश्व के अमीर देशों में से एक है। यहाँ लगभग ५$\frac{१}{२}$ करोड़ आदमी रहते हैं। यहाँ के उत्तरी मैदान में सीन नदी बहती है, जिसमें

गेहूँ, जौ, राई, ओट, अंगूर, सेव आदि अधिक होते हैं। यहाँ की आबादी घनी है। पश्चिम में लौयर, गैरोन, और उनकी सहायक नदियाँ बहती हैं। लोयर के मैदानों में, चुकन्दर, अंगूरी शराब, गेहूँ, तम्बाकू, मक्का आदि अधिक पैदा होते हैं। रोन नदी के पास सेन्टएटीन नामक शहर है। जहाँ कोयले की खानें अधिक हैं। रोन नदी की घाटी और यहाँ तक समुद्री किनारा बहुत अच्छा है। यहाँ पैदावार अधिक होती है। यहाँ अंगूर, जैतून, नासपाती, अंजीर, शहतूत आदि बहुत होते हैं। यहाँ रेशम अधिक बनता है।

यहाँ के लोग खेती करना, मछली मारना, शराब बनाना, जंगलों से लकड़ी काटना, खानों से कोयला, लोहा, आदि निकालने का काम करते हैं। यहाँ का मुख्य शहर पेरिस है। जो कि विश्वविख्यात शहर है। यह शहर सीन नदी के दोनों ओर बसा हुआ है। यहाँ की जन-संख्या लगभग ३२ लाख है। यहाँ के यातायात के साधन अच्छे हैं। यहाँ पर घड़ियाँ, जवाहिरात, सुन्दर रेशमी सामान, जूते, बाजे आदि बनाये जाते हैं। रुएन नामक शहर कपास के कारखानों के लिये बहुत प्रसिद्ध है। लिली नामक शहर टसर, कपास तथा लोहे के कारखानों आदि के लिये प्रसिद्ध है। आमीन्स ऊनी सामान के लिये प्रसिद्ध है। बोर्डो शराब का दूसरे देशों से निर्यात होता है। टूलज नामक शहर गेहूँ, अंगूरी शराब आदि के लिये प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त औलियन्स, टूस, मार्सेलीज, लियोन्स आदि इसके प्रसिद्ध शहर हैं।

स्पेन और पुर्तगाल—ये दोनों देश मिल कर आयबेरिया कहलाते हैं। डोरो, टेगस, ग्वाडियाना आदि यहाँ की प्रमुख नदियाँ हैं। इसके ऊपरी भाग में सर्दी अधिक पड़ती है। गर्मी अधिक नहीं पड़ती है। यहाँ वर्षा अधिक होती है। इसके मध्य के पठार में भेड़ें पाली जाती हैं, जिनके ऊन का निर्यात होता है। इसके ऊपरी भाग में ओक, बीच, चेस्टनट के जंगल हैं तथा लोहे और जस्ते की खाने हैं। इसके पश्चिमी भाग में खेती होती है। जिसमें गेहूँ, मक्का, जैतून, अंगूर, शहतूत आदि पैदा होते है। पुर्तगाल कार्क, ओक, तथा शराब के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ कैटेलोनिया नामक पठार है, जिसमें सीसा, चाँदी, जस्ता, संगमरमर आदि निकलता है। स्पेन एक उजाड़ और पठारी भाग है। इसमें कुछ पैदा नहीं होता। यहाँ अच्छे बन्दरगाह भी नही हैं। नदियाँ भी ठीक नही हैं। यातायात के साधन भी ठीक नहीं हैं। मैड्रिड यहाँ की राजधानी है। वार्सिलोना एक अच्छा बन्दरगाह है जो कपास के लिये और व्यापार के लिये प्रसिद्ध है। यह स्पेन का "मैनचेस्टर" कहलाता है।

यहाँ से शराब, ऊन, कपास, फल आदि बाहर भेजे जाते हैं। इनके अतिरिक्त वैलेशिया, ग्रानाड़ा इसके प्रमुख शहर हैं।

पुर्तगाल के प्रसिद्ध शहरो में लिसबन एक प्रसिद्ध शहर है। यह टेगस नदी के किनारे बसा हुआ है। यह एक अच्छा बन्दरगाह है। यही पुर्तगाल की राजधानी है। यहाँ कभी-कभी भूचाल भी आते हैं।

इटली—यूरोप के दक्षिण में एक छोटा सा देश है। इसके उत्तर में एक पर्वत है तथा बीच में नदियों के मैदान हैं। इसके ऊपरी भाग में आल्पस नामक पहाड़ है। जिससे नदियाँ तेजी से नीचे उतरती हैं। जिनसे जलविद्युत तैयार की जाती है। इस भाग में और भी कई नदियाँ बहतीं हैं। निचले भाग में नारङ्गी, मेंहदी, जैतून आदि के बगीचे हैं। इसके ऊपरी भाग में अंगूर और अखरोट के पेड़ हैं। इसके आगे पशु पाले जाते हैं। जिनके दूध से पनीर बनाया जाता है। पो नदी की घाटी इटली में सबसे अधिक उपजाऊ, अमीर और आबाद है। पो नदी व उसकी सहायक नदियों की लाई हुई मिट्टी से बना होने के कारण यहाँ का देश उपजाऊ है। यहाँ चावल, मकई, सन्, गेहूँ, अँगूर, जैतून, शहतूत की पैदावार होती है। पशु-पालन तथा मक्खन, पनीर बनाना इनका मुख्य काम है। रेशमी कपड़ा तथा अण्डे का निर्यात किया जाता है। ट्यूरिन यहाँ का प्रसिद्ध शहर है। यहाँ रेशम तथा मोटरकार बनाने के कारखाने हैं। यातायात के साधन भी अच्छे हैं। वेनिस, पो नदी के तट पर स्थित है। जो एक बड़ा बन्दरगाह है। यह शहर १२० द्वीपों पर बसा हुआ है। यहाँ नहरों द्वारा यातायात का कार्य चलता है। सड़कों के स्थान पर नहरों में जहाज चलते हैं। यह शीशे तथा लैंस के काम के लिये प्रसिद्ध है।

इटली में सबसे प्रसिद्ध शहर रोम है। यह टाईबर नामक नदी पर बसा हुआ है। यही इटली की राजधानी है।

इटली के निकट कई छोटे-छोटे द्वीप हैं, जो सभी ज्वालामुखी पर्वतों से प्रयुक्त हैं। इन सबसे बड़ा द्वीप सिसली है। जिसमें ज्वालामुखी होने के कारण अंगूर, नीबू, नारंगी आदि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ पालामो नामक एक शहर है, जो एक बन्दरगाह है तथा लोहे के कारखानों के लिये प्रसिद्ध है। इसके निकट एक विशाल ज्वालामुखी है, जो स्ट्रोम्बाली नाम से प्रसिद्ध है। इसे भूमध्यसागर का "प्रकाशगृह" भी कहते हैं।

बालकन प्रायद्वीप—यूगोस्लेविया, अलबेनिया, बलगेरिया, यूनान, टर्की

आदि देश मिलकर बालकन प्रायद्वीप कहलाते हैं। यह भाग अधिकांश पहाड़ी है। जिसमें आल्पस, पिन्डस, बालकन आदि की पहाड़ी शृंखला फैली हुई है। यहाँ के कुछ भागों में घास होती है। जहाँ भेड़-बकरियाँ चराई जाती हैं। ढालों पर सिन्दूर के जंगल हैं। ऊपरी भाग में ओट, बेर आदि फल होते हैं। नीचे के भाग में अंगूर, जैतून, तम्बाकू, गुलाब आदि फल-फूल होते हैं। यूगोस्लेविया में मक्का, गेहूँ, सन्, तम्बाकू आदि पैदा होते हैं। यहाँ के अधिक लोग पेड़ काटने, भेड़, बकरी, सूअर आदि पालने, बगीचे लगाने, और खेती करने आदि काम करते हैं। बैलग्रेड यहाँ की राजधानी है। बल्गेरिया में गेहूँ, मक्का आदि पैदा होते हैं। भेड़ तथा अन्य पशु पाले जाते हैं। यहाँ शराब, लकड़ी, ओट आदि के कारखाने हैं। तुन्जा नाम की घाटी में गुलाब का इत्र निकाला जाता है। यूनान एक पहाड़ी देश है। यहाँ पर अंगूर, जैतून, अंजीर, नारंगी, गेहूँ, तम्बाकू, कपास आदि पैदा होते हैं। एथेन्स यूनान की राजधानी है। टर्की एक छोटा सा राज्य है। यहाँ के कालीन, कम्बल अधिक प्रसिद्ध हैं। यहाँ कुस्तुन्तुनियाँ एक अच्छा शहर तथा बन्दरगाह है। एड्रिया नोपिल भी एक उपजाऊ क्षेत्र है, इसमें फौजी छावनियाँ हैं।

ब्रिटिश द्वीप-समूह—पहले यह भाग यूरोप से जुड़ा हुआ था, बाद में बीच की भूमि धँस गई और वह समुद्र बन गया। पहले जो यूरोप का नक्शा दिया हुआ है, उसमें यह भाग ब्रिटिश द्वीप-समूह कहलाता है। इसमें इँगलैंड, आयर-लैण्ड, स्कॉटलैंड आदि बड़े द्वीप हैं। बाकी छोटे-छोटे हैं। यहाँ का समुद्री किनारा कटाफटा है तथा जमता नहीं है और जलवायु भी अच्छा है। साल भर तक पानी बरसता रहता है। यहाँ लोहा, कोयला अधिक निकलता है। इँगलैंड का औद्योगिक क्षेत्र बहुत बढ़ा-चढ़ा है। यहाँ जंगल कम हैं तथा कमजोर घास उगती है। इनमें सूअर आदि चराये जाते हैं। यहाँ अब खेती होने लगी है। देश में खेती का काम कम होता है। आयरलैंड में आलू, सन, अलसी, गेहूँ आदि पैदा होता है तथा इँगलैण्ड में गेहूँ, जौ, जई और स्काटलैंड में गेहूँ आदि पैदा होता है। यहाँ की गल्फस्ट्रीम की गर्म धारा से मछली अधिक पकड़ी जाती हैं। इँगलैण्ड में लोहा, कोयला आदि की खानें अधिक हैं। पशु-पालन अधिक होता है।

इँगलैण्ड के मध्य में कोयले की खानें अधिक होने के कारण यह काला देश भी कहलाता है। यहाँ छोटी पिन से लेकर, बड़ी बड़ी मशीन, तोप, इन्जिन आदि तैयार करने के कारखाने हैं। बरमिंघम, मोटर, साइकिल,

इन्जन, पटरियाँ, पुल, घड़ियाँ, बन्दूकें, तोपें, रेडियो आदि लोहे के सामान बनाने के कारखाने अधिक हैं। शैफील्ड नामक शहर में, चाकू, सरोते, छुरियाँ,
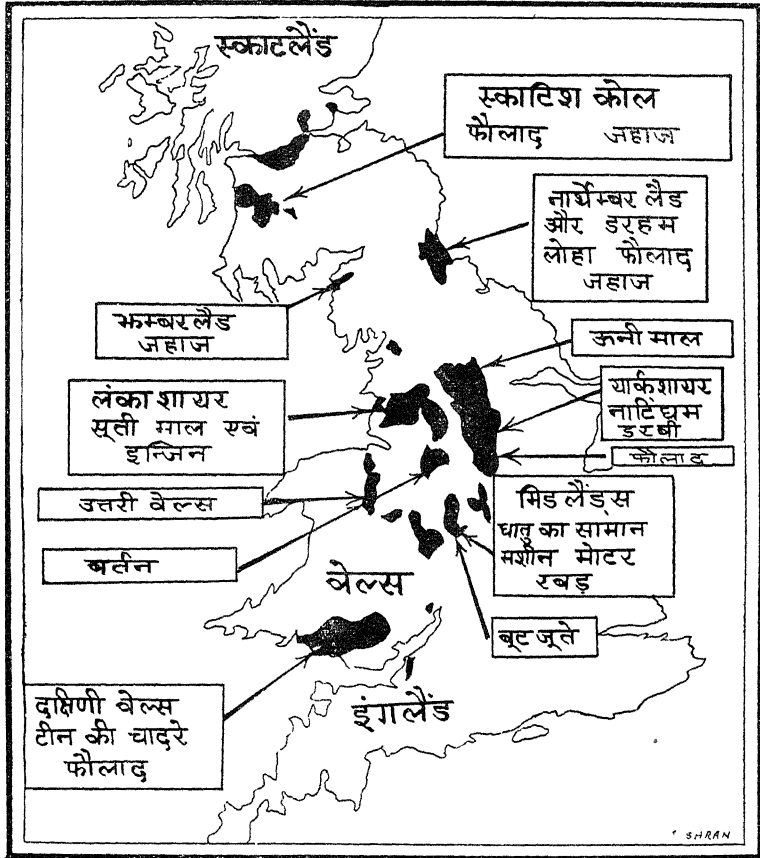
चित्र १६

तलवारें आदि अच्छी बनती हैं। ग्लासगो जहाज बनाने के लिये बहुत प्रसिद्ध है। ग्लासगो में सूती, रेशमी कपड़े, टसर आदि के कारखाने हैं। जहाज बनाने का काम लन्दन, लिवरपूल, न्यूकैसिल में भी होता है। इस प्रदेश में कपास भी होती है तथा लिवरपूल नामक बन्दरगाह के द्वारा बाहर से भी मँगाई जाती है। मैनचैस्टर सूती कपड़े के लिये प्रसिद्ध है, यहाँ बड़े-बड़े जहाज भी आते जाते हैं। लोहा, फौलाद का सामान, मशीन

आदि भी तैयार होते हैं। लीड्स ऊनी कपड़े के सामान के लिये प्रसिद्ध है। यार्कशायर में और स्कॉटलैण्ड में जूट का सामान तैयार होता है। स्कॉटलैण्ड का ऐडिनबरा भी सन के काम के लिये प्रसिद्ध है। यह एक अच्छा बन्दरगाह है तथा स्कॉटलैन्ड की राजधानी है। यहाँ कागज बनाने की मिलें तथा छापेखाने अधिक हैं। आयरलैण्ड के बैलफास्ट में टसर के कारखाने हैं। यहाँ जहाज बनाने का काम अधिक होता है। डर्बी में रेशमी सामान तैयार होता है। यार्कशायर चमड़े के कारखानों के लिये प्रसिद्ध है।

लन्दन यहाँ का प्रसिद्ध शहर है। यह शहर बहुत बड़ा है तथा एक अच्छा बन्दरगाह भी है। यहाँ की जनसंख्या लगभग ८२ लाख है। दक्षिणी इंगलैण्ड का सारा माल यहीं से निर्यात किया जाता है। यहाँ जहाज, कपड़ा, लोहा तथा अन्य वस्तुओं के कारखाने हैं। इसमें कैम्ब्रिज और औक्सफोर्ड नामक प्राचीन विद्यालय हैं। यह व्यापार की दृष्टि से अच्छा है। डबलिन, कार्डिफ यहाँ बड़े शहर हैं।

अफ्रीका—यह द्वीप अँधेरा महाद्वीप भी कहलाता है। बास्कोडिगामा नाम के एक पुर्तगाली ने भारत जाते हुए इसका चक्कर लगाया था। इसका समुद्री किनारा सपाट होने के कारण जहाज नहीं रुकते हैं। बीच का भाग पठारी है। इसमें बहुत सी नदियाँ बहती हैं; किन्तु उनमें झरने बहते रहने के कारण नावें नहीं चल सकती हैं। यहाँ चौड़े-चौड़े रेगिस्तान हैं तथा बहुत गहरे जंगल हैं, जिनमें आदमी नहीं रह सकते। यहाँ के जंगली जानवर शेर, चीते आदि बड़े खूँख्वार होते हैं। यहां के निवासी अधिकांश जंगली तथा बड़े ही भयानक हैं, जो राहगीरों को लूट कर खा जाते हैं।

इसका क्षेत्रफल लगभग यूरोप से तिगुना है। यहाँ के पहाड़ ऊँचे नहीं हैं, केवल ऊपर की ओर एक बड़ा पहाड़ एटलस है, जो कि यूरोप के आल्पस पर्वत के सदृश है। अफ्रीका का अधिकांश भाग पठारी है। बाकी के भाग में जंगल तथा रेगिस्तान हैं। एटलस के नीचे एक विशाल रेगिस्तान है। यहाँ का यह रेगिस्तान लगभग आधे क्षेत्र में फैला हुआ है। सहारा से भी अफ्रीका उजाड़ और भयानक हो गया है।

अफ्रीका के ऊपरी भाग में सबसे बड़ी नील नदी बहती है। कहा जाता है कि "नील जिन्दगी का एक छोटा सा सोता है, जो किसी न किसी तरह मौत के मुंह से बच निकलता है।" इसी नदी के कारण यह क्षेत्र उपजाऊ, भरापूरा तथा आबाद है। यदि यह नदी न होती तो मिस्र भी रेगिस्तान

होता। अधिकांश जनसंख्या इसी नदी के किनारे-किनारे बसी हुई है। यहाँ पैदावार अच्छी होती है, कपास, तम्बाकू, चावल, ईख आदि अधिक पैदा होती है। इसी नदी के किनारे-किनारे यातायात के साधन है।

अफ्रीका में नील नदी के सिवा और भी बड़ी-बड़ी नदियां है। कांगो नदी, घने अँधेरे और भयानक जंगल मे चक्कर काटती है। इसके जंगलों में बहुत बड़े जानवर पाये जाते है, जो अन्य कही नही मिलते, जैमे—दरियाई घोड़ा, गैंडा, जेबरा और जिराफ आदि।
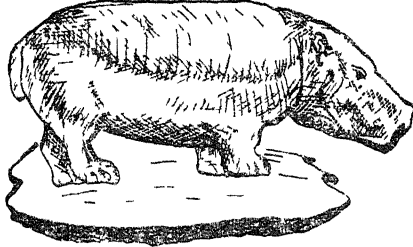
चित्र १७—दरियाई घोड़ा
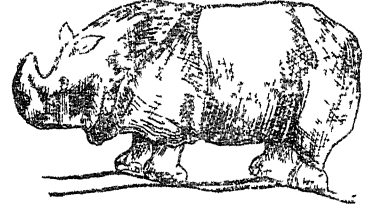
चित्र १८—गेंडा
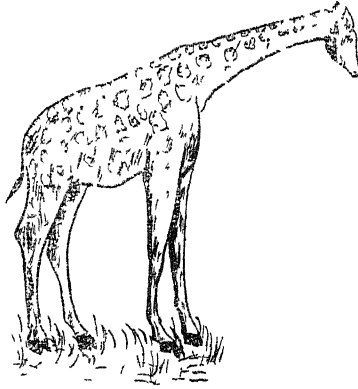
चित्र १९—जिराफ
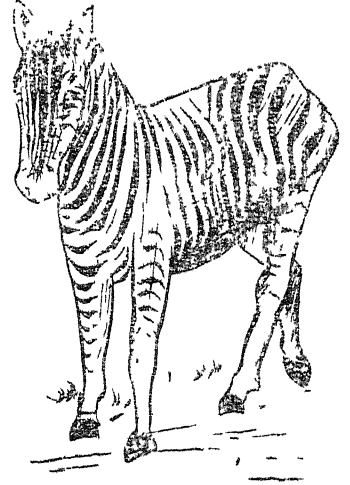
चित्र २०—जेबरा

अफ्रीका की नाइजर नदी सहारा रेगिस्तान की ओर धनुषाकार में बहती है। जेम्बजी दक्षिणी अफ्रीका की प्रसिद्ध नदी है। जंगलों में दरियाई घोड़ा, जेबरा, जिराफ आदि के अतिरिक्त लंगूर, वनमानुष, बन्दर, हाथी, शेर, हिरन आदि बहुत पाये जाते हैं।

रेगिस्तान में शुतुमुर्ग भी मिलते हैं। यह महाद्वीप भारत से लगभग ९ गुना बड़ा है। यहाँ की जनसंख्या भारत से दुगुनी मानी जाती है। सहारा रेगिस्तान में बहुत कम आदमी रहते हैं। अब यहाँ कुछ यूरोप के गोरे आदमी
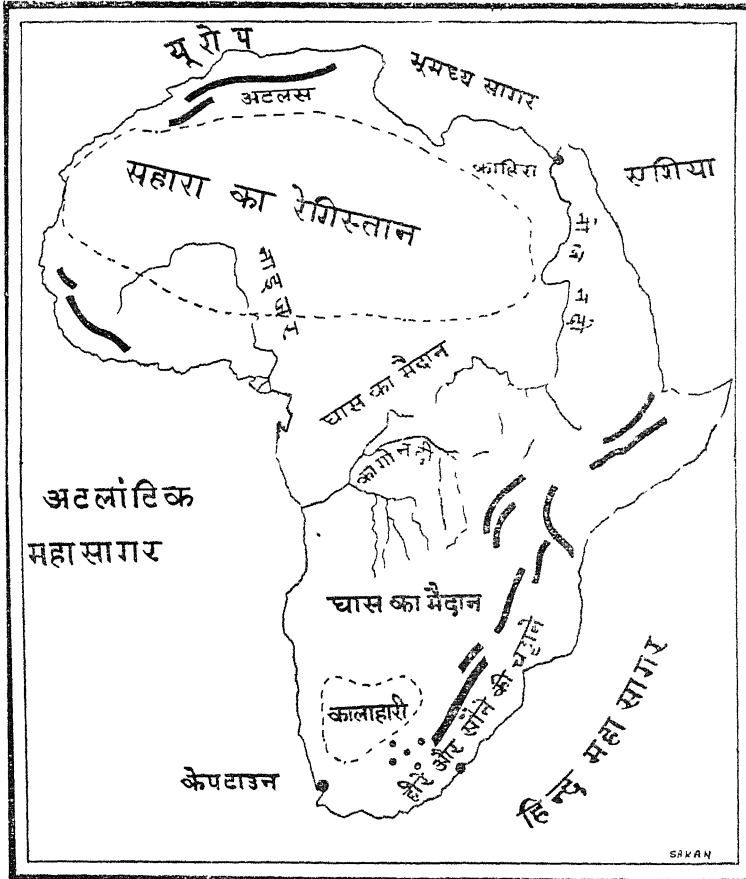
चित्र २१

भी रहने लगे हैं। यहाँ नीग्रो, बम्बू आदि जातियाँ अधिक पायी जाती हैं। ये लोग जानवर अधिक चराते हैं तथा शिकार करते हैं। कांगो नदी के किनारे तथा गिनी के जंगलों में रबड़ इकट्ठी की जाती है। काँगो के किनारे जंगली बौने आदमी रहते हैं, जो शिकार खेल कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

सहारा विश्व का सबसे बड़ा रेगिस्तान है। यह अफ्रीका में दूर-दूर तक फैला हुआ है, जो कि हिन्दुस्तान से दुगुना है। यहाँ अधिक गर्मी और अधिक सर्दी पड़ती है। यहाँ बालू के बड़े-बड़े पहाड़ हैं। यहाँ आँधी बहुत विकराल आती है। यहाँ बर्षा बहुत कम होती है। वर्षा कम होने के कारण कुछ नहीं उगता है। रेगिस्तानी भाग में रामबांस, बबूल, कांटेदार झाड़ियां उगती हैं। जहाँ बालू कम है, वहाँ गन्ना, चावल, छुआरा, तरबूज, गेहूँ, नारंगी, नीबू आदि होते हैं। यहाँ की भूमि की उपयुक्त सिंचाई हो जाये तो अनाज खूब पैदा हो सकता है।

यहाँ के जानवरों का रंग भूरा होता है, सुनहरी छिपकली, कुमरी, शुतुर्मुर्ग, ऊँट, शरमीले बन्दर, जहरीले कीड़े आदि यहाँ अधिक पाये जाते हैं। सहारा के लोग चारों ओर आग जला कर बीच में बिच्छू रख देते हैं - और फिर उसका नाच देखते हैं। जब गर्मी के कारण वह तड़फता है तब अपने आप को काट-काट कर मर जाता है। यहाँ के लोग भेड़, बकरी, ऊँट, गधे पालते हैं।

यहां के लोग बद्दू कहलाते हैं। ये लोग घूमते रहते हैं। ये लोग अपने जानवरों को लेकर चरागाहों की तलाश में घूमते रहते हैं। इनके तम्बू बकरे के बालों के बने होते हैं। ऊँट यहाँ का जहाज कहलाता है। अपने जानवरों की देखभाल करना, घोड़े तथा मक्खन बेचना, आटा, कपड़ा, और कहवा आदि मोल लेना, काफिलों को रास्ता बताना, लड़ना और डाका डालना इनके मुख्य कार्य हैं। इनके तम्बुओं में चटाइयाँ, बकरी, ऊँट के बालों की बनायी गई रस्सियाँ, भेड़ की खालों के कपड़े, मक्खन, दूध, पानी आदि रखने के लिये मिट्टी के बर्तन आदि रहते हैं।

ओसिस नामक स्थान में लोग गाँव तथा घर बना कर रहते हैं। यहाँ छुआरे, फल, चावल, आदि पैदा होते हैं। यहाँ के लोग खेती करते हैं, तथा जानवर भी चराते हैं। चमड़े से जीन तथा थैले बनाना, छुआरे की पत्तियों से चटाइयां बनाना, टोकरियाँ बनाना, आदि इनके कार्य हैं। ये इनके बदले कपड़ा, मसाला, टीन के बर्तन, रेशम, चाय आदि लेते हैं। यह व्यापार बद्दू लोगों के हाथ में है। सहारा के रेगिस्तान में भी उत्तरोत्तर उन्नति होने की सम्भावना की जा रही है। यहाँ पाताल तोड़ कुओं से सिंचाई करके खेती की जायगी।

नील नदी के पास वाले देश को नील प्रदेश कहते हैं। यह भाग अफ्रीका में सबसे उपजाऊ है। अब इसकी जनसंख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह पूरा भाग चौरस मैदान है। इसके ऊपरी भाग में कपास अधिक पैदा होती है, तथा मक्का, तम्बाकू, गेहूँ, गन्ना, चावल आदि अधिक पैदा होते हैं। निचले भाग में रबड़, घास आदि होते हैं। मिस्र हिन्दुस्तान के सिंध देश से मिलता-जुलता है। नील नदी की घाटी में पैदावार अधिक होती है। इसलिये इसको 'नील का दान' कहते हैं।

काहिरा यहाँ का प्रसिद्ध शहर है। यह अफ्रीका का सबसे बड़ा शहर है। यह मिस्र की राजधानी भी है। यहाँ ही मिस्र के पुराने पिरैमिड पाये जाते हैं।

मिस्र की सभ्यता बहुत प्राचीन है। यहाँ के लोग बहुत चतुर थे। वे कलायें जानते थे। उनमें से एक कला मुर्दे को मसाले में रखने की है। जब कोई बड़ा आदमी मर जाता था, तब उसे एक लकड़ी के बक्स में रख देते थे, जिसे ताबूत कहते हैं। उस लाश पर वे ऐसा मसाला लगाते थे कि वह लाश कभी भी सड़ने नहीं पाती थी।

मिस्र में कपास अधिक पैदा होती है। यहाँ की कपास बहुत अच्छी होती है। अलैकजेंन्ड्रिया यहां का मशहूर बन्दरगाह है, जिससे सारा माल बाहर भेजा जाता है। पोर्ट सईद भी एक बड़ा बन्दरगाह है। यहाँ जहाज कोयला लेते हैं। मिस्र के नीचे के भाग में एक ऐसा भाग है जिस पर इंगलैंड का भी अधिकार है और मिस्र का भी। यहाँ कपास की पैदावारी बढ़ाई जा रही है।

अफ्रीका में एक देश अबीसीनिया है, जिसमें अबीसीनिया पठार तथा सुमालीलैण्ड आदि देश सम्मिलित हैं। अबीसीनिया तो पहाड़ी भाग है, तथा सुमालीलैण्ड बिल्कुल रेगिस्तान है। ज्वालामुखी के लावा से बनी हुई होने के कारण भूमि बहुत उपजाऊ है। जब इसकी मिट्टी नदियों से मिस्र में पहुँचती है तो उसे भी अधिक उपजाऊ बना देती है। यहाँ भेड़, बकरियाँ पाली जाती हैं। पैदावार में कपास, नील, केला, आबनूस, गन्ना, कहवा आदि होते हैं। ऊपरी भाग में अंगूर, नारंगी, गेहूँ, मक्का अधिक होते हैं। यहाँ पर सोना, लोहा, कोयला, नमक, शोरा, गन्धक, मिट्टी का तेल, सीसा आदि की खानें अधिक हैं। यहाँ की राजधानी एडिसअबाबा है।

अबीसीनिया के निकट छोटे-छोटे देश हैं। पहला एरीट्रिया, जो पहिले

इटली के राज्य में था। यह भाग उजाड़ और रेतीला है। यहाँ की राजधानी अस्मारा है, जहाँ बहुत बहुमूल्य मोती निकलते हैं। फ्रैन्च सुमालीलैन्ड नामक देश से हाथीदाँत, खाल, गोंद, बाहर भेजा जाता है। इसी के निकट ब्रिटिश सुमालीलैण्ड है, जहाँ से हाथीदाँत, चमड़ा, बाहर भेजा जाता है। इसके पूर्व में एक रेगिस्तानी देश है, जिसे इटालियन सुमालीलैण्ड कहते हैं। यहाँ सुगन्धित धूप, कहवा अधिक पैदा होता है।

अबीसीनिया के नीचे का भाग पठारी है। यहाँ दो बड़ी घाटियाँ हैं। इस भाग में अफ्रीका की सबसे बड़ी झील है। जिनमें विक्टोरिया बहुत प्रसिद्ध है। विक्टोरिया के निकट पानी ठीक बरसता है। इनके किनारे-किनारे रबड़ गोंद, कहवा, कपास, तम्बाकू, गन्ना, ज्वार, अधिक पैदा होते हैं। विक्टोरिया झील के पास केला अधिक पैदा होता है। इस भाग से हाथीदाँत, रबड़, जानवर, लोहा आदि बाहर भेजे जाते हैं। कीनिया नामक राज्य में उगान्डा रेलवे के बन जाने से बहुत उन्नति हो रही है। मोम्बासा, कीनिया की राजधानी है और प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यहाँ से रबड़, चमड़ा, हाथीदांत, बाहर भेजे जाते हैं। युगान्डा नामक राज्य हाथीदाँत और शिकार के लिये प्रसिद्ध है। जंजीवार एक मूँगे का टापू है, जो लौंग और गरम मसाले के लिये बहुत प्रसिद्ध है, जिनका निर्यात किया जाता है। यहाँ एक ओर मूँगे का टापू है जो पैम्पा कहलाता है। इसमें लौंग और नारियल अधिक पैदा होते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में जैम्बिजी नामक नदी बहती है। इस नदी के आस-पास के क्षेत्र को जैम्बिजी प्रदेश कहते हैं। इसमें विक्टोरिया नामक झरना बहता है। यहाँ एक संकरा सा दर्रा है जो उबलता हुआ बर्तन कहलाता है। इसमें बहुत ऊँचे से नदी का पानी गिरता है। इसके दोनों ओर सोने की खानें हैं। यहां खनिज पदार्थ अधिक निकलते हैं। यहाँ की माताबोली नामक सोने की खान बहुत प्रसिद्ध है। सैलिसबरी नामक स्थान भी सोने की खानों के लिये प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त कोयला, ताँबा, सीसा, जस्ता, लोहा, भी निकलता है। दक्षिणी रोडेशिया से सोना, तम्बाकू, शक्कर, मक्का आदि बाहर जाती हैं। सैलिसबरी यहाँ की राजधानी है। जो सोने की खानों के लिये प्रसिद्ध है। उन्ताली में भी सोना निकलता है। उत्तरी रोडेशिया का ऊपरी भाग जंगलों से आच्छादित है तथा नीचे का भाग रेगिस्तान है। लिविङ्गस्टन यहाँ की राजधानी है, इसके निकट ही सोना निकलता है।

न्यासा झील के पास न्यासालैण्ड राज्य है। यहाँ गन्ना, कपास, तम्बाकू,

बहुत पैदा होता है। जोम्वा नामक शहर जहाँ की राजधानी है। यहीं पुर्तगीज पूर्वी अफ्रीका नामक राज्य है; यहाँ से कहवा, तम्बाकू, रबड़, मोम, गौंद तिलहन बाहर भेजे जाते हैं।

अफ्रीका से अलग मैडागास्कर नामक एक द्वीप है। यह पूरा द्वीप पहाड़ी है। यहाँ वर्षा बहुत होती है। यहाँ से रबड़ बाहर भेजी जाती है। यहाँ पर घने जंगल हैं। एन्टानानारिबो नामक शहर यहाँ की राजधानी है और टामाटेव यहाँ का बन्दरगाह है।

नाइजर नदी के पास के राज्यों को मिलाकर नाइजर बनता है। इसमें गिनीकोस्ट, सूडान का कुछ भाग, सेनीगाल, गेम्बिया, आदि आते हैं। गिनी तट पठारी भाग है। इसके किनारे एक पतला सा मैदान है। इसमें वर्षा अधिक होती है। इसलिये यहाँ घने जंगल हैं। भीतरी भाग में कुछ कपास तथा बाजरा पैदा होता है। यहाँ पर रबड़, आबनूस, लकड़ी, हाथीदाँत, नारियल, कपास, नील आदि पैदा होते हैं। सोना, टीन, लोहा, तांबा, यहां के खनिज पदार्थ हैं। गोल्डकोस्ट में सोना सबसे अधिक निकलता है। गोम्बिया नामक राज्य मूँगफली, गरी, लौंग, रबड़, और खाल के लिये प्रसिद्ध है। सीयरालॉन नामक राज्य में काली मिर्च, नारियल तथा रबड़ अधिक पैदा होती है। गोल्डकोस्ट से हाथीदाँत, जंगली पैदावार तथा सोना बाहर भेजा जाता है। नाईजीरिया में गरम मसाले, कहवा, तिलहन अधिक होते हैं। नीचे के भाग में रबड़, कहवा, हाथीदांत और लकड़ी होती है। सैनीगाल में मूँगफली पैदा होती है। लाइबीरिया नामक राज्य में हब्शी लोग रहते हैं। यहाँ कहवा, नारियल का तेल, तथा गन्ना अधिक होता है। एसन्शन में कछुए तथा सेन्ट हलेना में आलू अधिक पैदा होता है। नैपोलियन यहीं मरा था। यह जहाजों के कोयला लेने का मुख्य स्थान है।

आमेजन नदी के अतिरिक्त कांगो नदी का बेसिन सबसे बड़ा है। आमेजन नदी दक्षिणी अमेरिका की सबसे बड़ी नदी है। कांगो के बेसिन को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहला निचले देश, जिनमें वर्षा अधिक होती है, जिसके कारण घने जंगल हैं। जहाँ जंगल कम हैं, वहाँ कसावा, पक्का चावल, रतालू, केले आदि पैदा होते हैं। जंगलों में माहोगनी, आबनूस, साल, आदि की लकड़ी, रबड़, गरी आदि पैदा होते हैं। जिनका निर्यात किया जाता है। दूसरा भाग ऊँचा पठार है। यहाँ वर्षा कम होती है। चरागाह अधिक हैं।

भैंस, चीते, दरियाई घोड़े अधिक पाये जाते हैं। तीसरा भाग तटीय प्रदेश है। जिसमें केला, कहवा, रबड़, आदि होते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका, अफ्रीका का सबसे अधिक उपजाऊ, धनी देश है। इसकी जनसंख्या बहुत घनी है। यहाँ सोना अधिक निकलता है। विटवाटर्सरेंड नामक पहाड़ी से सबसे अधिक सोना निकलता है। यहाँ की खान विश्व में सबसे बड़ी है। लगभग आधा सोना यहाँ निकलता है।

हीरा निकालने के लिये भी यह राज्य अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ पर हीरे की बड़ी बड़ी खानें हैं। सन् १८७१ में किम्बर्ले नामक जगह से हीरा निकलना प्रारम्भ हुआ था जो विश्व में सबसे बड़ी है। किन्तु आजकल एक इससे भी बड़ी हीरे की खान प्रीटोरिया नामक शहर के निकट निकली है। अब तक इस खान से लगभग ६½ अरब रुपये के हीरे निकल चुके हैं।

कोयला भी यहाँ का प्रसिद्ध खनिज है। अब तक लगभग २ अरब रुपये का कोयला निकल चुका है।

बेड़ कर्रू, जूलूलैण्ड, नैटाल, ओरेंज फ्री स्टेट, ट्रांसवाल में कोयले की बड़ी-बड़ी खानें हैं। दक्षिणी अफ्रीका में कोयला अधिक मात्रा में निकलता है। यहाँ ताँबा नामाक्वालैण्ड और ओकीप में मिलता है। लोहा औरटीन ट्रांसवाल में मिलता है। इनके अतिरिक्त सीसा, अभ्रक, मेंगनीज, एसबस्टोस, जस्ता, निकिल, सोडा भी पाया जाता है।

दक्षिणी अफ्रीका में पठार, अधिक भाग में फैला हुआ है। यहाँ गर्मी कम पड़ती है। जाड़े में सूखी हवायें चलती हैं। यहाँ की जलवायु अच्छी है। तम्बाकू, गन्ना, मक्का आदि पैदा होते हैं तथा शुतुर्मुर्ग, भेड़, बकरियाँ आदि पाली जाती हैं। इसके नीचे के भाग में एक रेगिस्तान है। जिसे कालाहारी का रेगिस्तान कहते हैं। यहाँ वर्षा कम होती है। इधर उधर थोड़ी सी घास पैदा हो जाती है तथा यहाँ, भेड़ बकरियाँ पालने का काम करते हैं।

सन् १९१० में कई राज्यों को मिलाकर अफ्रीका बना था, प्रीटोरिया नामक शहर यहां की राजधानी है। इसमें केप नाम का एक प्रांत है, जिसके पूर्वी भाग में मक्का, तम्बाकू आदि पैदा होते हैं। इस प्रान्त का ऊपरी भाग बिलकुल सूखा है। इस भाग में भेड़ें तथा शुतुर्मुर्ग पाले जाते हैं, तथा बहुत सारा ऊन बाहर भेजा जाता है। केपटाउन यहाँ का मुख्य शहर है। जो कि दक्षिणी अफ्रीका का सबसे बड़ा शहर है। यहीं से होकर वास्कोडिगामा हिन्दुस्तान आया था। इसीलिये इस जगह का नाम 'केप ऑफ गुड होप' रखा गया था।

यह शहर बन्दरगाह भी है तथा राजधानी भी। जहाज यहाँ आकर कोयला लेते हैं। यहाँ से फल, गेहूँ, शुतुर्मुर्ग के पर, सोना, ताँबा, हीरे, ऊन बाहर भेजे जाते हैं। किम्बर्ले नामक शहर के निकट सोने की खानें हैं। यह एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ से हीरे, ऊन, शुतुर्मुर्ग के पर और चमड़ा बाहर भेजा जाता है।

यहाँ के एक प्रान्त का नाम नेटाल है। यहाँ गन्ना, चावल, केला, अनन्नास अधिक पैदा होता है तथा कोयला, सोना, ताँबा आदि भी निकलते हैं।

यहाँ का मुख्य शहर डरबन है, जो एक अच्छा बन्दरगाह भी है। औरेंज फ्री स्टेट में भेड़ें और शुतुर्मुर्ग पाले जाते है। यहाँ की लीडोन नामक घाटी बहुत उपजाऊ है। यहा बिना सिचाई के गेहूँ पैदा होता है।

वाल नामक नदी के किनारे पर ट्रान्सवाल नाम का प्रान्त है, यहाँ घोड़े तथा भेड़ें पाली जाती है। यहाँ नीचे के भाग मे टिसटिसी नाम की जहरीली मक्खी पाई जाती है। इस मक्खी के कारण यहा जानवर नही पाले जाते है। इस प्रान्त में सोना बहुत निकलता है। ५० करोड़ रुपये का सोना प्रतिवर्ष इसी प्रान्त से निकाला जाता है। यहाँ सोने की खानो की एक पहाड़ी है जो विटवा-दर्सरैण्ड कहलाती है। यह पहाड़ी ५० मील लम्बी है। प्रीटोरिया नामक शहर पूरे दक्षिणी अफ्रीका की राजधानी है। यह शहर खेती की दृष्टि से बहुत अच्छा है। सोने की खानों का पर्वत इसी के निकट है। इसका दूसरा शहर जोहान्सवर्ग है, जो ५ रेलो का केन्द्र है, जो दक्षिणी अफ्रीका की 'स्वर्ण-पुरी' कहलाता है।

इसके नीचे वेच्वानालैण्ड नामक राज्य है, जिसका मध्यभाग रेगिस्तानी है, यहाँ वर्षा बहुत कम होती है। यहाँ कोई बड़ा शहर नही है तथा यहाँ कम पशु पाले जाते हैं।

इधर ही दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका नामक राज्य है। इसके बीच मे कई पहाड़ियाँ फैली हुई है। यहाँ के लोगो का प्रमुख काम पशु चराना है। यह राज्य ताँबे की खानो के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध है। वाल्फिशबे यहाँ का बहुत बड़ा बन्दरगाह है।

अफ्रीका के कुछ भाग मे रेगिस्तान तथा कुछ भाग में जंगलो की कतारें हैं। यहाँ के जंगलो में नाना प्रकार के जीव-जन्तु पाये जाते है। यहाँ सोना, तथा हीरा अधिक निकलता है।

सोना, हीरे, कोयला, चमड़ा, ऊन आदि वस्तुएँ, इंगलैंड, जर्मनी, फ्रान्स, हिन्दुस्तान को भेजी जाती हैं। लगभग १½ अरब रुपये का सामान प्रतिवर्ष निर्यात होता है।

यहाँ के लोग, इंगलैंड, हिन्दुस्तान, जर्मनी, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि बड़े-बड़े देशों से मशीनरी, मोटरकार, सूती कपड़ा, कागज, दवाइयाँ, तथा अन्य सामान का आयात करते हैं। लगभग १ करोड़ रुपये का सामान प्रतिवर्ष विदेशों से मँगाते हैं।

उत्तरी अमेरिका—आज से ४०० वर्ष पहिले अमेरिका को कोई नहीं जानता था। हमारे हिन्दू धर्म की पुरानी पुस्तकों में उल्लेख आता है कि पृथ्वी के बाद पाताल लोक है, यह पाताल लोक अमेरिका ही था।

अमेरिका की खोज, कोलम्बस नामक एक आदमी ने की थी। यह जिनोआ का रहने वाला था। यह हिन्दुस्तान को खोजना चाहता था, क्योंकि उन दिनों यूरोपवासियों ने यह सुन रखा था, कि हिन्दुस्तान एक सोने की चिड़िया है। इसीलिये कोलम्बस भी हिन्दुस्तान आना चाहता था। इसके बाद अमेरिका को एक 'अमेरिगो' नामक आदमी ने खोजा था, इसलिए इसका नाम अमेरिका पड़ा।

अमेरिका के दो भाग हैं, एक उत्तरी अमेरिका तथा दूसरा दक्षिणी अमेरिका। इन दोनों को मिलाकर नई दुनियाँ भी कहते हैं।

उत्तरी अमेरिका में हरे भरे पहाड़ों की शृंखलायें हैं। ये राकी पर्वत कहलाते हैं। यहाँ इमारती लकड़ी के घने जंगल हैं। जंगल इस देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। राकी पर्वत के मध्य में कोलोरेडो नामक पठार है। इसमें इसी नाम की एक नदी बहती है। उत्तरी अमेरिका के पूर्वी भाग में आल्पशियन नामक पहाड़ियाँ हैं। जो अटलांटिक के सहारे-सहारे दो हजार मील तक फैली हुई हैं। राकी और आल्पशियन के मध्य उत्तरी अमेरिका का विस्तृत मैदान है। इसका ऊपरी भाग साइबेरिया की भाँति बिल्कुल ठण्डा है तथा ऊजड़ भी है। बाकी भाग बहुत उपजाऊ है। यहाँ गेहूँ, मकई, कपास बहुत होती है। इस मैदान को बड़ी-बड़ी नदियाँ सींचती हैं। इसकी सबसे बड़ी नदी मिसीसिपी है। जो कि नई मिट्टी लाकर मैदान में बिछा देती है। व्यापार की दृष्टि से सेंट

लारेंस नदी अच्छी है। यह आल्पशियन पर्वत श्रेणी के ऊपरी भाग में बहती है। यह बहुत सी झीलों को समुद्र से मिलाती है।
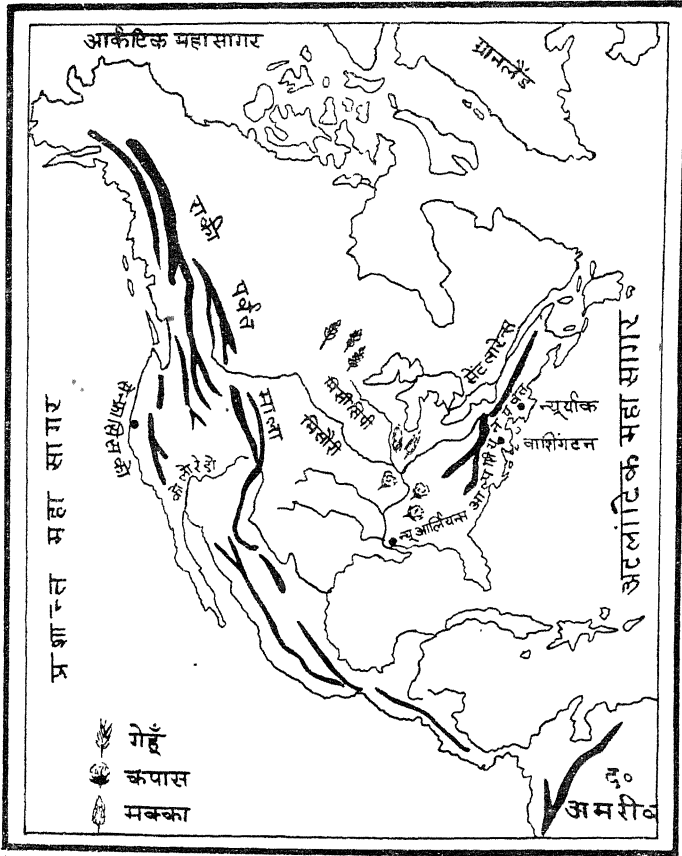
चित्र २२

एशिया के बीच हिमालय पहाड़ एक ऊँची दीवार की तरह पश्चिम से पूरब की ओर चला गया है, जिससे गंगा और सिंध का मैदान साइबेरिया की तीर सी चुभने वाली ठण्डी हवाओं से बच गया है। परन्तु अमरीका में कोई ऐसा पहाड़ नहीं है। इसलिये सर्दियों में उत्तर की ठण्डी हवा के प्रभाव से ठण्ड अधिक पड़ती है, तथा गर्मियों में दक्षिण को गर्म हवा उत्तर तक चली जाती है, जिससे अधिक गर्मी पड़ती है।

ऊपर के ठण्डे भाग में मूंज, हरिण, मुश्की, बैल आदि जानवर मिलते हैं। यहाँ का कैरीबो नामक हरिण रेन्डियर के सदृश होता है। यहाँ के मुश्की बैल के बालों के ऊनी अंगरखे बनाये जाते हैं। कनाडा के जंगलों में बन-विलाव, पूमा, लाल और भूरे रीछ, भेड़िया, नेवला, बिज्जू, बीवर, स्कंद, आदि अधिक पाये जाते हैं। जिनसे नमदा, ऊन, और खाल मिलती है। प्रेरी के घास के मैदानों में बिसन भैंसा अधिक पाया जाता है, जो झुण्ड बना-कर रहता है।

गर्म जंगलों में बन्दर, तोता, सांप, शेर, चीते आदि अधिक पाये जाते हैं। न्यूफाउन्डलैण्ड के चारों तरफ, सेन्टलारैन्स के मुहाने में फण्ड की खाड़ी मैक्सिको की खाड़ी, कैलीफोर्नियाँ की खाड़ी है। यहाँ वैन्कूवर के निकट मछलियाँ बहुत मिलती हैं। पूर्व की ओर कॉड, और लोवस्टर नामक मछलियां पाई जाती हैं। पश्चिम में सामन मछली, ग्रेटलेक्स में नीली. तथा सफेद मछली मिलती है। अमरीका के अधिकांश लोग मछली मारते हैं।

अमरीका में यूरोपियन, रैड इण्डियन, नीग्रो, मैस्टिजो, चोनी, जापानी, आदि जातियाँ रहती हैं। रैड इंडियन अधिकांश मैक्सिको तथा दक्षिण संयुक्त राज्य में पाये जाते हैं। ये लोग मछली का शिकार करके अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यहां कुछ नीग्रो लोग भी बसे हुए हैं। यह जाति अफ्रीका में अधिक पाई जाती है। अमेरिका के लोगों ने हब्शी लोगों को गुलाम बना लिया है। मैस्टिजो नामक जाति के लोग मध्य अमेरिका तथा मैक्सिको में अधिक पाये जाते हैं। कनाडा, संयुक्त राज्य, मिसीसिपी नदी के किनारे आदि में जनसंख्या अधिक बसी हुई है। यहाँ यातायात के साधन अच्छे हैं।

अमेरिका के ऊपरी भाग में ग्रीनलैण्ड नामक एक बड़ा टापू है, जो निक-टवर्ती टापुओं में सबसे बड़ा है। यह सारा टापू बर्फ से आच्छादित है। केवल किनारों पर एस्कीमो तथा कुछ डेन्मार्क के निवासी रहते हैं। इन्हीं का यहाँ पर राज्य है। ये शिकार करते हैं तथा कायक नामक नाव में बैठ कर मछली का शिकार करते हैं। अपर नेविल यहाँ का बड़ा बन्दरगाह है। जो विश्व का सबसे बड़ा उत्तरी नगर है।

न्यूफाउन्डलैण्ड—लगभग ४५० वर्ष पहिले इसकी खोज हुई थी। यह स्थान मछली के शिकार के लिए विश्वविख्यात है। गल्फस्ट्रीम की गर्म धारा यहाँ आकर लैब्रेडर नामक ठण्डी धारा से मिलती है। इस कारण यहाँ मछलियाँ अधिक मिलती हैं। इस टापू में पहाड़ियाँ, नदियाँ, झीलें तथा तालाब

अधिक हैं तथा स्प्रूस, देवदार, बर्च, लार्च, पौपर, आदि के जंगल हैं। यहाँ की घाटियों में जौ, जई, आलू, अधिक पैदा होते हैं। इसके अतिरिक्त कोयला, लोहा, ताँबा, आदि की खानें हैं।

यहाँ कॉड मछली अधिक पायी जाती है। यहाँ के लोगों का मुख्य काम मछली मारना है। यहाँ से कॉड मछलियाँ, ब्राजील, स्पेन, पुर्तगाल, इटली, इँगलैंड आदि देशों को भेजी जाती हैं। कॉड मछली खाने के अतिरिक्त, तेल निकालने के काम में आती है। सेन्टजौन्स यहाँ की राजधानी है। यहाँ से मछली, कॉड लिवर आइल, लोहा, कोयला आदि बाहर भेजे जाते हैं।

कनाडा—यह अमरीका का उत्तरी भाग है। इसका पूर्वी भाग तो पुरानी चट्टानों से बना हुआ है, बीच का भाग चौरस है तथा मुलायम चट्टानों का बना हुआ है तथा पचिमी भाग पहाड़ी और पठारी है। खनिज पदार्थों में तो कनाडा विश्व में सबसे धनी है। लगभग ५१ करोड़ रुपये के खनिज पदार्थ प्रतिवर्ष निकाले जाते हैं। कोयला, कोबाल्ट, निकल, ऐसबैस्टोस, सोना तो यहाँ बहुत मात्रा में पाया जाता है। प्रतिवर्ष लगभग १½ करोड़ रुपये का कोयला, नोवास्कोशिया, एलवार्ट की खानों से निकाला जाता है। यहाँ विश्व में सबसे अधिक निकल निकाली जाती है।

यहाँ के जंगलों में देवदार, मैपिल, एल्म, शाहबलूत, बर्च, बीच, लार्च आदि के पेड़ अधिक पाये जाते हैं। लकड़ी काटने का काम अधिक होता है। मुलायम लकड़ी के गूदे से कागज बनाया जाता है। यहाँ के मैपिल नामक पेड़ से शक्कर बनाई जाती है। यहाँ लगभग ४००० लकड़ी के काम के कारखाने हैं।

कनाडा के जंगलों में मनुष्य जानवरों की नमदा और ऊन इकट्ठी किया करते हैं। जुलाई के महिने में हडसन खाड़ी में जहाज आते हैं तथा अपने साथ, बन्दूक, कुल्हाड़े, चाकू, कम्बल आदि सामान बेच कर फर भर कर ले जाते हैं। फर वाले जानवरों में, रीछ, भालू, लोमड़ी, बीवर, सेबिल, सील, अरमिन, भेड़िया आदि हैं, जो सर्दियों में मारे जाते हैं।

यहाँ मछली मारने का कार्य अधिक होता है। न्यूफाउन्डलैन्ड के निकट-तम स्थान, हडसन की खाड़ी, वैंकूबर के पास, तथा सैन्टलारैन्स नदी और झील आदि जगहें मछली पकड़ने के लिये अधिक प्रसिद्ध हैं। सैन्टलारैन्स की घाटी, प्रेरीज, ब्रिटिश कोलम्बिया आदि में गेहूँ, जौ, जई, राई, आलू, तम्बाकू,

चुकन्दर आदि अधिक पैदा होते हैं। कनाडा में फल अधिक पैदा होते हैं। ब्रिटिश कोलम्बिया, लेक पेनिनसुला, नोवास्कोशिया में सेब, नासपाती, अंगूर अधिक पैदा होते हैं। ओटेरियो और क्यूबेक में गाय, भैंस अधिक पाले जाते हैं, जिनका दूध, मक्खन, पनीर दूसरे देशों को भेजा जाता है। घोड़े, गाय, तथा भेड़ें, प्रेरीज के मैदानों में अधिक पाले जाते हैं। कनाडा में लगभग ४० लाख भेंड़ें पाली जाती हैं, जिनसे ऊन, मास, चमड़ा अधिक प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त लोहे के सामान, मोटरकार, साईकिल, ऊनी, सूती कपड़ों के बहुत से कारखाने हैं।

कनाडा में कुछ प्राप्त अटलान्टिक सागर के निकट हैं, जो समुद्र के निकटतम प्रान्त कहलाते हैं, उनमें से एक नोवास्किया है। यह प्रान्त न्यूफाउन्डलैण्ड से आधा है। यहाँ फलों के बगीचे हैं। कनाडा का आधा कोयला यहीं से निकलता है। यहाँ के लोहे के कारखानों में लोहे की पटरियाँ अधिक बनती हैं। यहाँ की राजधानी हैलीफैक्स है जो यहाँ का बन्दरगाह भी है। यहीं से सामान विदेशों के लिये भेजा जाता है।

दूसरा प्रान्त न्यूब्रिन्सविक कहलाता है, यहाँ के लोग मछली मारने, गाय पालने, लकड़ी काटने, कागज का गूदा बनाने का काम अधिक करते हैं। फेडरिक्टन यहाँ की राजधानी है, जिसमें विश्व का सबसे ऊँचा ज्वारभाटा आता है। सेन्टजॉन यहाँ का प्रसिद्ध बन्दरगाह है।

तीसरा प्रान्त प्रिन्सएडवार्ड टापू है। यह एक नीचा द्वीप है। यहाँ का किनारा कटा-फटा है, इसीलिये यहाँ मछली अधिक मारी जाती हैं। फल उगाना, मक्खन, पनीर बनाने का काम अधिक होता है। चारलाट यहाँ की राजधानी है।

सेन्टलारैन्स नदी की घाटी में बसे देशों को नदी प्रान्त कहते हैं। यह बहुत उपजाऊ तथा चौरस मैदान है। इस में गेहूँ, मक्का, फल उगाने, मक्खन पनीर का काम अधिक होता है। यहाँ का पहला प्रान्त क्यूबक है, जो ऊपर की ओर वीरान तथा पठारी है। नीचे की ओर देवदार के जंगल हैं। क्यूबेक ही यहाँ की राजधानी है। यह 'नई दुनिया' का 'जिब्राल्टर' कहलाता है; क्योंकि कनाडा में घुसने का यही द्वार है। कनाडा का सबसे बड़ा शहर मान्ट्रियल है, यदि यहाँ नदी न जमती तो उत्तरी अमेरिका का यह सबसे बड़ा

शहर होता। यहाँ की नदी में बड़े-बड़े जहाज आकर रुकते हैं। यातायात के साधन अच्छे हैं। सेन्टलारैन्स, ओटावा, रिचलो नदी के बीच में एक टापू सा बसा हुआ है। यहाँ पैदावार अच्छी होती है। नदी प्रान्त में दूसरा प्रान्त ओटेरियो है। यहाँ लेकप्रायद्वीप फलों की उपज के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ अंगूर, नासपाती, आड़ू, खरबूजे अधिक पैदा होते हैं। यहाँ जलविद्युत अधिक पैदा की जाती है। पठारी भाग में चाँदी, लोहा, ताँबा, मिट्टी का तेल, बहुत मिलता है। सडवरी में निकल, कोबाल्ट आदि की खानें हैं। टोरन्टो यहाँ की राजधानी है। यह कनाडा दूसरा प्रसिद्ध शहर माना जाता है। लोहा ढालने, मशीन बनाने, शराब निकालने, चमड़ा रंगने, साबुन आदि बनाने के कारखाने अधिक हैं। सुन्दर खाड़ी पर बसा होने के कारण रेल और स्टीमर अधिक आते हैं। यहाँ लोहे का काम बहुत अधिक होता है।

प्रेरी प्रान्त विश्व के गेहूँ उपजाने वाले क्षेत्रों में से एक है। गेहूँ के अतिरिक्त जौ, जई, राई, सन, आलू भी अधिक पैदा होते हैं। यहाँ का मैदान चौरस है। इसका ऊपरी भाग पहिले कभी किसी झील का भाग था, उसमें गेहूँ अधिक पैदा होता है। इसका नीचे का भाग कुछ ऊँचा-नीचा है। इसमें कहीं-कहीं गेहूँ अच्छा पैदा होता है। इस भाग में घोड़े, गाय, भैंस, सुअर तथा भेड़ें पाली जाती हैं। विनीवेग यहाँ का बड़ा शहर है। यह कनाडा का तीसरा बड़ा शहर है। अनाज और नमदे की बड़ी मण्डी है।

ब्रिटिश कोलम्बिया भी कनाडा का एक प्रान्त है। वह पूरा भाग पहाड़ी है। यहाँ की जलवायु इंगलैंड के समान है। समुद्री किनारा कटा-फटा है। पहाड़ी ढाल पर डगलस, फर, लाल सिडार, सफेद देवदार के जंगल हैं। इनकी लकड़ी काटकर विदेशों को भेजी जाती है। प्रतिवर्ष लगभग १२ करोड़ रुपये का सोना, कोयला, ताँबा आदि सामान खानों से निकाला जाता है। फ्रेजर नदी तथा वैन्कूवर नामक बन्दरगाह के निकट करोड़ो रुपये की सैमन मछलियाँ पकड़ी जाती हैं, जिनका विदेशों को निर्यात किया जाता है। तट पर खेती तथा घाटियों में फल उगाने का काम अधिक होता है। यहाँ से करोड़ों रुपये के फल प्रतिवर्ष विदेशों को भेजे जाते हैं। सेव, नासपाती, चैरी, बेर, पीच, अंगूर आदि फल अधिक भेजे जाते हैं। वैन्कूवर यहाँ का प्रसिद्ध बन्दरगाह है। इससे गेहूँ, मछलियों के डिब्बे, पहाड़ों की लकड़ी और खनिज तथा घाटियों के फल विदेशों को भेजे जाते हैं। विक्टोरिया ब्रिटिश कोलम्बिया की राजधानी है तथा अच्छा बन्दरगाह भी है।

उत्तर के प्रदेश में टुण्ड्रा, यूक्रेन की घाटी सम्मिलित हैं। यहाँ क्लोन्डाइक सोने की खान है; जिसके कारण ही डौसन नामक शहर बसा हुआ था। इसके एक तरफ अलास्का नामक प्रान्त है जो संयुक्त राज्य द्वारा रूस से बहुत सस्ते दामों में खरीदा गया था। यहाँ सोना, कोयला आदि की खानें हैं। यहाँ का मुख्य काम मछली मारना है।

कनाडा एक बड़ा धनी तथा अधिक गेहूँ पैदा करने वाला क्षेत्र है।

संयुक्त राज्य अमेरिका—यह राज्य विश्व में सबसे अधिक उन्नतिशील समृद्धिशाली, शक्तिशाली तथा विकसित है। यहाँ गेहूँ सबसे अधिक पैदा होता है। सोना, चाँदी, कोयला, पेट्रोल अधिक निकलता है। यहाँ बड़ी-बड़ी मशीन, औजार, कल-पुर्जे आदि बनाने के विशाल कारखाने हैं। यहाँ की आबादी कनाडा से आठ गुनी है, जिनमें लगभग एक करोड़ हब्शी तथा रैड इन्डियन आदि जातियाँ रहती हैं।

इसके ऊपरी भाग में वाशिंगटन और औरीगन नामक दो रियासतें हैं; यहाँ साल भर वर्षा होती रहती है। लगभग ८०" पानी की वर्षा प्रतिवर्ष हो जाती है। यहाँ घाटी में फल बहुत अधिक पैदा होते हैं। डगलस, फर, देवदार आदि के जंगल हैं। यहाँ का मुख्य बन्दरगाह सीएटिल है। यहाँ से लकड़ी, पल्प (गूदा), कोयला, माँस बाहर भेजा जाता है। यहाँ कोलम्बिया नामक नदी में मछली मारने का कार्य होता है। मछली भी विदेशों को भेजी जाती है।

द्वितीय राज्य कैलीफोर्निया है। यहाँ एक विशाल घाटी है, जिसमें गेहूँ, जौ, नीबू, नासपाती, अखरोट, किशमिश, चेरी, नारंगी, अंगूर आदि बहुत अधिक पैदा होते हैं; जिनका निर्यात किया जाता है। यहां सोना भी निकलता है। सैनफ्रान्सिसको यहाँ का प्रमुख शहर है। जो एक प्राकृतिक बन्दरगाह है। यहां का पानी इतना गहरा है कि सैकड़ों जहाज खड़े रह सकते हैं। सोना, फल, गेहूँ, मिट्टी का तेल, आदि यहाँ से विदेशों को निर्यात होता है। लॉस-एञ्जिल्स यहाँ का एक बड़ा शहर है। विश्व का सबसे प्रसिद्ध सिनेमा की फिल्म बनाने वाला, हालीवुड शहर यहीं पर बसा हुआ है। विश्व के मिट्टी के तेल का $\frac{1}{6}$ भाग यहीं निकलता है। यहाँ से सिनेमा की फिल्में तथा फल वगैरह सामान का निर्यात किया जाता है।

कैलीफोर्निया के पूर्व में पठारी भाग है, जो अधिकतर रेगिस्तानी है। घाटियों में गर्मी अधिक पड़ती है। वर्षा बहुत कम होती है, जो भी न के बराबर।

स्नेक नदी के पास कुछ काली मिट्टी है जिसमें कुछ गेहूँ हो जाता है। यहाँ ग्रेटसाल्ट नामक विशाल झील है। यह इतनी कम गहरी है कि इसके ऊपर से एक रेल मार्ग जाता है। यह झील समुद्र से ६ गुनी खारी है। इससे प्रतिवर्ष हजारों मन नमक तैयार किया जाता है। यहाँ यलोस्टोन नामक एक बाग है, जिसमें लगभग १० हजार गर्म पानी के सोते हैं तथा ५० प्राकृतिक बहुत गर्म पानी के फव्वारे हैं। इनमें ग्रान्ड ग्रेशर सबसे बड़ा है। इसका पानी लगभग ३०० फुट ऊँचा उछलता है। इस पानी से सिंचाई का काम किया जाता है। यहाँ ३०० मील लम्बी एक दरार है, जिस में कलोरैंडी नदी बहती है। इन पठारों में खान खोदने का कार्य अधिक होता है। संयुक्त राज्य में मिलने वाली चाँदी, ताँबा, सीसा का सबसे बड़ा भाग यहीं मिलता है तथा सोने का $\frac{3}{4}$ भाग यहीं मिलता है, शेष $\frac{1}{4}$ भाग अन्यत्र मिलता है। कोयला तथा मिट्टी का तेल भी अधिक निकलता है।

राकी पर्वत के मध्य, घास के बड़े-बड़े मैदान हैं, यहाँ घोड़े, भेड़ें, सुअर तथा अन्य पशु पाले जाते हैं। इलोनॉस नामक रियासत घोड़े पालने के लिए अधिक प्रसिद्ध है।

मिसीसिपी नदी अपनी सहायक नदी मिसोरी को मिलाकर विश्व की सबसे बड़ी नदी है। इसके आस-पास बड़े-बड़े शहर बसे हुए हैं। यह नदी इटास्का नामक झील से निकली है, जो देवदार के जंगलों से आच्छादित है। यह नदी देवदार के जंगलों को पार करके छोटी-छोटी झील तथा दलदल को पार करती हुई, प्रसिद्ध गेहूँ पैदा करने वाली जगह में आती है। यहाँ सेन्टपाल तथा मिनियापालिस दो बड़े शहर हैं, जिनमें आटा पीसने, और माँस के कई कारखाने हैं। इनमें ३-३ मंजिल के व्यापारिक जहाज चलते हैं। इसके ऊपरी भाग में गेहूँ, कपास, तम्बाकू, आदि पैदा होते हैं तथा नदी के किनारे किनारे बहुत दूर तक मक्का ही मक्का पैदा होती है। इससे आगे इसमें गन्दे पानी की मिसोरी नदी बहती है। इसके निकट ही सेंट लुई नामक प्रसिद्ध शहर बसा हुआ है। यह एक बन्दरगाह है। यहाँ जूते, तम्बाकू, लोहे आदि के सामान बनाने के कारखाने हैं। आगे चलकर यह नदी उपजाऊ मैदान में बहती है। यहाँ इस नदी के पानी को बाँधों में रोका गया है। इससे आगे थिटसवर्ग और सिनसिनाटी नामक प्रसिद्ध शहर हैं जोकि लोहे के कारखानों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनसे आगे मैम्फिस नामक शहर है। यहाँ नदी टेढ़ी-मेढ़ी होकर बहती है। इस भाग में कपास, गन्ना, तम्बाकू आदि की खेती अधिक

होती है। मैम्फिस में कपास सबसे अधिक पैदा होती है। तत्पश्चात् न्यूआर्लियन्स नामक शहर पड़ता है। यह एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ से कपास, शक्कर, चावल, मक्का, तम्बाकू बाहर भेजी जाती है। दूसरा बन्दरगाह गालवेस्टन है, यहाँ से मिट्टी का तेल तथा कपास बहार भेजी जाती है। इस भाग का सबसे बड़ा शहर शिकागो है। जो विश्व का चौथा शहर है। अमरीका में न्यूयार्क के बाद इसी में सबसे अधिक मनुष्य रहते हैं। इसके निकट मिशीगन नामक विशाल झील है जो इसके व्यापारिक क्षेत्र को और भी बढ़ा देती है। इस झील में बड़े-बड़े जहाज आते हैं। यह एक बड़ा बन्दरगाह भी है। यहाँ माँस की सबसे बड़ी मण्डी है। माँस के अतिरिक्त चर्बी से साबुन, खाल से चमड़ा, खुरों से कंघी, हड्डी से बटन, तथा लोहू से स्याही बनती है। यहाँ अनाज की भी बड़ी मण्डी है। आटा, लकड़ी, कपड़े के भी कारखाने अधिक है तथा निकट ही कोयला और लोहा भी निकलता है।

नीचे और पूर्व की तरफ एक चौड़ा मैदान है। जो विश्व में सबसे अधिक कपास पैदा करता है। यहाँ की कपास लम्बे रेशे वाली मुलायम होती है। कपास के अतिरिक्त मक्का, चावल, गन्ने की भी अच्छी खेती होती है। विश्व के प्रतिवर्ष सोना निकलने के मूल्य के बराबर कपास यहाँ से यूरोप भेजी जाती है। फलोरिया में कपास पैदा नहीं होती, यह स्थान फल और फूल के लिये प्रसिद्ध है। मियामी यहाँ की राजधानी तथा प्रसिद्ध बन्दरगाह है।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में ऐपेलेशियन नामक एक प्रदेश है, जिसमें ऐपेलेशियन नामक एक पठार है, तथा एक पहाड़ी शृंखला है। यहाँ की तटीय भूमि अधिक उपजाऊ है। जिसमें खेती तथा गोरस का कार्य अधिक होता है। यहाँ कारखाने अधिक हैं; क्योंकि यहाँ कोयला, लोहा, गैस, मिट्टी का तेल, जल-विद्युत अधिक है। कागज बनाने के लिये पहाड़ी लकड़ी है तथा ऊन के कारखानों के लिये भेड़ें पाली जाती हैं। हडसन की खाड़ी से व्यापार होता है। इसके मुहाने पर न्यूयार्क नामक बड़ा शहर है, जो अमरिका में सबसे बड़ा शहर है। यह एक प्राकृतिक बन्दरगाह है। यहाँ का समुद्री तट कटा हुआ तथा गहरा है, जिससे यहाँ जहाज सरलता से रुक सकते हैं। यहाँ गल्फस्ट्रीम नामक गर्म धारा बहती है, जिससे समुद्र जमता नहीं है। इसलिये यह संयुक्त राज्य की व्यापारिक राजधानी है। इस राज्य का आधा व्यापार यहीं से होता है। माँस, पशु, गेहूँ, आटा, मिट्टी का तेल, मशीनरी, मोटर आदि यहाँ से भेजी जाती

हैं। यहाँ की इमारतें गगनचुम्बी होती है। यहाँ सूती और ऊनी कपड़ा, शक्कर, कागज, पेट्रोलियम आदि के अनेक कारखाने हैं। लगभग ३½ हजार जहाज यहाँ सामान का आयात तथा निर्यात करने आते हैं।

चित्र २३—न्यूयार्क की इमारतें

डेलाबेवर नामक नदी पर फ्लैडैल्फिया नामक प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यह शहर बहुत बड़ा है। यहाँ रेल के इञ्जिन बनाने, जहाज, ऊनी कपड़े, कालीन, शक्कर के बड़े बड़े कारखाने हैं। चमड़े का काम तथा तेल साफ करने का काम भी किया जाता है।

संयुक्त अमरीका में, वाशिंगटन नामक शहर पोटोमैट नामक नदी पर बसा हुआ है। यह शहर यहाँ की राजधानी है। यहाँ का थिटसवर्ग नामक शहर लोहे के काम के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध है।
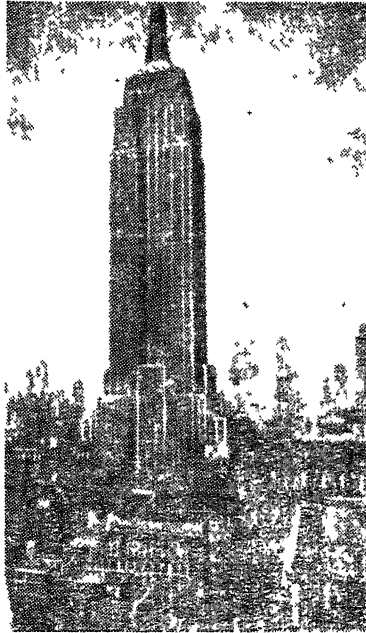
संयुक्त राज्य के ऊपर पूर्वी भाग में न्यूइइँगलैण्ड नाम की रियासत है। यहाँ सबसे पहले यूरोप के निवासी आकर बसे थे। यहाँ की जलवायु कपास के लिए बहुत अच्छी है, इसलिए यहाँ कपास अधिक पैदा होती है। कपास की अधिक पैदावार होने के कारण इसे 'अमरीका का लंकाशायर' भी कहते हैं। कपास के अतिरिक्त लोहे का सामान, ऊनी कपड़े, जूते, बूट, तथा कागज बनाने के कारखाने हैं। संयुक्त राज्य का ३/४ सूती माल यही पैदा होता है। मैनचेस्टर तथा फालरिवर यहाँ के प्रसिद्ध शहर हैं। अमेरिका में बोस्टन नगर ऊनी माल के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ से ऊनी सामान, सूती कपड़े, चाकू, छुरे, तथा अन्य लोहे का सामान, चमड़े का सामान, मछली, कागज आदि विदेशों को भेजा जाता है। संयुक्त राज्य का आधा कागज यहाँ तैयार किया जाता है। यहाँ पहाड़, झीलें, झरने अधिक हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के लोग निम्नलिखित कार्य अधिक करते हैं—

यहाँ के अधिकांश लोग खान खोदने का कार्य अधिक करते हैं, जिससे लगभग २० अरब रुपये की आमदनी होती है। यहाँ कोयला, मिट्टी का तेल अधिक होता है। पिटसबर्ग के निकट तो कोयला बहुत मिलता है। मिट्टी का तेल ओहियो, कैलीफोर्निया में अधिक निकलता है। इसके अतिरिक्त लोहा, गैस, ताँबा, सोना, चाँदी, सीसा, जस्ता, आलमोनियम, गन्धक आदि अधिक निकलते हैं।

लकड़ी काटने का कार्य संयुक्त अमेरिका में बहुत होता है। यहाँ डगलस, फर, पीला देवदार आदि के वृक्ष बहुत होते हैं। गूदा और कागज बनाने का काम स्फ्रूस नामक लकड़ी के बुरादे से किया जाता है। जो न्यूयार्क के निकट पायी जाती है। लकड़ी की वार्निश, तारकोल आदि बनाने के लिये जौर्जियर बहुत प्रसिद्ध है। विश्व की सबसे बड़ी मण्डी यही है।

मिसीसिपी नदी की घाटी पैदावार के लिये अधिक प्रसिद्ध है। अकेले न्यूयार्क में लगभग २ लाख जानवर प्रतिवर्ष काटे जाते हैं।

संयुक्तराज्य में चमड़ा तो बहुत ही होता है। यहाँ के डीट्रोइट नामक शहर में मोटरकार बनाने का बड़ा कारखाना है। जिसमें लगभग १ लाख आदमी कार्य करते हैं, तथा प्रतिवर्ष ४० लाख मोटरें तैयार होती हैं। यहाँ की फोर्ड कम्पनी विश्वविख्यात है। न्यूयार्क तथा बाल्टीमोर में जहाज बनते हैं। यहाँ हालीवुड में सिनेमा फिल्म सबसे अधिक तैयार होती हैं। इन सबके अतिरिक्त, मछली मारने का काम, सूती कपड़े का काम, रेशमी कपड़े का काम, रबड़ का काम तथा लोहे का काम अमेरिका में अधिक होता है।

मैक्सिको—यहाँ पर बहुत कम लोग रहते हैं। यह एक पहाड़ी भाग है, यह अधिक उपजाऊ नहीं है। यहाँ का किनारा भी कटा फटा नहीं है तथा एक अच्छा बन्दरगाह भी नहीं है। यहाँ यातायात के साधन ठीक नहीं हैं तथा यहाँ के लोग सुस्त हैं। यह स्थान चाँदी के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध है। लगभग १२ करोड़ रुपये की चाँदी प्रतिवर्ष निकाली जाती है। इसके अतिरिक्त सोना, लोहा, गन्धक, ताँबा, पारा, सीसा, टीन, प्लैटीनम, जस्ता, पुखराज, तथा मिट्टी का तेल आदि खनिज पदार्थ भी निकलते हैं। यहाँ की राजधानी मैक्सिको है।

मध्य अमेरिका—मैक्सिको के नीचे के भाग में मध्य अमेरिका है। यह पनामा नहर तक गया है। यहा वर्षा अच्छी होती है। यहाँ पर घने जंगल हैं। यहाँ रबड़, केले, मक्का, कोको, गेहूँ आदि पैदा होते हैं। इसके नीचे पनामा नहर है। यह नहर ५० मील लम्बी, ४० फीट गहरी, तथा ५०० फीट चौड़ी है। इस नहर के बन जाने से व्यापार में बहुत वृद्धि हुई है।

इसके पश्चिम की ओर बहुत से द्वीप हैं। ये सब छोटे बड़े मिला कर १ हजार के लगभग हैं। यहाँ वर्षा अधिक होती है। यहाँ भयानक आँधियाँ आती हैं। भूचाल भी आते हैं। यहा की भूमि बहुत उपजाऊ है। यहाँ आब-नूस, माहोगनी, लौंगवुड, चन्दन, आदि के जंगल हैं। क्यूबा नामक टापू में खेती अच्छी होती है। यहाँ गन्ना तथा तम्बाकू अधिक पैदा होते हैं। इसके किनारे की ओर नारियल, केला आदि पैदा होते हैं। हैरी नामक टापू की जलवायु अच्छी है। यहाँ कहवा, कपास, तम्बाकू, कोको और लकड़ी आदि होती हैं। यहाँ एक बड़ा टापू जमायका कहलाता है, जिसमें काली नदी बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ की जलवायु अच्छी है। यहाँ नारियल, केला, नारंगी, नीबू, अनन्नास, अरारोट, जिंजर, गन्ना, कोको, तम्बाकू, कहवा, लकड़ी आदि अधिक पैदा होते हैं। और भी बहुत से टापू हैं।

अमेरिका विश्व का बहुत धनी देश है। यह देश खनिज पदार्थ तथा पैदा-वार के लिये बहुत बढ़ा-चढ़ा है।

दक्षिणी अमेरिका—इसकी शक्ल भी उत्तरी अमेरिका जैसी है। यहाँ की भूमि, पहाड़, नदी, सभी उत्तरी अमेरिका से भिन्न हैं। यहाँ का समुद्रीतट भी अधिक कटा-फटा नहीं है। इसीलिये अच्छे बन्दरगाह कम हैं। यहाँ एंडीज नामक एक पर्वत शृंखला है, जो बहुत ऊँची है। केवल आस्पलाटा नामक दर्रा ऐसा है, जहाँ रेल बनाई जा सकती है। इस पहाड़ की अधिकांश चोटियाँ ज्वालामुखी के मुँह के समान हैं। यहाँ पूर्व की ओर बहुत से पठार हैं। इनमें गायना और ब्राजील का पठार अधिक प्रसिद्ध है। यह पठार पुराने रेतीले पत्थर तथा चमकदार चट्टानों का बना है। यह पठार पहिले बहुत ऊँचा था किन्तु पानी, हवा से घिस-घिस कर बहुत नीचा हो गाया है। अब यह इतना नीचा हो गया है कि नदियों ने घाटिया बना ली हैं। इस पठार के नीचे पराना नामक नदी बहती है।

दक्षिणी अमेरिका के मध्य में घास के बड़े-बड़े मैदान हैं। जो उपजाऊ हैं। इस मैदान में ऊपर की तरफ औरीनिको नामक नदी बहती है। यहाँ वृक्ष कम

हैं। यहाँ मनुष्य नहीं रहते हैं, इसलिये व्यापार के काम की नहीं है। वैसे इसमें दूर-दूर तक नावें चल सकती हैं। इसके नीचे मिट्टी का बहुत बड़ा मैदान है।
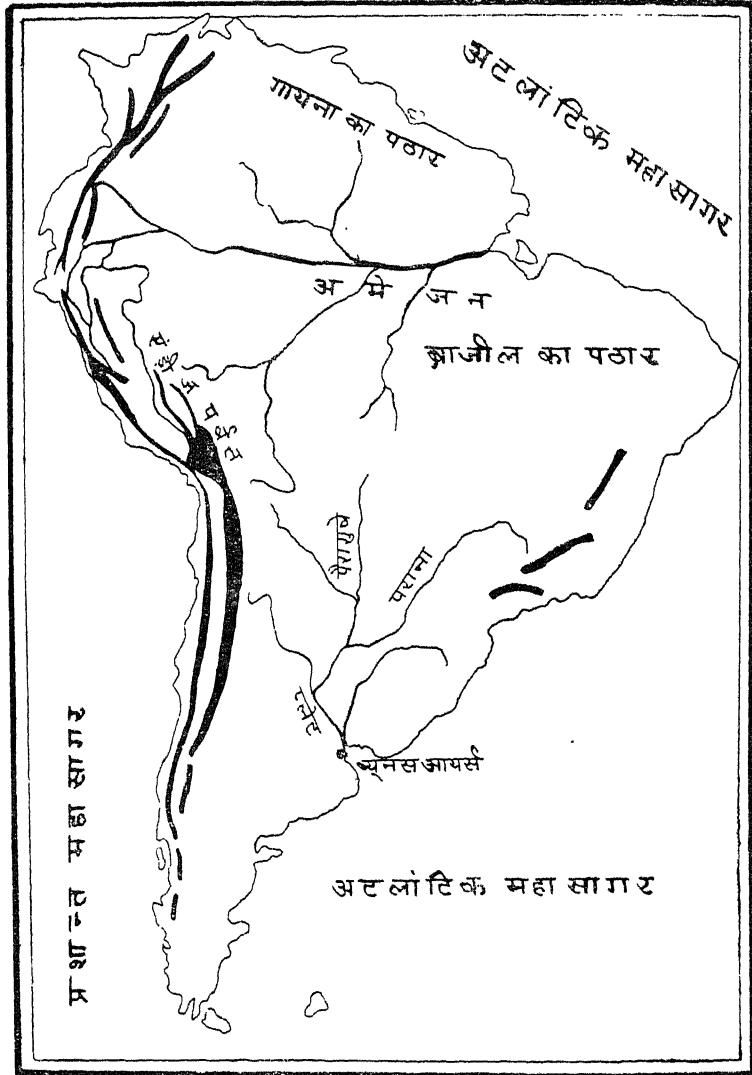
चित्र २४

इस मैदान में अमेजन नदी बहती है जो कि ३५०० मील लम्बी है। यह विश्व

की सबसे बड़ी नदी है। यह कहीं गहरी तथा कहीं अधिक चौड़ी है। अमेजन नदी ऐसे स्थान में बहती है जहाँ पूरे वर्ष गर्मी पड़ती है तथा पानी भी अधिक बरसता है। इसी कारण से पूरा इलाका घने जंगलों से आच्छादित है। इसमें इमारती लकड़ी, तथा रबड़ पैदा होती है। यह अमेजन नदी धीरे धीरे बहने के कारण जहाजों के चलने के काम आती है। नावें तो ५०० मील तक और चल सकती हैं, परन्तु यह व्यापारिक दृष्टि से मिसीसिपी नदी से अच्छी नहीं है। इसके चारों ओर घनी जनसंख्या भी नहीं है। बहुत अधिक गर्मी, अधिक वर्षा, घने जंगल, और रबड़ की उपज होने से इस नदी की तुलना अफ्रीका की कांगो नदी से की जा सकती है। इस मैदान के नीचे की ओर घास के बड़े मैदान हैं। इन मैदानों में पैरैना, पैरेग्वा, लाप्लाटा नदी बहती हैं। यहाँ गेहूँ अधिक पैदा होता है। इसके नीचे एक पहाड़ी तथा उपजाऊ मैदान है।

एन्डीज में कई पहाड़ मिले हैं तथा नदियों की घाटियाँ भी हैं। इन घाटियों में खेती होती है, तथा पहाड़ों पर जंगल हैं। यहाँ लगभग ८०″ वर्षा होती है। एन्डीज के बीच के भाग में जंगल तथा घास के चरागाह हैं। ये खनिज के लिये अधिक प्रसिद्ध हैं। एण्डील के नीचे के भाग में केला, कोको, रबड़ आदि के पेड़ हैं। उसके ऊपर बर्फ से ढका भाग है।

बीच के भाग में घास के मैदान हैं, जिनमें कहीं कहीं पेड़ भी पाये जाते हैं। यहाँ गन्ना तथा कोको पैदा होते हैं। यहाँ का मुख्य कार्य खेती करना तथा पशु पालना है। अमेजन के मैदान में बहुत अधिक गर्मी तथा वर्षा होती है। इसीलिये यहाँ घने जंगज हैं, जिनमें नाना प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं। ब्राजील तट वाले वृक्ष बहुत ऊँचे होते हैं। जिनमें १०० फीट तक तो डालियाँ ही नहीं निकलतीं। यहाँ रबड़ इकट्ठा करने का काम किया जाता है। बाँस, आबनूस तथा इमली आदि के पेड़ भी मिलते हैं। बीच-बीच में बेलों के फैलने से जंगल इतना घना हो गया है कि सूर्य की रोशनी पृथ्वी पर नहीं पड़ पाती है। अमेजन नदी के नीचे पम्पा नाम का प्रदेश है। जिसमें घास के मैदान बहुत अधिक हैं। यहाँ के लोगों की जीवन-चर्या घास पर ही आधारित है। पुरानी घास के जल जाने से यह पूरा भाग काला हो जाता है। जब अंकुर निकलते हैं, तब चारों ओर हरियाली दिखाई देती है। अब पूर्व की ओर गेहूँ की खेती की जाने लगी है। यहाँ चारों ओर घास के ऊपर भेड़ तथा अन्य पशु चरते दिखाई पड़ते हैं। यहां एक आदमी पर औसतन ५ पशु तथा १० भेड़ें होती हैं। पशु चराने वाले लोगों को यहाँ ग्वाको कहते हैं। यहाँ के लोगों का भोजन मांस आदि है।

ग्वाको लोग पशु चराने के बदले मांस ही लेते हैं। इस मांस को ये लोग या तो बर्फ की तहों में रखते हैं अथवा सुखाकर डिब्बों में भरकर विदेशों को भेजते है। मांस का सत निकालकर भी बाहर भेजा जाता है। किसी किसी कारखाने में तो प्रतिवर्ष लगभग २½ लाख पशु काटे जाते हैं। इन लोगों के घर बड़े-बड़े खेतों में होते हैं, उनके चारों ओर कुँआ और नाला होते हैं। यहाँ घोड़े अधिक होते हैं। प्रत्येक कार्य घोड़े पर चढ़कर किया जाता है।

पम्पा प्रदेश के नीचे की ओर पैटेगोनियाँ नामक रेगिस्तान है। इसमें, कंकड़, पत्थर तथा रेत अधिक है। इसके ऊपरी भाग में भेड़ों को चराने के लिये कुछ घास उग आती है। ऊन और माँस यहाँ से बाहर भेजा जाता है। ब्राजील के पठार में घास के मैदान हैं।

यहाँ के जंगलों में प्यूमा, तापिर, जग्वार, ऐन्टईजर तथा बन्दर आदि अधिक मिलते हैं। एन्टईजर चींटी खाता है। स्लात नामक जानवर हमेशा पेड़ पर ही लटका रहता है। यहाँ गोवा नामक एक भयानक, तथा बड़ा सांप पाया जाता है। तापिर नामक जानवर हाथी की भाँति का होता है। एन्डीज् पर्वत पर लामा नामक जानवर मिलता है। जो ऊनी वालों वाला बैल के समान होता है। बोझा ढोने के अतिरिक्त लामा से ऊन, दूध तथा चर्बी भी मिलती है। विकूना और ग्वाङ्को भी यहाँ अधिक पाये जाते हैं, जो ऊँट की तरह का होता है। यहां के ऊँचे भागों में चिचिला नामक हिरन पाया जाता है। पैटगो-नियों में रीछ नामक जानवर पाया जाता है, जो शुतुर्मुर्ग की भाँति का होता है। इनके अतिरिक्त यहाँ पालतू जानवर भी पाए जाते है, जिनमें घोड़े, गाय, बैल, भेड़, बकरी, अधिक पाये जाते हैं।

यहाँ इन्का नामक जाति के लोग रहते हैं। यहाँ कुछ स्पेन तथा पुर्तगाल के लोग भी आ गए हैं। अमेजन नदी के निकट कुछ जंगली आदमी भी रहते हैं। अब यहां अंग्रेज, फ्रान्सीसी, इटली निवासी तथा डच भी आ गए हैं। गायना नामक रियासत में तो हिन्दुस्तानी भी पहुँच गए हैं। पिली के बीच, लाप्लाटा के निकट, तथा ब्राजील के पूर्व में अधिक जनसंख्या बसी हुई है। इसी प्रकार अमेजन नदी के पास, आटाकामा नामक रेगिस्तान में तथा पोटे-गोनियाँ में बहुत कम लोग रहते हैं? जिनका औसत मील दो आदमी भी नहीं पड़ता है।

वेनीज्वेला—यह ऐक छोटा सा राज्य है। इसे छोटा वेनिस भी कहते हैं। इसके पश्चिम में ऊँचाई पर घने जंगल हैं जिनमें सिनकोना, सर्सापारिल, रबड़,

कहवा आदि के वृक्ष अधिक मिलते हैं। बीच का भाग मैदानी है, जिसमें गन्ना, मक्का, तम्बाकू, कहवा, कोको आदि पैदा होते हैं। कैकाओ की पैदावार विश्व में सबसे अधिक यहीं होती है। इसके पूर्वी भाग में पठार है, जिसमें केला, अनन्नास, नारियल आदि के फल किनारे की ओर होते हैं। यहाँ सोना, कोयला संगमरमर तथा मोती भी निकलते हैं।

कोलम्बिया—यह भी एक छोटा-सा राज्य है। इसके नीचे के भागों में गर्मी पड़ती है, तथा जलवायु ठीक नहीं है। इसके पठारी भाग की जलवायु अच्छी है। यहाँ कहवा, तम्बाकू, गेहूँ आदि पैदा होते हैं। सोना, चाँदी, ताँबा, कोयला, आसफाल्ट, नीलम आदि यहाँ के मुख्य खनिज हैं।

ईक्वेडर—ईक्वेडर एक छोटा-सा राज्य है। यहाँ पर ज्वालामुखी पर्वत अधिक हैं। कोटापैग्जी यहाँ का बहुत बड़ा ज्वालामुखी है। यहाँ रबड़, सिनकोना, कैकाओ अधिक पैदा होते हैं। कैकाओ यहाँ से फ्रान्स, स्पेन भेजा जाता है। यहाँ चाकलेट अधिक बनते हैं। सिनकोना की छाल, सारसापरीला, रबड़, कहवा, खाल, शक्कर आदि बाहर भेजे जाते हैं। क्वीटो यहाँ की राजधानी है। यहाँ विश्व में सबसे अधिक चाकलेट तथा कोको तैयार होता है।

पीरू—यह यहाँ का एक छोटा-सा राज्य है। इसके पूर्व की ओर घने जंगल हैं। बीच में पहाड़ी भाग है, जो प्यूना नामक पठार कहलाते हैं। इनमें एक टीटीकाका झील है। पठारों में चाँदी, ताँबा, सोना, कोयला आदि पाया जाता है। टीटीकाका के किनारे पूनो की चाँदी की खानें तो विश्व में विख्यात हैं। घाटियों में ईख, कपास, मक्का, अल्फाफा, अंगूर, जैतून बहुत होता है। यहाँ लामा तथा विकूना नामक जानवर पाये जाते हैं। जिनकी ऊन तथा मांस बहुमूल्य होता है। यहाँ मिट्टी का तेल तथा शोरा भी पाया जाता है। पूर्व की ओर कहवा, कैकाओ, कोका अधिक पैदा होता है। कोका की पत्तियों से कोकीन बनाई जाती है।

बोलीविया—यह एक छोटा-सा राज्य है। इस राज्य की सीमा का समुद्र से कहीं स्पर्श नहीं होता। यहाँ के पठारी भाग की जलवायु ठण्डी तथा स्वास्थ्यप्रद है। घाटियों में मक्का, गेहूँ, जौ, की खेती होती है। यहाँ सिनकोना की छाल तथा रबड़ मिलती है। चिंचिला नामक हिरन से नमदा मिलता है। पूर्वी ढालों की ओर सोना तथा दूसरी ओर चाँदी, ताँबा आदि निकलता है। यहाँ विश्व की टिन की पैदावार का $\frac{1}{3}$ भाग पैदा होता है। पोटोसी की चाँदी की खानें तो विश्व-विख्यात हैं। सुहागा, एन्टीमनी, विस्मथ,

चाँदी, सोना, टिन, ताँबा, रबड़, कोका, सिनकोना की छाल, चिंचिला की ऊन का निर्यात होता है।

चिली—दक्षिणी अमेरिका के धनी और अच्छे देशों में चिली का नाम प्रथम है। उचित जलवायु, उपज तथा धनी होने की दृष्टि से इसे "दक्षिणी अमेरिका का इंगलैण्ड" भी कह सकते हैं। चिली का ऊपरी भाग रेगिस्तानी है, जिसमें पानी भरी हवायें खाली निकल जाती हैं। यहाँ शोरे की खानें हैं जो खाद के काम आता है। शोरा का निर्यात विदेशों को किया जाता है। शोरे के अतिरिक्त ताँबा, सुहागा, चाँदी भी मिलती है।

चिली का मध्य भाग बहुत उपजाऊ तथा धनी है। यहाँ की जलवायु अच्छी है। यहाँ भूमध्यसागरीय जलवायु है। गेहूँ, जौ, अंगूर, जैतून, आलू, नाशपाती की पैदावार अधिक होती है। यहाँ अंगूरों से शराब बनाई जाती है। ढालों पर भेड़ें चराई जाती हैं, जिनकी ऊन, जमा हुआ माँस तथा चमड़ा यूरोप भेजा जाता है। यहाँ चाँदी, ताँबा, कोबाल्ट, कोयला अधिक मिलता है। सेन्टियागो यहाँ का प्रसिद्ध शहर तथा राजधानी है। इसके चारों ओर गेहूँ तथा अंगूर अधिक पैदा होते हैं।

चिली का नीचे का भाग अधिक उपजाऊ नहीं है। इसका समुद्री किनारा भी कटा-फटा नहीं है। यहाँ वर्षा बहुत होती है, जिसके कारण घने जंगल हैं। यहाँ के लोगों का काम लकड़ी काटना, मछली आदि मारना है। इसके नीचे पन्टाएरीनाज नामक शहर है। यह विश्व का सबसे नीचा शहर है। यहाँ से ऊन, चमड़ा, चर्बी, लोमड़ी की खाल, नमदा आदि विदेशों को निर्यात किया जाता है। यहाँ सील और ह्वेल नामक विशालकाय मछली पायी जाती हैं, जिनका शिकार किया जाता है।

अर्जेन्टाइना—यह दूसरे नम्बर का बड़ा राज्य है। इसे चार भागों में बाँटा जा सकता है। पहला है, चैको प्रदेश, यह भाग जंगलों से ढका है तथा शिकार खेलने के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ पशुओं को चराने के लिये अच्छे घास के मैदान हैं, इधर उधर खेती भी की जाने लगी है। दूसरा है एन्डीज पर्वत के नीचे का भाग, जो कि पूरा देश सूखा है। थोड़ी बहुत वर्षा होने से खेती होती है। यहाँ जानवर चराने तथा खान खोदने का काम अधिक होता है। यहाँ मेन्डोजा नामक शहर में, गेहूँ, मक्का, शक्कर तथा अंगूर अधिक उपजते हैं। टुकूमान नामक शहर में गन्ने और तम्बाकू की खेती अधिक होती है। इसका तीसरा भाग पम्पा प्रदेश है। यह बहुत नीचा, चौरस तथा उपजाऊ है।

यहाँ कम गर्मी तथा कम सर्दी पड़ती है। यहाँ गेहूँ अधिक पैदा होता है। यहाँ तक कि यह यूरोप के लिये "अनाज का खलिहान" कहलाता है। उत्तरी अमेरिका के प्रेरीज में जितनी पैदावार होती है, उतनी ही इस प्रदेश में होती है। यह विस्तार, भूमि की बनावट तथा वर्षा में प्रेरीज के समान है। गेहूँ के अतिरिक्त यहाँ मक्का, जई, जौ, तिलहन, तम्बाकू, अधिक पैदा होते हैं। इसी क्षेत्र का प्रसिद्ध शहर ब्यूनिसआयर्स है, जो दक्षिणी अमेरिका में सबसे बड़ा है। यही अर्जेन्टाइना की राजधानी है। यह लाप्लाटा नदी के तट पर स्थित है। यह एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ यातायात के साधन अच्छे हैं। यहाँ से गेहूँ, ऊन, मक्का, अलसी, खाल, माँस, चरबी आदि बाहर भेजी जाती हैं। अर्जेन्टाइना का चौथा भाग पैटेगोनियाँ का पठार है। यह बिलकुल सूखा पठार है। यहाँ भेड़ें सबसे अधिक पाली जाती हैं। यहाँ के एक आदमी पर औसतन ४०० भेड़ें हैं। यहाँ विकूना तथा ग्वाको नामक जानवर पाले जाते हैं।

परेग्वा—यह ऊपर की ओर छोटा-सा राज्य है। सारा राज्य जंगलों से आच्छादित है। इसमें कहीं-कहीं घास के मैदान हैं, जिनमें खेती भी होती है। रबड़, लकड़ी, ईख, कहवा, मक्का यहाँ पैदा होती है। यहाँ चाय अधिक पैदा होती है। पूरे अमेरिका की चाय यहीं पैदा होती है। चाय के अतिरिक्त नारंगी, खाल, सूखा माँस, माँस का सत, तम्बाकू आदि का विदेशों को निर्यात होता है। एसेंशन नामक शहर यहाँ की राजधानी है। विलारिका नामक शहर तम्बाकू के लिये प्रसिद्ध है।

यूरूग्वे—पम्पा प्रदेश और समुद्र के बीच में यूरूग्वे नामक राज्य है। जो बहुत ऊबड़-खाबड़ है, और जंगलों से आच्छादित है। यहाँ की जलवायु बहुत अच्छी है। अंगूर, मक्का, गेहूँ, तम्बाकू यहाँ की मुख्य पैदावार है। यहाँ के घास के मैदान बहुत प्रसिद्ध हैं। इन मैदानों में अर्जेन्टाइना से अधिक पशु पाले जाते हैं। यहाँ का माँस और चमड़ा अच्छा होता है। जानवरों को पालना, उन्हें मारना, माँस का सत निकालना तथा उन्हें बाहर भेजना आदि यहाँ के मुख्य काम हैं। लगभग १५ करोड़ रुपये का माँस, माँस का सत, चमड़ा, ऊन आदि विदेशों को भेजा जाता है। मान्टीविडियो यहाँ का मुख्य शहर तथा राजधानी है। यहाँ सैकड़ों कसाईखाने तथा माँस के कारखाने हैं। पेसन्डू और फ्रेवैन्टौस यहाँ के मुख्य शहर हैं। ये माँस का सत निकालने के लिये प्रसिद्ध हैं। यहाँ से माँस डिब्बों में बन्द कर बाहर भेजा जाता है।

ब्राजील—यह दक्षिणी अमेरिका का सबसे बड़ा राज्य है। जो आधे दक्षिणी अमेरिका को घेरे हुए है। उत्तर की ओर यहाँ घास के मैदान तथा पेड़ है। नीचे के पठार में जंगल है। यहाँ कहवा अधिक होता है। ढाल पर घास के मैदान हैं, तथा जंगल हैं। यह अपनी पैदावार के लिये विश्व-विख्यात है। यहाँ मक्का, चावल, ईख, तम्बाकू, कपास, कहवा आदि पैदा होते हैं। यहाँ के जंगलों में रबड़ के वृक्ष अधिक हैं। इसके अतिरिक्त साबूदाना, सिनकोना, फल तथा जड़ी बूटियों के पेड़ पाये जाते हैं। खानों से हीरा, सोना, पारा, ताँबा, लोहा आदि मिलता है। यहाँ लगभग ८० लाख रुपये का सोना प्रतिवर्ष निकाला जाता है। मैंगनीज तथा मौनेजाइट आदि भी निकलता है, जो कि विद्युत के कारखानों में प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त जानवरों से माँस, खाल, ऊन आदि भी मिलती है। रायोडोजैनरो यहाँ का प्रसिद्ध शहर है। यह बहुत बड़ा प्राकृतिक बन्दरगाह है। यहाँ का बन्दरगाह १६ मील चौड़ा है। यहाँ से कहरा, कोको, सोना, हीरे, कपास आदि बाहर भेजे जाते हैं। यहाँ कपास, जूट, ऊन, रेशम, तम्बाकू आदि के कारखाने हैं। इसके उत्तर में बाहिया नामक बहुत बड़ा बन्दरगाह है। यह ब्राजील का दूसरे नम्बर का शहर है। यहाँ कपास और तम्बाकू के कारखाने हैं। हीरे, खाल, तम्बाकू, कपास, सोना आदि का विदेशों को निर्यात किया जाता है।

आस्ट्रेलिया—यह विश्व का सबसे छोटा महाद्वीप है। यह चारों ओर पानी से घिरा हुआ है। पानी से घिरे हुए टापुओं में यह सबसे बड़ा है। टौरस नामक स्पेन के यात्री ने इसकी खोज की थी। आस्ट्रेलिया को अब भी उसके नाम पर 'टौरिस स्ट्रेट' कहते हैं। आस्ट्रेलिया की खोज का श्रेय कुक नामक यात्री को मिला। इसका समुद्री किनारा कटाफटा नहीं है। यहाँ की भूमि चौरस है। यहाँ की नदियों में पानी नहीं रहता है। पूरा महाद्वीप लगभग सूखा ही रहता है। गर्मियों के दिनों में तो बिलकुल ही सूख जाता है। यहाँ मरे और डार्लिंग दो बड़ी नदियाँ हैं। यहाँ के अधिकांश लोग नीचे के भाग में पूर्वी किनारे पर रहते हैं। पश्चिमी भाग तो पठारी और रेगिस्तानी है। यहाँ आबादी भी कम है।

ऊपर की ओर बहुत वर्षा होती है, इसीलिये यहाँ बहुत घने जंगल हैं, जिनमें सदैव हरे-भरे रहने वाले वृक्ष जैसे यूकेलिप्टस् आदि पाये जाते हैं। पश्चिमी भाग में जर्रा नामक लकड़ी होती है। यह लकड़ी बहुत कीमती होती है। यह लकड़ी, घाट, पुल, नाव तथा रेलगाड़ी आदि बनाने के काम आती है। यह लकड़ी बहुत सख्त तथा टिकाऊ होती है। इस लकड़ी का

कोयला भी अच्छा बनता है। यहाँ गोंद तथा पिपरमेन्ट आदि के पेड़ पाये जाते हैं। जिनकी लकड़ी बहुत सख्त तथा टिकाऊ होती है। इनमें से सत और तेल निकाला जाता है। यहां एक करीं नामक पेड़, बड़ा डील-डौल वाला, चिकना, सफेद तथा मजबूत और बिना टहनियों का होता है। इसकी लकड़ी बड़े काम की होती है। ऊपरी किनारे तथा रेगिस्तान के बीच घास के मैदान पाये जाते हैं। रेगिस्तान में, काँटेदार झाड़ियाँ, मलगा, माली, रामबाँस, स्पिनी, फेक्स और छोटी-छोटी झाड़ियाँ, जो कटीली तथा सख्त होती हैं, पायी जाती हैं।

नीचे के भाग में ओक, शहतूत, अंगूर, जैतून के पेड़ हैं। अन्य फसलों के लिए भी यह भाग बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ गेहूँ, जौ, मक्का, तम्बाकू आदि अधिक पैदा होते हैं। यहाँ के विक्टोरिया में गेहूँ तथा अंगूर सबसे अधिक पैदा होते हैं। टस्मानियाँ में न अधिक गर्मी पड़ती है न अधिक सर्दी। यहाँ ह्वानपाई नामक देवदार की लकड़ी मिलती है। इस लकड़ी से जहाज बनाये जाते हैं। यहाँ के पेड़ों की जड़ें गहरी तथा उनकी पत्तियाँ चमड़े की भाँति मोटी होती हैं, जिन पर धूप तथा पानी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसलिये यूकेलिप्टस नामक पेड़ की लकड़ी जहाज बनाने तथा जहाजों के अतिरिक्त रेलों के सिलीपर बनाने के काम आती है। यहाँ के पेड़ों में अन्य पेड़ों की अपेक्षा तेल की मात्रा अधिक होती है। इस लकड़ी को दीमक नहीं लगती। यहाँ जर्रा तथा करीं नामक पेड़ अधिक पाये जाते हैं।

यहाँ वलभी और कंगारू नामक जानवर पाये जाते हैं। इनके पेट में थैली होती है। जिसमें भागते समय ये अपने बच्चों को बिठा लेते हैं। कंगारू के आगे के पैर छोटे तथा पीछे के पैर बड़े और मजबूत होते हैं, जिससे यह छलाँग मार सकता है। यहाँ नाना प्रकार के पशु-पक्षी पाये जाते हैं, जैसे प्लेटीपस नामक जानवर के जालीदार पंजे होते हैं। इनके गालों में थैली होती है। कुछ जानवर ऐसे होते हैं जो अण्डे देते हैं और बच्चों को दूध पिलाते हैं। कुछ जानवर उड़ भी सकते हैं जैसे, उड़ने वाली गिलहरी तथा औयोसम आदि। इनकी खाल बहुत कीमती होती है। यहाँ डिंगो नामक खूँख्वार जानवर पाया जाता है, जो भेड़िया तथा कुत्ते जैसा होता है। यहाँ की कुछ चिड़ियाएँ पंख रखती हैं परन्तु उड़ नहीं सकतीं, जैसे ऐमू तथा केसोवरी आदि। इनके पंख छोटे होते हैं, किन्तु बड़े कीमती होते हैं, यहाँ ऐसी भी चिड़ियाएँ पाई जाती हैं जिनके पंख होते हुए भी उड़ नहीं सकतीं तथा ऐसी भी

होती हैं जो बिना पंखों के उड़ सकती हैं, जैसे ओपोसम या उड़ने वाली लोमड़ी। कुछ पक्षियों की पूँछ सितार की तरह होती है, जिसमें लम्बे-लम्बे और कीमती पंख होते हैं, जैसे लायर चिड़िया। यहाँ दो-दो गज लम्बी छिपकलियाँ तथा बड़े-बड़े साँप पाये जाते हैं। यहाँ अनेकों प्रकार की मछलियाँ पायी जाती हैं, जिसमें किसी के गलफड़ा नहीं होता और फेफड़े होते हैं। कुछ तैरती नहीं, कुछ कूदती हैं। कुछ पानी में रहती हैं, परन्तु घास खाती हैं।

यहाँ के पालतू जानवर बहुत प्रसिद्ध हैं। सबसे पहले जब अँग्रेज लोग यहाँ बसने को आये थे तो २९ भेड़ें और १३ गाय-बैल तथा ११ घोड़े अपने साथ लाये थे। इसके चार साल बाद १०५ भेड़ें हो गईं। अब यहाँ लगभग १५ करोड़ से भी अधिक भेड़ें हो गई हैं। यहाँ की भेड़ों की नस्ल बहुत अच्छी है। ये हृष्ट-पुष्ट होती हैं।

भेड़ों की ऊन के लिए यह देश बहुत प्रसिद्ध है। भेड़ों के अतिरिक्त यहाँ गायें भी पाली जाती हैं। जिनकी नस्ल बहुत अच्छी होती है। यहाँ की गायों को पालने में खर्च कम होता है, तथा वे दूध अधिक देती हैं। यहाँ की एक गाय दो आदमियों का पालन कर सकती है। ये इतना दूध देती हैं कि उनका दूध मशीनों द्वारा निकाला जाता है। दूध से मक्खन तथा पनीर भी तैयार किया जाता है।

यहाँ अंग्रेज लोग अधिक रहते हैं। यहाँ के वास्तविक रहने वाले बहुत कम हैं। ये लोग लम्बे और गठीले होते हैं। उसके बाल घुंघराले तथा काले रंग के होते हैं। इन्दर के दाँत सुन्दर, नाक चौड़ी, आँखें चमकीली, तथा गालों की हड्डियाँ उठी हुई होती हैं। ये लोग शिकार से ही अपना पेट भरते हैं। साँप, छिपकली, गुबरीले, चूहे और भी दूसरे जानवरों को वे दाँतों से चबा जाते हैं। ये इतने खूँख्वार होते हैं कि आदमी को मार कर खा जाते हैं। ये लोग कपड़े कम पहिनते हैं तथा शरीर में बदबूदार मछली का तेल मल लेते हैं। ये लोग शिकार खेलने तथा मछली मारने में बड़े चतुर होते हैं। इनके पास एक ऐसा हथियार होता है जो शिकार में मारने के बाद फिर वापिस आ जाता है। इसे बूमिरैंग कहते हैं। ये लोग अंग्रेजों को देवता मानकर, इनका बड़ा आदर करते हैं। अब इनके वंश बहुत कम पाये जाते हैं।

आस्ट्रेलिया की जनसंख्या कम है। पूर्वीतट तथा विक्टोरिया की आबादी

तो घनी है, क्योंकि यहाँ की जलवायु, आने-जाने के साधन तथा भूमि अच्छी हैं। यहाँ खनिज पदार्थ अधिक निकलते हैं। यहाँ सबसे पहिले सोने का पता बाथरस्ट के निकट हारग्रीव नामक व्यक्ति को लगा। इसके बाद बहुत सी खानों का पता चल गया। इन खानों मे लगभग १२ अरब रुपये का सोना निकल चुका है। चाँदी और सीसा पास-पास पाये जाते हैं। न्यूसाउथवेल्स में ब्रोकन हिल तो विश्व की बड़ी खानों में से है। यहीं जस्ता भी निकलता है। इनके अतिरिक्त ताँबा, टीन, लोहा, कोयला, भी बहुत पाया जाता है।

खेती की पैदावार में गेहूँ मुख्य है। न्यूसाउथवेल्स का पूर्वी किनारा तथा विक्टोरिया में इसकी अच्छी पैदा होती है। यहाँ वर्षा गेहूँ के लिये ठीक होती है। यहाँ की आबादी बहुत कम होने के कारण यहाँ का गेहूँ भारत तथा अन्य देशों को भेज दिया जाता है। गेहूँ के अतिरिक्त जौ, जई भी विक्टोरिया में पैदा होता है।

आस्ट्रेलिया में फल भी अधिक होते हैं। विक्टोरिया तथा तस्मानियाँ में तो फल बहुत अधिक होते हैं। लगभग १$\frac{1}{2}$ करोड़ रुपये के सेव प्रतिवर्ष विदेशों को भेजे जाते हैं। सेव के अतिरिक्त नासपाती, पीच, अंगूर, नारंगी, किशमिश, आदि अधिक पैदा होते हैं। क्वीन्सलैन्ड में केले अधिक होते हैं।

जानवर पालने का काम यहाँ अधिक होता है। विश्व की ऊन का $\frac{1}{2}$ भाग होता है। यहाँ की भेड़ों की ऊन, मुलायम, चमकीली, तथा रेशम जैसी होती है। आस्ट्रेलिया में भेड़ों को चराने वाले लोग और लोगों से अधिक धनी होते हैं। ये लोग स्कवेटर कहलाते हैं। इनका जीवन बड़ा निराला होता है। धनवान स्कवेटर तो कई कई हजार भेड़ों के स्वामी होते हैं। इनके घास के मैदान बहुत लम्बे चौड़े तथा मीलों तक फैले हुए होते हैं। इनके बाड़े लगभग ४०-५० मील की दूरी पर होते हैं। बीच में एक लकड़ी का एक मंजिल का मकान होता है। अब विक्टोरिया आदि में बड़े-बड़े मकान बनने लगे हैं। मकानों में विद्युत तथा टेलीफोन आदि भी प्रयोग होते हैं। इन मकानों के पास काम सीखने वाले जवान आदमियों की रहने की जगह होती है। इनका जीवन बहुत कठिनाइयों से भरा होता है। ये लोग मेहनती होते हैं। धूल, चर्बी, तेल, तारकोल के बीच में ये अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इनका कार्य, भेड़ों को पकड़ना, उनका इलाज करना, ऊन काटना, दिन भर उनकी निगरानी रखना, कमजोर भेड़ों की सेवा का कार्य तथा उन्हें एक दृष्टि में गिनना आदि इनके कार्य होते हैं। इन कामों में ये बड़े चतुर होते हैं। ये

लोग घोड़े पर चढ़ कर भेड़ों की देखरेख करते हैं। भेड़ों की ऊन काटने, तथा उसे इकट्ठा करने के लिए कुछ आदमी एक घास के मैदान से दूसरे में घूमते रहते हैं। जो हर स्थान से बाहर के देशों के लिये ऊन एकत्रित करते हैं। इस पेशे में सबसे बड़ा भय बाढ़ तथा अकाल का होता है। कभी कभी तो बिना पानी के हजारों भेड़ें मर जाती हैं। इस समस्या को हल करने के लिये बहुत से कुए खुदवाये गये हैं तथा बाँधों में पानी एकत्रित कर लिया जाता है, जो साल भर तक काम देता रहता है। ऊन के अतिरिक्त भेड़ों से चर्बी, माँस, खाल और उनके दूध से मक्खन पनीर बनाने का काम होता है।

भेड़ों के अतिरिक्त अन्य पशु भी पाले जाते हैं, जिनसे माँस, चमड़ा, खाल, दूध, मक्खन आदि मिलता है। पशुओं की दृष्टि से विक्टोरिया और न्यूमाउथवैल्स बहुत प्रसिद्ध हैं। न्यूसाउथवैल्स में घोड़े भी पाले जाते हैं, जिनका विदेशों को निर्यात किया जाता है। यहाँ सूअर भी पाले जाते हैं, जिनका माँस बाहर भेजा जाता है।

आस्ट्रेलिया के चारों तरफ समुद्र होने के कारण मोती निकाले जाते हैं। जैसे ऊपरी भाग में यार्क अन्तरीप के निकट, शर्क खाड़ी में आदि। मछली मारने का काम टस्मानियाँ और आस्ट्रेलिया के बीच में केवल बासस्ट्रेट में होता है। नदियों में भी यत्र-तत्र कुछ मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

आस्ट्रेलिया की रियासतें इस प्रकार बंटी हुई हैं—

आस्ट्रेलिया का पश्चिमी भाग बहुत बड़ा है, किन्तु यहाँ बहुत कम मनुष्य रहते हैं, क्योकि यहाँ का कुछ भाग रेगिस्तानी है तथा कुछ पठारी। ऊपरी भाग में घास पैदा होती है, जिसमें भेड़ें चराई जाती हैं। यहाँ से भेड़ का माँस तथा लकड़ी का निर्यात होता है। यहाँ कोई प्रसिद्ध शहर नही है। इसके मध्य में रेगिस्तान फैला हुआ है। सोने की खानों के अतिरिक्त यहाँ और कोई अच्छी वस्तु पैदा नहीं होती। यहाँ······ और कालगुर्ली नामक दो प्रसिद्ध सोने की खानें हैं। इस, सोने निकलने के कारण यहाँ शहर बस गये थे; किन्तु अब कम सोना निकलने के कारण दूसरी जगह जा रहे हैं। नीचे के भाग में जर्रा और कर्रा नामक पेड़ पाये जाते हैं। यहाँ कुछ फल भी होते है तथा जानवर पालने के लिये अच्छी जगह है। नीचे की ओर अलवनी नामक बन्दरगाह है। यहाँ से फल, लकड़ी, सोना, गेहूँ आदि बाहर भेजे जाते हैं। यहाँ का प्रसिद्ध शहर पर्थ है, जो यहाँ की राजधानी है। इसके निकट

गेहूँ पैदा करने वाले देश हैं। इस भाग में खेती अधिक होती है। यॉर्क नामक शहर के चारों ओर इतना गेहूँ पैदा होता है, कि उसका विदेशों को निर्यात किया जाता है। गेहूँ के क्षेत्र के ऊपर की ओर घास के मैदान हैं। यहाँ साल भर में लगभग १०" वर्षा होती है। यहाँ कुछ भेड़ें चराई जाती हैं जिनकी ऊन का विदेशों को निर्यात होता है।

दक्षिणी आस्ट्रेलिया में मरे नामक नदी बहती है। इस नदी पर ६ बाँध बनाये गये हैं, जो बाढ़ से बचाते हैं, तथा सिंचाई के प्रयोग में आते हैं। इस नदी के आस-पास अंगूर, नारंगी, आदि फल होते हैं। यहाँ गेहूँ की खेती अधिक होती है। इसके नीचे का भाग पठार है, जिसमें देवदार तथा लाल गोंद के पेड़ मिलते हैं। अंगूर अधिक पैदा होने के कारण यहाँ अंगूरी शराब बनाई जाती है। दक्षिणी आस्ट्रेलिया में रिफ्ट घाटी गेहूँ के लिये अधिक प्रसिद्ध है। गेहूँ की पैदावार के अतिरिक्त यहाँ भेड़ें भी चराई जाती हैं। यहाँ का प्रसिद्ध शहर ऐडीलेड है, जो यहाँ की राजधानी है। इस शहर के आस-पास ताँबे की खानें हैं। यहाँ से ताँबा, चाँदी, गेहूँ, फल, अंगूरी शराब, बाहर भेजी जाती है। पोर्टपीरी यहाँ का प्रसिद्ध बन्दरगाह है, जिससे , चाँदी, सीसा, जस्ता, गेहूँ, ऊन, बाहर भेजे जाते हैं। दक्षिणी आस्ट्रेलिया में आयर नामक झील है। जिसकी जमीन बहुत नीची है। इस भूमि का पानी बह कर झील में हो आता है। यहाँ पर पाताल तोड़ कुँए हैं। यहाँ भेड़ें अधिक चराई जाती हैं। इसके पश्चिम में एक पठार है, जो बिल्कुल सूखा रेगिस्तान है। यहाँ कटीली झाड़ियों के अतिरिक्त कुछ भी पैदा नहीं होता। यहाँ पर प्रसिद्ध लोहे की खान है। दक्षिणी आस्ट्रेलिया के ऊपरी भाग में वर्षा नहीं होती है। बिल्कुल सूखा रेगिस्तान है। जहाँ-तहाँ कुछ घास होती है, वहाँ पशु चराये जाते हैं। यहाँ का प्रसिद्ध शहर डरविन है, जो यहाँ का अच्छा बन्दरगाह है।

क्वीन्सलैंण्ड—इसके पूर्व में 'ग्रेट बेरियर रीफ' नामक एक बहुत बड़ी मूँगे की दीवार है। किनारे की ओर ईख, चावल, केला, शरीफा, कहवा, मक्का आदि पैदा की जाती है। यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है। यहाँ काम करने के लिये चीन से मजदूर आते हैं। खेती करना यहाँ का मुख्य कार्य है। यहाँ का प्रसिद्ध शहर ब्रिसबेन है। यह यहाँ की राजधानी है तथा एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ और भी बन्दरगाह हैं, जिनसे सोना, ताँबा, शक्कर, माँस, ऊन, चर्बी आदि बाहर भेजी जाती हैं। इसके पश्चिम में पठार है, जहाँ चीड़, देवदार के

जंगल हैं। इन्हीं में सोना, ताँबा, टीन, कोयला आदि खनिज मिलते हैं। इसी ओर घास के मैदान हैं, जिनमें पाताल तोड़ कुएँ हैं। यहाँ भेड़ें चराई जाती हैं, जिनका चमड़ा तथा माँस बाहर भेजा जाता है।

न्यू साउथ वेल्स—आस्ट्रेलिया का सबसे प्राचीन सरसब्ज स्थान यही था, और अब भी यहाँ की जनसंख्या सबसे अधिक है। यहाँ सबसे अधिक भेड़ें पाली जाती हैं तथा यहीं कोयले की खानें सबसे अधिक हैं, इसी कारण यहाँ सबसे अधिक व्यापार होता है। इसके पूर्वी किनारे पर, खेती करने, कोयले की खान खोदने तथा पशु पालने का कार्य होता है। यहाँ ईख, केला, मकई, तम्बाकू, नारंगी तथा गेहूँ अधिक पैदा होता है। इसके मध्य भाग में सिडनी नामक शहर बसा हुआ है, जो यहाँ की राजधानी है। यह आस्ट्रेलिया का सबसे बड़ा शहर है। यह इतना अधिक सुन्दर है कि 'दक्षिण की रानी' कहलाता है। यहाँ से कोयला, फल, सोना, चाँदी, लकड़ी, घोड़े, गेहूँ, ऊन, चमड़ा आदि बाहर भेजे जाते हैं। सिडनी के ऊपर न्यूकैसिल नामक शहर बसा हुआ है। यहाँ कोयला अधिक मिलता है तथा लोहे के भी कारखाने हैं। पठारी भाग में लकड़ी काटने, कोयला तथा सोना खोदने का काम होता है। यहीं पर हन्टर नामक घाटी है, जो कोयले की खानों के लिये अधिक प्रसिद्ध है। इसके पश्चिमी भाग ढालू हैं, जिसमें भेड़ें अधिक पाली जाती हैं। यहाँ से ऊन, माँस बाहर भेजा जाता है। यहाँ गेहूँ की पैदावार बढ़ाई जा रही है। यहाँ ताँबा, चाँदी, सीसा आदि खनिज निकलते हैं। ये सभी पदार्थ पीरी नामक बन्दरगाह द्वारा बाहर भेजे जाते हैं।

विक्टोरिया—यह एक छोटी-सी रियासत है। किन्तु यहाँ की जनसंख्या बहुत घनी है। यह रियासत पैदावार की दृष्टि से बहुत धनी है। इसके ऊपरी भाग में मरे नदी बहती है। इस भाग में गेहूँ की पैदावार अधिक होती है। मिलडूरा में फल बहुत अधिक पैदा होते हैं। यहाँ भेड़ें भी पाली जाती हैं। मरे नदी पर बाँध बन जाने से भेड़ों को पानी पिलाने की समस्या दूर हो गई है। इसके विमरा नामक भाग में काँटेदार माली नाम की झाड़ियाँ बहुत पायी जाती हैं। विक्टोरिया के मध्य भाग में पठार है। यह बहुत दूर तक फैला हुआ है। इसे आस्ट्रेलियन आल्पस कहते हैं। इसके बीच में किलमोर नामक दर्रा है। यहाँ भेड़ चराने का काम किया जाता है। विश्व की सबसे अच्छी मेरीनो ऊन यहाँ पर होती है। बेन्डिगो और बालाराट में प्रसिद्ध सोने की खानें हैं। ढालों के ऊपर अंगूर अधिक होते हैं। पहाड़ी शृंखला के नीचे

विक्टोरिया घाटी फैली हुई है। इसके मध्य में फिलिप की खाड़ी है, जो इसे दो भागों में विभाजित कर देती है। पूर्व की ओर भेड़ें तथा अन्य पशु-पालन होता है और पश्चिमी भाग में कीमती लकड़ी के घने जंगल हैं। इस घाटी की भूमि बहुत उपजाऊ है। यहाँ का सबसे प्रमुख शहर मेलबोर्न है। यह विक्टोरिया की राजधानी है। इस शहर को गोरे मल्लाहों (अंग्रेजों) ने दो कम्बल और एक बोतल शराब देकर खरीदा था, तथा पारा नदी की नीव डाली थी। इसके सौ साल पश्चात एक त्यौहार मनाया गया जिसमें, विश्व-विख्यात "लन्दन मेलबोर्न हवाई दौड़" प्रारम्भ हुई थी। फिलिप खाड़ी के निकट बसा होने के कारण यह एक गहरा तथा प्राकृतिक बन्दरगाह है। विक्टोरिया घाटी के बीच में होने से यहाँ दोनों ओर की पैदावार एकत्रित कर बाहर भेजी जाती है। यहाँ की जलवायु बहुत अच्छी है। यहाँ चारों ओर से रेलें आकर मिलती हैं। विक्टोरिया में खेती अच्छी होती है, खानें खोदी जाती हैं तथा अच्छे चारागाह भी हैं और यहाँ फल भी अधिक पैदा होते हैं। यहाँ से ऊन, जानवर, चमड़ा, माँस, मक्खन, फल, कपड़ा विदेशों को निर्यात होता है। जीलोग भी विक्टोरिया का एक अच्छा बन्दरगाह है। यहाँ ऊन के कई कारखाने हैं। विक्टोरिया के निचले भाग में पहाड़ियाँ हैं, जिन पर जंगल खड़े हुए हैं। कहीं कही मक्खन बनाने के कारखाने हैं। यहाँ भेड़ें तथा अन्य पशु पाले जाते हैं।

टस्मानियाँ—यह राज्य आस्ट्रेलिया से १५० मील दूर बसा हुआ है। यह एक पहाड़ी प्रदेश है, जिसमें सोना, चाँदी, टीन, ताँबा, सीसा, कोयला आदि खनिज पदार्थ भरे पड़े हैं। इसीलिये यह 'आस्ट्रेलिया का खजाना' कहा जाता है। यहाँ सेव, नासपाती, अंगूर आदि अधिक पैदा होते है। यहाँ की घाटियों में आलू, गेहूँ की पैदावार अधिक होती है। यहाँ भेड़ भी चराई जाती हैं। यहाँ का प्रसिद्ध शहर हॉबार्ट है, जो इस द्वीप की राजधानी है। यह एक खाड़ी के किनारे पर बसा हुआ है, इसलिये एक प्राकृतिक बन्दरगाह भी है। इस शहर के निकटतम क्षेत्र में फलों की पैदावार बढ़ाई जा रही है, इसीलिये यहाँ लोहा ढालने, आटा पीसने, मक्खन बनाने तथा मुरब्बा आदि बनाने के कारखाने खुल गये हैं। यहाँ कारखानों में जल-विद्युत प्रयोग की जाती है।

आस्ट्रेलिया से लगभग १$\frac{1}{2}$ अरब रुपये का सामान जैसे—ऊन, गेहूँ, सोना, मक्खन, माँस, चमड़ा, आटा, आदि प्रतिवर्ष विदेशों को भेजा जाता है। यहाँ

लगभग ८० करोड़ रुपये का सामान जैसे—ऊनी तथा सूती कपड़े, मशीनरी, मोटरकार, कागज, दवाइयाँ, रबड़, मिट्टी का तेल, चाय, तम्बाकू, आदि विदेशो से प्रतिवर्ष मँगाया जाता है। आस्ट्रेलिया मे उपरोक्त वस्तुओ के कारखाने बहुत कम है।

आस्ट्रेलिया से दुगना एक अन्टार्कटिका नामक महाद्वीप है। यह महाद्वीप सदैव बर्फ से ढका रहता है। यह भाग बिल्कुल उजाड़ है। यहाँ एक चिड़िया के अतिरिक्त और कोई नही रहता। इस चिड़िया को पैनगुइन चिड़िया कहते है। ये चिड़ियाएं यूथ बनाकर रहती हैं। इनके पंख बहुत छोटे होते हैं। आकार बड़ा होता है।[1] ऊँचाई ४ फुट तक होती है।
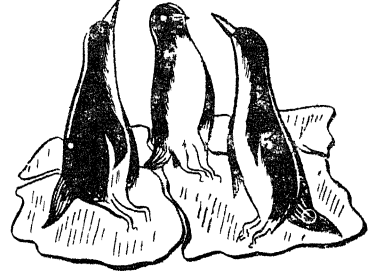
चित्र २५—**पैनगुइन चिड़िया**

न्यूजीलैण्ड—यह एक टापुओ का समूह है, जिसमें दो बडे-बड़े टापू है, तथा अन्य सब छोटे है। टस्मान नामक डच-निवासी ने इसका पता लगाया था, तत्पश्चात कुक भी यहाँ आया था। अब इस पर अंग्रेजों का राज्य है। इसमें यहाँ के वास्तविक निवासी बहुत कम रहते है। ये लोग, बडे बहादुर तथा चतुर होते हैं। यह टापू ग्रेट ब्रिटेन के सामान है। यहाँ ग्रेट ब्रिटेन के समान पैदावार, जलवायु तथा खनिज आदि मिलते है, इसलिये इसे दक्षिण का ग्रेट ब्रिटेन कहा जाता है।

इसका अधिकाश भाग पहाड़ों से घिरा हुआ है। इसके पूर्वी भाग मे केन्टरबरी का मैदान है, जोकि बहुत चौरस और उपजाऊ है। यहां के अधिकाश

---

१. **पैनगुइन चिड़िया का अभी विशेष अध्ययन किया गया था। इसमें यूथ बनाकर रहने को ही आदत नहीं है, और भी अनेक विशेषताएं होती है। इनमें चोरी करना लज्जाजनक माना जाता है। यह अपने बच्चों को पालना अच्छा समझती हैं, परन्तु, वैसे समूह में भी बच्चों का पालन करती है। यह पक्षी बहुत शांति-प्रिय होता है और मनुष्यों की भाँति सलाम भी करता है। दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में इस पक्षी में इतनी कौतूहल-प्रियता पायी गयी कि यह दल बनाकर एक जहाज देखने आये और अंदर घुसकर देख-दाख कर लौट गये। यह सामाजिक प्राणी है।**

पहाड़ ज्वालामुखी हैं। इसके १/५ भाग में जंगल हैं, जिनसे अच्छी लकड़ी मिलती है। बीच, बर्च, कौरी, रीमू, केहकटिया आदि के वृक्ष जंगलों में अधिक पाये जाते हैं। कौरी नामक वृक्ष तो ८-१० फुट के घेरे का तथा २०० फीट तक ऊँचा होता है। इसकी मजबूत लकड़ी घर तथा जहाज बनाने के काम आती है। कौरी का गौंद बहुत कीमती होता है जो कि वार्निश बनाने के काम आता है। यहाँ गेहूँ, जौ, जई, दाल, आलू, सन आदि भी पैदा होता है। फलों में सेव, नासपाती, अमरूद आदि अधिक पैदा होते हैं। अंगूर की पैदावारी भी अधिक होती है। इस देश में घास के बड़े-बड़े मैदान हैं, जिनमें भेड़ें पाली जाती हैं। जिनकी ऊन और मांस बाहर भेजा जाता है। गाय बैल भी पाले जाते हैं। जिससे मक्खन पनीर बनता है। घोड़े, सूअर तथा मुर्गियाँ भी पाली जाती हैं। शहद की मक्खियाँ भी पाली जाती हैं। जिनका मनों शहद विदेश भेजा जाता है।

लगभग १ १/२ अरब रुपये का सोना यहाँ की खानों से निकल चुका है। यहाँ चाँदी भी मिलती है। कोयला, लोहा, गोंद आदि बाहर भेजा जाता है। व्यापार के क्षेत्र में यह देश बहुत ऊँचा है। यहाँ का एक आदमी लगभग एक हजार रुपया का व्यापार करता है, जबकि इँगलैण्ड का एक आदमी औसतन ७५० रुपये का तथा भारत का ३० रुपये का प्रतिवर्ष व्यापार करता है। यहाँ से ऊन, मक्खन, माँस, पनीर, खाल, चर्बी, सोना, लकड़ी, गोंद आदि वस्तुएँ बाहर भेजी जाती हैं, तथा मोटरकार, मशीनरी, लोहे का सामान, दवाइयाँ, बूट, जूते, तम्बाकू, आदि वस्तुएँ विदेशों से मँगाई जाती हैं। ऑकलैण्ड, वैलिंगटन, काइस्ट चर्च यहाँ के प्रसिद्ध शहर हैं। इनसे सामान विदेशों को भेजा जाता है।

न्यूगिनी—यह आस्ट्रेलिया के ऊपर छोटा-सा द्वीप है। यहाँ गर्मी तथा वर्षा अधिक होती है। बाँस, घास, नारियल, साबूदाना, केला, रबड़, ईख आदि यहाँ अधिक उपजते हैं। यहाँ सोना तथा तेल भी मिलता है। यहाँ के निवासी जंगली हैं, जो कि कुछ खेती करते हैं तथा सूअर पालते हैं, तथा कुछ समुद्र से मोती और शंख निकालते हैं।

प्रशान्त महासागर के पास बहुत से द्वीप हैं जिनमें बहुत से ज्वालामुखी हैं। यहाँ की भूमि उपजाऊ है। लगभग सम्पूर्ण क्षेत्र में मनुष्य बसे हुए हैं। ईख, केला, पपीता, कपास, कहवा, गर्म मसाला, नारियल आदि अधिक पैदा होते हैं। दूसरे मूँगे के द्वीप हैं, जिनमें मूँगे के कीड़ों से बनाई दीवारें हैं। यहाँ के निवासी चूहे, केंकड़े और घोंघा हैं। पेड़ अधिक नहीं होते हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि मनुष्य का जीवन प्राकृतिक परिस्थितियों से काफी प्रभावित होता है।

फोर्ड ने कहा है कि भौतिक वातावरण और मानव-कर्म के बीच संस्कृति जहाँ तक मध्यवर्ती बनकर अपना प्रवेश करती है, वहाँ प्राकृतिक वातावरण और मानवो की संस्कृति के बीच होने वाली अन्त: प्रतिक्रियाओं का ही मूल्यांकन एक समस्या बन जाता है। मानव-प्राणियों ने अपने आपको भौगोलिक परिस्थिति के अनुकूल बनाया है और इसी चेष्टा में उन्होंने अपना विविध-विकास भी किया है।

हर्सकोवित्स ने मनुष्य के प्राकृतिक और सांस्कृतिक तत्त्वों के भेद को इस प्रकार प्रकट किया है—

(१) आवास (Habitat)

(२) संस्कृति (Culture)

(१) **आवास**—यह मानव-जीवन की प्राकृतिक परिस्थिति है। किसी भी जन-समूह द्वारा आबाद स्थान के कुछ भौतिक लक्षण होते हैं। उस प्रदेश में रहने वालों को वहाँ कुछ प्राकृतिक उपलब्ध होते हैं या होने को होते हैं। वहाँ की जलवायु तथा अन्य भौगोलिक परिस्थितियाँ उस पर प्रभाव डालती हैं। वह अपने को उनके अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है।

(२) **संस्कृति**—वह समग्र पृष्ठभूमि जिसमें मानव अपने द्वारा निर्मित सभी भौतिक वस्तु, विधियाँ, सामाजिक प्रणालियाँ, दृष्टिकोण और सभी ऐसे स्वीकृत उद्देश्यों को सम्मिलित पाता है। वह उसके व्यवहार को तात्कालिक रूप से प्रभावित करते हैं। इन सबको संस्कृति कहा जाता है।

मानव-भूगोल (Anthropogeograply) इस प्रकार मानव-शास्त्र के लिये एक आवश्यक विषय है। फ्रेड्रिक रेट्ज़ल ने इस प्रकार के अध्ययन का प्रारंभ किया था। मनुष्य के जीवन-यापन के साधन उसकी आवश्यकताओं से जन्मे है। उसने सर्वत्र ही प्रकृति के अनुकूल बन कर, अपने को जीवित रखकर, उसे एक प्रकार से पराजित कर दिया है, मनुष्य के जीवन का यह संघर्ष ही उसके प्रौद्योगिक विकास के लिये उत्तरदायी कहा जा सकता है।

४

सांस्कृतिक उपलब्धियों के स्रोत

संस्कृति का प्रारंभ तो मानव के विकास के साथ ही प्रारंभ हो गया था। परंतु संस्कृति की उन्नति सभ्यताओं के विकास के आधार पर आँकी जाती है, कि किस सभ्यता ने मनुष्य को क्या सांस्कृतिक देन दी।

आधुनिक वैज्ञानिक जिस प्रकार समय का विभाजन करते है, वह हम अन्यत्र लिख चुके हैं। यहाँ हम भारतीय क्रम में जो युगों का हिसाब है, उसका उल्लेख करते हैं।

हिंदुओं के हिसाब से एक बार सृष्टि जितने वर्ष रहती है, उतने ही वर्ष तक प्रलय रहता है।

सृष्टि में १४ मन्वन्तर होते हैं। हर एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी होती हैं। चतुर्युगी का अर्थ है—चार युग, अर्थात् कलियुग, द्वापर युग, त्रेता युग और सत्ययुग। कलियुग चार लाख बत्तीस हजार साल का होता है। द्वापर युग इससे दुगना यानी ८ लाख ६४ हजार वर्ष का होता है। त्रेता युग इससे तिगुना यानी बारह लाख छ्यान्वे हजार वर्ष का, तथा सत्ययुग चौगुना यानी १७ लाख, २८ हजार वर्ष का होता है। कुल जोड़ होता है, एक चतुर्युगी बराबर होती है तेतालीस लाख बीस हजार बरस। ७१ चतुर्युगी एक मन्वन्तर के बराबर होती हैं, अतः एक मन्वन्तर तीस करोड़ सरसठ लाख और बीस हजार वर्ष का होता है। एक सृष्टि में १४ मन्वन्तर होते हैं। अर्थात् ४ अरब, उन्नीस करोड़, ४० लाख और ८० हजार वर्ष के १४ मन्वन्तर होते हैं। परन्तु हर मन्वन्तर के पहले और बाद में एक संधिकाल भी होता

है। इस प्रकार १४ मन्वतरों के १५ संधिकाल ठहरते हैं। एक संधिकाल १७ लाख २८ हजार वर्ष का होता है। इस प्रकार संधिकालों का कुल समय होता है—दो करोड़ उन्सठ लाख बीस हजार वर्ष। १४ मन्वन्तर और १५ संधिकाल मिलाने पर सृष्टि की आयु निकलती है—४ अरब ३२ करोड़ वर्ष। इतने दिन बाद फिर इतने ही दिन का प्रलय भी होता है।

हिन्दू एक चक्र (cycle) में विश्वास करते हैं। उनके हिसाब से सबकुछ पहले से निर्णय (determine) हो चुका है।

वास्तव में, हम बता चुके हैं, भारत का गणित ज्ञान, व्यापकता की खोज, जीवन क्रम में अनन्त की प्रमुखता, अमरता की लालसा इत्यादि ने इस प्रकार के गणित को विकसित किया है। इससे हम अपने को अविनश्वर मानते हैं, परंतु हम में इससे कमी भी आई है कि हमने इतिहास का क्रम रखना छोड़ दिया। हो सकता है कि घटनाएँ इतनी प्राचीन हो गईं, या विदेशियों के आक्रमणों ने बार-बार पुराने रिकार्ड नष्ट कर दिये। फिर भी हमारे पुराणों में हिसाब साफ नहीं मिलते।

इसलिये हमें प्राचीन संस्कृतियों का अध्ययन करने के लिये मनुष्यों की विभिन्न जातियों के प्राचीन इतिहासों से सहायता लेनी आवश्यक है, ताकि हम एकांगी अध्ययन में पड़े न रह जायें।

संसार में अनेक जातियाँ पायी जाती हैं। उनका सबका अपना-अपना इतिहास है, परन्तु वर्तमान काल में पुरातत्व की खोजों, पुराने रिकार्डो इत्यादि के आधार पर ही इतिहास लिखा जाता है। इसी आधार पर हम भी विवेचन करेंगे।

संसार में चार देशों का इतिहास सबसे प्राचीन माना जाता है—

(१) मिस्र या मिश्र।

(२) सुमेरु-सभ्यता या मैसोपोटामिया प्रदेश।

(३) चीन।

(४) भारत।

भारत के विषय में अभी अनेक प्रकार के मतभेद पाये जाते हैं।

यहाँ हम क्रम से एक-एक को लेते हैं—

मिश्र—पाश्चात्य विचारकों के अनुसार भूमण्डल पर जिस प्रदेश में सर्व प्रथम मानवीय गुणों ने सभ्यता एवं संस्कृति का रूप धारण किया, जहाँ मानव ने पहली बार जिज्ञासु भाव से स्वयं अपने को एवं अपने चारों ओर के वाता-

वरण को जानने का कौतूहल व्यक्त किया तथा जहाँ उसके तिमिराच्छादित जीवन में सर्वप्रथम ज्ञान-रश्मियाँ प्रस्फुटित हुईं, वही प्रदेश आज मिश्र के नाम

चित्र २६—एशिया

चित्र २७—अमेरिका

चित्र २८—हब्शी (नीग्रो)

चित्र २६—यूरोप

से जाना जाता है। घुमक्कड़ प्राग-ऐतिहासिक कालीन मानव ने पशु-सदृश्य अस्थिर जीवन को तिलाञ्जलि देकर अपनी बुद्धि, चातुर्य्य एवं परिश्रम के बल पर जीवन-यापन का पाठ यहीं ग्रहण किया था। घर, ग्राम और नगर का जन्म मिश्र की ही गौरवपूर्ण भूमि पर हुआ था। मिश्र की संस्कृति मनुष्य जन्म-जात क्षमता का एक ऐसा अद्वितीय उदाहरण है जो कि युगों-युगों तक भावी पीढ़ियों का मार्ग-दर्शन करता रहेगा।

परन्तु कितने आश्चर्य का विषय है कि विश्व की इस प्राचीन संस्कृति के विषय में हम सन् १७६८ से पूर्व कुछ नहीं जानते थे। मिश्र के खण्डहर तब भी वैसे ही खड़े थे जैसे कि वे आज हैं, पर मानों उनका मूक-निमन्त्रण आधुनिक

मानव के अन्तर्तम को स्पर्श न कर पाया हो, इसीलिए उनके निर्माणकर्त्ताओं की कहानी प्रकाश में न आ पाई। सन् १७९८ तक मिश्र का महत्त्व केवल एक भौगोलिक एवं राजनीतिक इकाई के रूप तक ही सीमित रहा। काल के प्रभाव से जैसे दुष्यन्त अपनी ही पत्नी को न पहचान पाया वैसे ही मिश्रवासी भी अपने ही महान पूर्वजों की अद्‌भुत सफलताओं को विस्मृत कर बैठे—अतीत में कभी जिन्होने विश्व को आलोक प्रदान किया था वे स्वयं ही घनीभूत अन्धकार मे अपना मार्ग खोज रहे थे। गौरव अपनी गाथाएँ छोड़ जाता है पर वे गाथाएँ भी उन्हें याद न रही। परन्तु एक दिन यकायक एक ऐसा महान रहस्योद्‌घाटन हुआ जिसने संसार को आश्चर्य-चकित कर दिया। सन् १७९८ मे इंगलैण्ड को परास्त करने के हेतु नैपोलियन बोनापार्ट ने अंग्रेजो के आधीन तत्कालीन भारत-स्थित बस्तियो पर अधिकार करने की योजना बनाई, यद्यपि वह योजना सफल न हो सकी। परन्तु इसी उद्देश्य से वह तैय्यारी के हेतु पूर्वी अफ्रीका की ओर आया। उसी समय उसकी सेना के एक सैनिक को संयोगवश एक विचित्र पाषाण-खण्ड दिखाई दिया जो कि रोसैटा (Rosetta) नदी के पास के मैदान में गडा हुआ था। इस पत्थर पर विचित्र चित्र अंकित थे। इस शिला पर तीन भाषाओं के लेख थे—चित्र-लिपि। (Hieroglypic), सरल मिश्री लिपि (Demotic) एवं ग्रीक-लिपि। आजकल यह शिलाखण्ड ब्रिटिश म्यूजियम में है। सन् १८०२ में चैमपोलियन (Champolion) नामक फ्रांसीसी प्रोफेसर ने इन लेखों का अर्थ ज्ञात करने का प्रयत्न किया। इक्कीस वर्ष के कठोर परिश्रम के पश्चात सन् १८२३ में उसने शिला पर अंकित १४ चित्रों का अर्थ ज्ञात करने की घोषणा की। तभी से इतिहास-वेत्ताओं एवं पुरातत्व-शास्त्रियो का ध्यान मिश्री मरुस्थल की उपेक्षित भूमि में छिपे प्राचीन खण्डहरों के अवशेषों की ओर आकर्षित हुआ एवं पिरेमिडो (मिश्री भाषा में 'ऊँचाई' का बोध कराने के लिए 'पिर-एम-एस' शब्द का प्रयोग किया जाता था) और 'ममी' (फारसी भाषा के 'ममिआई' शब्द से प्राप्त) की खोज के लिए एक ऐसे आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसका अन्त आज तक नही हुआ।

मिश्र की संस्कृति समय की विघटनकारी प्रवृत्ति का अध्ययन है। वाल्टर स्काट की उक्ति है कि मृत-व्यक्ति कोई कहानी नही कह सकता (Dead man tells no tales) परन्तु मिश्र का इतिहास उनके मुर्दो की कहानी पर ही आश्रित है। शोरे और राल के घोल मे चिर-निद्रा में लीन मिश्रवासियो के ये पूर्वज आधुनिक वैज्ञानिको की जिज्ञासा के विषय है। मिश्र के प्रथम वंश से पूर्व या ईसा से ३४०० वर्ष पहले का इतिहास वहाँ की कब्रों के आधार पर

संगृहीत किया गया है। सर फ्लिन्डर्स पैट्री के स्तुत्य प्रयत्नों के फलस्वरूप मिश्र में प्राप्त कब्रों के द्वारा वहाँ के इतिहास को क्रमबद्ध रूप दिया गया है। सन् १८९५ से पूर्व मिश्र का इतिहास पिरेमिड-युग से ही प्रारम्भ होता था और इससे पूर्व का इतिहास अज्ञात था। परन्तु अमीलिनाउ (Amielinau) डी मौरगन (de Morgan), सर फ्लिन्डर्स पैट्री एवं ब्रन्टन आदि पुरातत्त्ववेत्ताओं की अमूल्य खोजों ने मिश्र के प्राग-ऐतिहासिक काल पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन विद्वानों की खोजों से पूर्व मिश्र के इतिहास के विषय में सबकुछ सर्वथा अज्ञात था। तब हम मिश्र के इतिहास का आरम्भ प्रथमवंश (ई० पू० ३४०० वर्ष) से मानते थे। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में मिश्र के ग्रीक सम्राट टौलेमी फिलेडेलफस (Ptolemy Philadelphus) के राज्य-काल में मैनेथो (Manetho) नामक मिश्री पुरोहित ने मिश्र का इतिहास लिखा था। उसने मिश्र के राजाओं को इकत्तीस वंशों (Thirty one Dynasties) में श्रेणीबद्ध किया था और प्रथम राजवंश का आरम्भ ई० पू० ३४०० के लगभग माना था। बाद में विद्वानों ने सुविधा की दृष्टि से मिश्र के इतिहास को तीन भागों में विभाजित किया एवं राजवंशों के क्रमानुसार उन्हें प्राचीन साम्राज्य या प्रथम संघ, (Old Kingdom or The First Union) मध्यकालीन साम्राज्य या द्वितीय संघ (Middle Kingdom or The Second Union) एवं नूतन साम्राज्य या तृतीय संघ (New Kingdom or The Third Union) के नाम से पुकारा जाने लगा। फिर भी मिश्री सभ्यता की प्राचीनता के विषय में मतभेद है। इतिहासकार फिलन्डर्स पैट्री इसे १०००० वर्ष प्राचीन मानते हैं, जब कि अन्य विद्वानों के मत से यह लगभग ५००० वर्ष प्राचीन है, क्योंकि इसी समय से सभ्यता के चिन्ह अधिक दृष्टिगोचर होते हैं।

मानवजाति का इतिहास प्रकृति के विरुद्ध मनुष्य के संघर्ष का इतिहास है। प्रकृति ने मनुष्य को एक भूखे-नंगे और जंगली प्राणी के रूप में जन्म दिया था। प्राग ऐतिहासिक मनुष्य के सम्मुख भी दो विषम समस्याएँ थीं—उदर-पूर्त्ति के हेतु भोजन एवं सुरक्षा के लिए निवासस्थान खोजना। ये ही दो समस्याएँ वे मूलभूत प्रश्न थे जिनके समाधान के लिए आदि-कालीन मनुष्य ने भिन्न-भिन्न समुदायों के रूप में भूमि के विभिन्न प्रदेशों की ओर प्रयाण किया। आदि-कालीन मनुष्यों के किसी ऐसे ही समुदाय को नील नदी की उर्वरा घाटी के विषय में ज्ञात हुआ होगा। ऐसी उपजाऊ भूमि में उनकी प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति की पूर्व सम्भावनाएँ थीं। नील नदी के

जल से खाने के लिए अनाज पैदा किया जा सकता था, पशुओं के लिए चारा प्राप्त किया जा सकता था और निकटवर्ती प्रदेशों में ही मकान बनाने की सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती थीं। इन्हीं आशाओं से प्रेरित होकर मध्य-अफ्रीका, अरब के रेगिस्तान और पश्चिमी एशिया के अनेकों कबीलों ने मिश्र की भूमि पर पैर रखा। जन-संख्या अल्प थी और कृषि के लिए जमीन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। विश्व-इतिहास के उस प्रारम्भिककाल में 'सम्पत्ति' नाम की कोई वस्तु न थी। इसलिए भिन्न-भिन्न स्थानों से आये हुए कबीलों में कोई विशेष लड़ाई-झगड़ा या 'सम्पत्ति' के लिए कोई युद्ध नहीं हुआ। इसके विपरीत जैसे अबोध बालकों में मिट्टी का घर बनाने के लिए एक विशेष एकता स्थापित हो जाती है, कुछ-कुछ वैसा ही मैत्री-भाव इन कबीलों में उत्पन्न हुआ। सामूहिक रूप से ये सब अपने को 'रेमी' (Remi) जाति के नाम से पुकारने लगे, जिसका अर्थ है 'ईश्वर का प्रिय'। इन लोगों का अपने को 'रेमी' जाति के नाम से पुकारना भी सर्वथा उपयुक्त ही था क्योंकि इन्हें कल्पवृक्ष सदृश नील नदी का वरदान प्राप्त था। यह नदी अफ्रीका से निकल कर (विक्टोरिया झील से) मिश्र को पार करती हुई भूमध्यसागर में गिरती है। नील नदी की घाटी भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न है। फिर भी घाटी की न्यूनतम चौड़ाई १० मील और अधिकतम चौड़ाई ३० मील है।

इस घाटी में बसने वाले लोगों के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे अपने समय के विभिन्न देशों में रहने वाले लोगों से पूर्व ही सभ्यता के दर्शन करते। सामुदायिक जीवन (Community-life) व्यतीत करने के कारण इस घाटी के लोगों में चेतना और जागृति का उद्‌भव पहले हुआ। खाने के लिए पशु आसानी से उपलब्ध हो जाते थे। उन्हें हांक कर घाटी में कैद किया जा सकता था। उन्हें मारना सरल था। परन्तु उनके माँस को अनेक दिनों तक भोजन के लिए सुरक्षित रूप से रखने की समस्या ने उन्हें पशु पालने के लिए प्रेरित किया होगा। इस प्रकार पशुपालन का आरम्भ हुआ। कुछ पशु तो माँस एवं दूध दोनों ही दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हुए।

नील नदी की घाटी की जलवायु मनुष्यों के निवास के लिए एवं कृषि के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त थी। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ थी (जैसी कि अब भी है) और गेहूँ, कपास एवं अन्य छोटे पौधों की पैदावार बड़ी सुगम थी। इस प्रदेश की समृद्धि नील नदी की कृपा पर निर्भर थी। इस प्रदेश में वर्षा

बहुत कम होती थी। परन्तु प्रकृति ने इसी कमी को पूरा करने के लिए एक विशेष उपाय किया। नील नदी में प्रत्येक वर्ष बाढ़ आती थी। बाढ़ के दिनों में जल दूर दूर तक फैल जाता था और अपने साथ लाई हुई उर्वरा मिट्टी को भूमि पर फैला देता था। इस कारण से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती थी। मिश्रवासी जल के लिए भारतवासियों की भाँति आकाश की ओर नहीं देखते थे। उनके लिए नील नदी ही सर्वदात्री थी। इसी तथ्य को (ई० पू० पाँचवी शताब्दी में) प्रसिद्ध ग्रीक इतिहासकार ने यह कह कर अभिव्यक्त किया था कि मिश्र नील नदी का दान है। अन्य लेखकों ने भी नील नदी के महत्त्व को 'ईश्वरीय वरदान' कहकर स्वीकार किया है। मिश्र-वासियों के हृदय में सदैव ही नील नदी के प्रति वैसी ही श्रद्धा रही है जैसी कि भारतवासियों की गंगा के प्रति है। प्राचीन कालीन मिश्रवासी तो नील नदी को एक देवता मानते और उसे वह 'हापी' (Hapi) के नाम से सम्बो-धित करते थे एवं उसकी पूजा-अर्चना के हेतु विशेष भजन गाते थे। 'पेपिरस' कागज पर लिखित ये भजन 'ए गाइड टू दि ईजिपशियन कलैक्शन्स' (A Guide to the Egyptian Collections) नामक पुस्तक के रूप में आज भी ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित रूप से रखे हुए हैं। उदाहरण के लिए एक भजन नीचे दिया जाता है—

'हे हापी ! (नील नदी रूपी देवता) तुझे नमस्कार है। तू इसी भूमि पर अवतरित होता है। तू शांति के समय मिश्र को जीवन प्रदान करने के हेतु आता है। तू उन खेतों को जल प्रदान करता है जिन्हें 'रॉ' ('Ra'—सूर्य-देवता) ने उत्पन्न किया है, तू ही सब पशुओं को जल देता है; तू जब स्वर्ग के मार्ग से नीचे आता है तो निरन्तर रूप से पृथ्वी को जल पिलाता रहता है। तू रोटी और जल का मित्र है; तू ही अनाज की वृद्धि करता रहता है और उसको शक्ति प्रदान करता है....आदि आदि।''

पूर्व-राजवंश काल अथवा ईसा पूर्व ३४०० का युग (Pre-dynastic Period)—यद्यपि यह सत्य है कि नील नदी मिश्रवासियों के लिए एक महान वरदान थी परंतु उसके साथ ही यह भी सत्य है कि यदा कदा यह नदी लोगों के विनाश का साधन भी थी। बाढ़ से भूमि उपजाऊ बनती थी और बाढ़ के कारण ही सदैव लोगों को धन-जन की हानि भी उठानी पड़ती थी। प्रारम्भ में लोग बाढ़ को नील नदी का प्रकोप समझते थे और उसकी स्तुति एवं पूजा करके उसको शान्त करने की चेष्टा करते थे। परन्तु बार बार आने वाली बाढ़ों ने लोगों

को विवश कर दिया कि वे अपनी सुरक्षा के उपाय खोजें। पहले लोगों ने नदी में से अनेक छोटी-छोटी नहरें बना कर अपने अपने खेतों तक पानी पहुँचाने का उपक्रम किया। इस प्रबन्ध के द्वारा उन्हें पूरे वर्ष के लिए अपने खेतों तक पानी पहुँचाने की सुविधा हो गई। परन्तु कुपित नील के सम्मुख यह उपाय ऐसा तुच्छ एवं निरर्थक सिद्ध हुआ जैसा कि मानो अँगुली से हिमालय गिराने की चेष्टा हो। एक समान विपत्ति का बारम्बार सामना करने से लोगों में सामूहिक रूप से रोष उत्पन्न हुआ। परन्तु व्यक्तिगत रूप से या छोटे-छोटे समूहों द्वारा बाढ़ की स्थिति को वश में करना असम्भव था। वृहत स्तर पर कार्य करने के लिए उपयुक्त नेतृत्व की आवश्यकता थी। परिणामतः नदी के किनारे किनारे पृथक पृथक स्थानों पर भिन्न भिन्न स्थानीय नेताओं ने बाढ़ को नियन्त्रण में करने के लिए एवं सिंचाई के लिए उपयुक्त साधन जुटाने के लिए कार्य करना आरम्भ कर दिया। शनैः शनैः ये ही नेता लोग बाढ़ नियन्त्रण एवं सिंचाई योजनाओं के वास्तविक प्रबन्धक हो गए। प्रत्येक नेता अपने-अपने स्थानों के निवासियों का मार्ग-दर्शन करने लगा। इस प्रकार उनके हाथों में एक विशेष सत्ता आ गई। अपने पारिश्रमिक के रूप में इन नेताओं ने जनता से अनाज एवं अन्य पैदावार का कुछ भाग वसूल करना आरम्भ कर दिया। इन नेताओं के नेतृत्व में ही नहरों, खाइओं एवं छोटे-छोटे बाँधों का निर्माण हुआ।

सम्भवतः इसी रूप में कर-प्रणाली का जन्म हुआ। धीरे-धीरे इन नेताओं में भी स्पर्धा उत्पन्न हुई। अपने प्रशासनिक अनुभव, चतुराई एवं सामाजिक स्थिति के बल पर वे अपनी सत्ता की वृद्धि करते रहे। वे अपने कमजोर पड़ौसियों की भूमि पर और उसके साथ ही उस प्रदेश के निवासियों पर अधिकार करते गए। अन्त में नेताओं का यह विशाल वर्ग दो संगठित दलों के रूप में विभाजित हो गया। आवश्यकता आविष्कार की जननी है—इस प्रकार शासन या सरकार (Government) का जन्म हुआ। इन दोनों दलों ने ही, जैसा कि डेवीज, वॉनलून एवं साउथवर्थ का मत है, बाद में दो शासनों का रूप धारण किया और मिश्र दो राज्यों में विभाजित हो गया। डेल्टा प्रदेश और नदी का तटवर्ती उत्तरी भाग निम्न मिश्र (Lower Egypt) कहलाया और नदी का तटवर्ती ऊँचा भाग ऊपरी मिश्र (Upper Egypt) के नाम से पुकारा जाने लगा। प्रथम राजवंश के अस्तित्व में आने से पूर्व मिश्र इन्हीं दो प्रशासनिक एवं राजनीतिक इकाइयों में विभाजित था। शायद तब दोनों प्रदेशों की ऐसी ही स्थिति रही हो जैसी कि संयुक्त अरब गण राज्य (United Arab Rep-

ublic) की स्थापना से पूर्व, कुछ वर्षों पहले तक, मिश्र और सीरिया की स्थिति थी ।

मिश्र में बस जाने के उपरान्त आदि-वासियों की एक अभिनव सभ्यता का विकास होने लगा । उनके रहन-सहन, खान-पान आदि में एकरूपता आने लगी । विचार-धारा में एक विशेष समानता आने लगी । तात्कालिक समस्याओं के लिये जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, सामूहिक प्रयत्न आरम्भ हुआ । मिश्र की सम्पत्ति उसकी फसलें थीं । अच्छी फसलों के लिये उपयुक्त समय पर बीज बोना और जल प्राप्त करना आवश्यक था क्योंकि नील नदी की घाटी के पूर्व प्रदेश की कृषि नील की वार्षिक बाढ़ पर आश्रित थी । इस बाढ़ के विषय में भी एक अजीब बात थी जो कि प्रायः अन्य नदियों में आने वाली बाढ़ों के विषय में नहीं कही जा सकती । बाढ़ प्रतिवर्ष सदैव निश्चित समय पर ही आती थी अर्थात् दो बाढ़ों के मध्य सदैव ३६५ दिन का अन्तर रहता था । ५० वर्ष के सतत निरीक्षण के उपरान्त इस बात की पुष्टि हो गई । इस प्रकार उन लोगों के लिए कृषि का कार्य सुगम हो जाता था जो यह जान लेते थे कि कब बाढ़ आने वाली है । इस प्रकार मिश्री कलैंडर का जन्म हुआ। ३६५ के दिनों के वर्ष को ३०-३० दिनों के १२ मासों में बाँट दिया गया और एवं फिर पाठान्तर से (Intercalary) ५ दिन जोड़ दिए गए । मिश्रवासियों के मौसमों (ऋतुओं) के नाम भी 'बाढ़' 'बोवाई' एवं 'फसल' आदि थे । इस कलैंडर का जन्म ई० पू० ४२४१ वर्ष पूर्व हुआ । इसी कलैंडर को जूलियस सीजर ने अपनाया और इसमें कुछ संशोधन करके इसे नया रूप दिया । उसके पश्चात पोप ग्रेगरी ने इस कलैंडर में कुछ सुधार किया । इस प्रकार आधुनिक कलैंडर का जन्म मिश्री कलैंडर से ही हुआ है ।

परन्तु नील नदी की बाढ़ के ५० वर्षों के निरीक्षणों को तब तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता था जब तक कि लोगों में लेखन-कला का विकास न हो जावे । साथ ही भावी लोगों के लाभ के लिए नील की हलचलों को सुरक्षित रखना परम आवश्यक था, ताकि वे अपनी कृषि को उसके अनुसार ही प्रारम्भ करें । इस समस्या ने लोगों को किसी प्रकार की लिपि का आविष्कार करने के लिए विवश कर दिया । इस प्रकार मिश्री चित्र-लिपि (Hieroglypic) का आविष्कार हुआ । परन्तु लिखने के लिए सामग्री की आवश्यकता थी—कागज, स्याही एवं कलम । पाषाण-खंडों या शिलाओं पर चित्र-लिपि द्वारा महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ अंकित करने से इस क्रम का प्रारम्भ हुआ । बाद में अधिक सुविधाजनक साधन की खोज प्रारम्भ हुई । इसके

फलस्वरूप ही पेपिरस (Papyrus) कागज का आविष्कार हुआ। इस आविष्कार में भी नील का योग-दान बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। नील नदी के दलदल या कीचड़ में पेपिरस नामक पौधा पैदा होता था (नरकट या सरकंडे जैसा)। इसी से पेपिरस कागज बनाया गया। लिखने के लिए इन्हीं सरकंडो की कलमें बनाई जातीं थीं। पानी में गोंद, घास, अथवा कुछ विशेष प्रकार के पत्थरों के चूर्ण को मिलाकर स्याही बनाई जाती थी। चीनी मिट्टी की दबातें बनाई जाती थीं। इस प्रकार मिश्र के आदिवासी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु सदैव सजग एवं जागरूक रहते थे। उनके महान प्रयत्नों के फलस्वरूप ही मिश्र में पूर्व राजवंश काल में ही एक विशेष संस्कृति का जन्म हुआ। इन पूर्वजों की सफलताओं ने आगामी पीढ़ियों का मार्ग प्रशस्त किया और उनमें आत्म-विश्वास की वह भावना जागृत की जो एक महान संस्कृति एवं उज्ज्वल भविष्य के निर्माण करने वाले राष्ट्र के लिए आवश्यक है।

उस समय जब कि मिश्र के आदिवासी एक नई सभ्यता, एक नवीन संस्कृति की नींव डाल रहे थे, आधुनिक महान राष्ट्रों का जन्म भी नहीं हुआ था। निर्माण एवं रचना का यह महान कार्य विश्व-इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। उत्थान-पतन एवं उन्नति-अवनति के अनेकों आघातों के मध्य भी मिश्रवासी अपने पूर्वजों के महान कार्यों को बराबर आगे बढ़ाते रहे। ई. पू. ३४०० में मीनेस (Menes) ने, जो कि ऊपरी मिश्र (Upper Egypt) का शासक था, निचले या उत्तरी मिश्र (Lower Egypt) को जीतकर दोनों भागों को एक राज्य का रूप प्रदान किया। डाक्टर फ्लिन्डर्स पैट्री एवं डा० वालिस बज (Dr. Flinders Petric and Dr. Wallis Budge) के मतानुसार ऊपरी एवं निचले मिश्री भागों का एकीकरण ई. पू. ४३०० में हुआ। परन्तु स्पष्ट एवं ठोस प्रमाणों के अभाव में उक्त मत स्वीकार नहीं किया जा सका। मीनेस से ही मिश्र का प्रथम राजवंश उदय हुआ। वह प्रथम राजवंश का प्रथम शासक था। उस समय के विश्वासों के अनुसार, मिश्र-वासियों ने मीनेस को उसकी मृत्यु के बाद देवताओं की श्रेणी में प्रतिष्ठापित किया। अपने जीवन-काल में मीनेस बाज रूपी देवता की पूजा करता था अतः उसे बाज-देवता (Horus, Nar mer या The Falcon Horus) के तुल्य सम्मान प्राप्त हुआ। गौर्डन चाइल्ड के मतानुसार उस समय ऊपरी एवं निचले मिश्र के पृथक-पृथक राजकीय चिन्ह थे (क्रमशः लाल एवं सफेद मुकुट) जिन्हें मीनेस ने मिलाकर एक कर दिया था। प्रथम राजवंश के उत्तराधिकारी राजाओं

ने इसी एकीकृत राज-चिन्ह को धारण करने की परम्परा आरम्भ की थी। ब्रेस्टेड ने एक शिला-लेख (Palermo Stone) के आधार पर (जिसकी खोज स्वयं उन्होंने की थी) यह मत प्रगट किया है कि प्रथम राजवंश (ई. पू. ३४०० वर्ष) से पहले ही मिश्र संयुक्त हो चुका था और उसके कई राजा भी हो चुके थे, जिनकी राजधानी सम्भवतः हैलिओपोलिस (Heliopolis) थी। परन्तु ब्रैस्टेड के उक्त मत का पुरातत्ववेत्ताओं ने कोई अनुमोदन या समर्थन नहीं किया है। अतएव संयुक्त मिश्र की स्थापना मीनेस के राज्यकाल से ही मानी जाती है।

प्राचीन साम्राज्य अथवा प्रथम संघ (The Old Kingdom or The First Union)—१ इतिहासकारों ने इस काल को पिरेमिड-युग के नाम से भी पुकारा है; क्योंकि पिरेमिडों के निर्माण की दृष्टि से यह समय मिश्री-इतिहास का स्वर्णकाल था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है मिश्र के दोनों भागों का एकीकरण करने का श्रेय मिश्र के प्रथम फराओह मीनेस (Menes) को है। मैम्फिस नगर उसका ही बसाया हुआ था। यह नगर नील नदी के डेल्टा के प्रारम्भ में है। इस नगर को मिश्र की प्रथम राजधानी होने का गौरव प्राप्त हुआ। इस युग का स्वर्णकाल चौथे राजवंश से प्रारम्भ हुआ। इस वंश के राजाओं ने मिश्री राज्य का और विस्तार किया। उनकी राज्य-सीमा पश्चिम में नीबिया और दक्षिण में न्यूबिया (Nubia) तक थी। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि इसी समय मनुष्य ने धातु का उपयोग करना आरम्भ किया। मिश्रवासियों ने सिनाई (Sinai) प्रायःद्वीप में ताँबे की खोज की। इन राजाओं के जहाज लाल सागर में व्यापार के हेतु विचरते थे। इस वंश के राजाओं ने सिंचाई का प्रबन्ध स्थायी रूप से किया, जिसका अनुसरण पश्चात-वर्त्ती शासकों ने भी किया। आर्थिक स्थिति को नियन्त्रण में रखने के हेतु एवं देश में व्यापार को सुगम बनाने के लिये एक सुनियोजित मुद्रा-प्रणाली प्रारम्भ की गई। इन राजाओं के काल में एक विशाल एवं पूर्ण संगठित सेना थी।

राजाओं का जिन्हें फराओह (Pharaoh, मिश्री भाषा में इस शब्द का अर्थ था 'विशाल-गृह') कहा जाता था, जनता में देवताओं के तुल्य सम्मान था। राज्य में वह प्रत्येक दृष्टि से सर्वोच्च शक्ति-सम्पन्न होता था। जनता उसे धरती पर ईश्वरीय प्रतिनिधि मानकर उसका आदेश मानती थी। राजा स्वयं अपने को ईश्वरीय-सन्तान समझता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिश्र में भी इस काल में राजा की स्थिति वैसी ही उच्च और पवित्र थी जैसी कि सभ्यता के आरम्भ में अन्य देशों में अन्य राजाओं की थी। संक्षेप में हम कह सकते

हैं कि मिश्री इतिहास का यह वह युग था जिसमें राजाओं के दैवी-सिद्धान्त (Divine Rights of Kings) का बोल-बाला था। राजनैतिक, सामाजिक एवं सैनिक क्षेत्रों में वह निरंकुश सत्ता का उपभोग करता था।

इस युग को पिरेमिडों का युग इसीलिए कहा जाता है कि इस काल के राजाओं ने भवन-निर्माण एवं स्थापत्य कला में विशेष अभिरुचि प्रदर्शित की। विश्व के किसी भी अन्य देश में इतनी प्राचीन विशाल इमारतें नहीं हैं जितनी कि मिश्र में बनीं। यद्यपि सर्वभक्षी काल ने अनेक प्राचीन इमारतों को धराशायी कर दिया है; परन्तु जो शेष रह गईं हैं वे ही अपने गौरव की कहानी आप ही कहती प्रतीत होती है। विशाल शिला खण्डों एवं पाषाण खण्डों को प्राचीन मिश्रवासियों ने जिस कुशलता के साथ पिरेमिड-निर्माण के कार्य-हेतु प्रयुक्त किया है वह इस स्पुत्निक युग के इन्जीनियरों को भी आश्चर्य चकित कर देती है। लगभग ३००० ई. पू. जोसर द्वारा निर्मित 'सोपान-सदृश' (Step Pyramid) पिरेमिड सम्भवतः प्रथम भवन था, जिसका निर्माण किया गया। इम्होतेप (Imhotep) शिल्पकार द्वारा निर्मित यह पिरेमिड आज भी अपने अतीत को आँचल में छिपाए अज्ञात भविष्य की कल्पना में खोया हुआ सा मिश्र के विस्तृत् मरुस्थल में गर्वोन्नत मस्तक लिए खड़ा हुआ है। २६०० ई० पू० में फराओह खुफु या च्योपस (Pharaoh Khufu or Cheopos) ने गिजा (Gizeh) के विशाल पिरेमिड का निर्माण कराया। इसके विशाल आकार-प्रकार का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यह विशाल प्रस्तर-समूह १३ एकड़ भूमि में फैला हुआ है और इसमें वृहत पाषाण खंडों का प्रयोग किया गया है जिनकी संख्या लगभग २,३००,०० है और आधुनिक इन्जीनियरों का अनुमान है कि एक-एक पाषाण खंड का वजन लगभग $२\frac{१}{२}$ टन है। इसकी ऊँचाई ४८१ फीट के लगभग है और इसकी एक आधार-भुजा ७५५ फीट के लगभग है। विशालता के प्रेमी प्राचीन मिश्रवासियों द्वारा निर्मित यह पिरेमिड आधुनिक युग के सर्व-साधन-सम्पन्न इन्जीनियरों को भी आश्चर्य-चकित कर देता है। यह कहा जाता है कि लगभग १,००,००० मजदूरों ने २० वर्षों तक कार्य करके इसे बनाया था। २५०० ई. पू. तक पिरेमिडों का निर्माण चलता रहा और मेम्फिस पिरेमिडों की नगरी हो गई। सम्राटों के पिरेमिडो के निकट ही अनेक सम्बन्धियों के पिरेमिड बनाये गये। ये पिरेमिड मिश्रवासियों के इस विश्वास का प्रतीक है कि वे एक पारलौकिक जीवन में विश्वास करते थे।

मध्यकालीन साम्राज्य या द्वितीय संघ (The Middle Kingdom or The Second Union)—मिश्र का यह गौरव अधिक समय तक स्थिर न रहा। उत्थान के पश्चात पतन अवश्यम्भावी है। मिश्र में भी यही हुआ। पिरेमिड-कालीन शासकों के बाद शासन में अस्थिरता के लक्षण परिलक्षित होने लगे। सुव्यवस्था एवं कुशल शासन के लिए जैसे दृढ़ शासकों की आवश्यकता होती है वैसे शासक पिरेमिड-युग के साथ ही विलीन हो गये। मिश्र के भिन्न प्रांतों में अव्यवस्था फैलने लगी जिसे कमजोर शासक दूर न कर पाये। यह वह समय था जबकि राजा राज-कार्य में रुचि लेने के बजाय ऐश-आराम और स्वार्थपरता की ओर अग्रसर हो रहे थे। अराजकता अपने पाँव फैलाने लगी। यहाँ तक कहा जाता है कि मिश्र के सातवें राजवंश में ७० राजा हुए, जिन्होंने ७० दिन तक राज्य किया। लूट-मार ने देश की सामाजिक दशा को और बिगाड़ दिया, साम्राज्य के टुकडे होने लगे, प्रधान शासन-शक्ति राजा के हाथ मे स्थानीय शक्तिशाली सामन्तों के हाथों में आ गई। शोषण और अत्याचार के कारण आम जनता दुखी थी। यद्यपि नगरों का विकास हुआ परन्तु कृषक आर्थिक भार से परेशान था।

जनता में असन्तोष की भावना फैलने लगी। एक केन्द्रीय शक्ति के अभाव में देश में लड़ाई-झगड़े बढ़ने लगे। जीवन की सुरक्षा भी सम्भव न थी। शनैः शनैः देश अवनति की ओर बढ़ने लगा। जब मिश्र में यह गृह-कलह था उसी समय एक उच्चकुल के सरदार ने शासन सत्ता पर अधिकार करके ग्यारहवें राजवंश की स्थापना की। उसने थीबीज (Thebes) नामक नगर को लगभग २१६० ई. पू. में अपनी राजधानी बनाया। उसने पूरे देश पर ही अधिकार नहीं किया अपितु राज्य-सीमा को सीरिया तक बढ़ाने के प्रयत्न भी किये। सुव्यवस्था के साथ ही देश में फिर समृद्धि आई। व्यापर बढ़ा। उद्योग पनपने लगे। सिचाई का सुप्रबन्ध हुआ, कृषि की उन्नति हुई। कर-प्राप्ति के हेतु जनगणना का श्रीगणेश हुआ। नील नदी से एक नहर निकालकर भूमध्यसागर और लाल सागर को जोड़ा गया।

इस वंश की समाप्ति के साथ ही देश की समृद्धि भी विलीन होने लगी। देश की दशा फिर गिरने लगी। बारहवें राजवंश से अठारहवें राजवंश की स्थापना तक देश में घोर अव्यवस्था का बोलबाला रहा। इतिहासकार इस विषय में एकमत नहीं हैं कि यह अराजकता कितने वर्षों तक रही। कुछ इतिहासकारों का मत है कि यह दशा ५५० वर्षों तक रही। इसके विपरीत कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह अवधि २०० वर्ष तक ही रही। इस

अव्यवस्था-काल में ही सीरियावासी सैमेटिक लोगों ने मिश्र पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिए। फूट के कारण मिश्रवासी मुकाबला न कर सके और इन लोगों ने मिश्र पर अधिकार कर लिया। राजा हिकसॉस ने अपने राजवंश की स्थापना की जोकि मिश्री इतिहास में १६वें राजवंश के नाम से प्रख्यात है। इस राजवंश ने देश में शान्ति स्थापित की एवं मिश्री रीति-रिवाजों को अपनाकर मिश्रीवासियों के हृदय में स्थान बनाने की चेष्टा की और अपने इस प्रयत्न में वह कुछ सफल भी हुआ। परन्तु इस वंश के अंतिम शासकों के समय राज्य-प्रबन्ध में शिथिलता आने लगी और राजा की शक्ति क्षीण होने लगी। मिश्रवासी विदेशी शासन को कभी भी पसन्द नहीं करते थे। शासन-प्रबन्ध बिगड़ता गया और राजाओं के अत्याचार भी बढ़ने लगे। अन्त में १५८० ई. पू. के लगभग ऊपरी मिश्र (Upper Egypt) के एक शक्तिशाली सामन्त अमोसिस (Amosis) ने मिश्रवासियों को संगठित किया और हिकसॉस वंश का अन्त करके १८वें राजवंश की स्थापना की।

अमोसिस (Amosis) के राज्य काल से ही मिश्री इतिहास का वह युग प्रारंभ होता है जिसे इतिहासकारों ने साम्राज्यवादी युग के नाम से पुकारा है। १५८० ई. पू. अमोसिस एवं कमोसिस नामक दो सरदारों ने हिकसॉस शासकों को पराजित करके मिश्र को पराधीनता से मुक्त किया। अमोसिस ने १८वें राजवंश की स्थापना करके एक नवीन युग का सूत्रपात किया। यह मिश्र के इतिहास का स्वर्ण-युग था।

इस राजवंश के शासन-काल में मिश्र ने अद्वितीय उन्नति की। राज्य-विस्तार के हेतु अनेक युद्ध लड़े गये एवं पड़ौसी राज्यों पर आक्रमण आयोजित किये गये। अमोसिस के पश्चात आमेनहोतेप प्रथम (Amenhotep I) सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने अपने अल्प शासन-काल में अस्त-व्यस्त सामाजिक जीवन में स्थिरता स्थापित करने की चेष्टा की। आमेनहोतेप प्रथम के बाद थटमोज प्रथम (Thutmose I) ने राज्य-सत्ता ग्रहण की। अपने पूर्वजों की भाँति उसने भी हिकसॉस लोगों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा। उसने अपनी राज्य-सीमा फरात नदी (Euphrates) तक बढ़ा ली। उसके बाद उसका पुत्र थटमोज द्वितीय गद्दी पर बैठा परन्तु उसकी बहिन हेतशेपशुत (Hatshep-shut) ने उसे सत्ता-च्युत करके शासन की बागडोर स्वयं अपने हाथों में ले ली। विश्व-इतिहास में वही प्रथम महिला शासक थी, जिसने सर्वप्रथम राज्य किया। वह दृढ़-निश्चयी, साहसी एवं बुद्धिमान नारी थी। उसने अपने निकट-

वर्ती राज्यों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये, शासन में एकरूपता उत्पन्न करने की चेष्टा की और अनेक मन्दिरों एवं भवनों का निर्माण किया। करनाक (Karnak) के विशाल एवं भव्य मन्दिर का निर्माण उसी के राज्य-काल में हुआ था। क्लियोपैट्राज नीडिल्स (Cleopatra's Needlles) नामक इमारतों का निर्माण भी उसी के समय में हुआ था। हेतशेपशुत का पति, थौटमोज तृतीय जो कि अपनी पत्नी से आयु में छोटा था, अपनी पत्नी के दस वर्ष के शासन-काल में राज-सत्ता का उपभोग न कर सका।

हेतसेपशुत की मृत्यु के बाद थौटमोज तृतीय मिश्र का राजा हुआ। वह अपनी पत्नी से इतनी घृणा करता था कि उसने हेतशेपशुत द्वारा निर्मित सब इमारतों के चारों ओर बड़ी-बड़ी दीवारें बनवा दीं ताकि लोगों की दृष्टि उन पर न जावे। अनेक इमारतों पर से उसने उसका नाम मिटवा दिया। १८ वें एवं १९ वें राजवंश में वह सर्वाधिक तेजस्वी एवं प्रतापी शासक हुआ। वह एक महान योद्धा था। उसने मिश्री साम्राज्य का विस्तार करने के हेतु अनेक युद्ध लड़े। उसके पास एक विशाल स्थल-सेना और एक शक्तिशाली जहाजी बेड़ा था। उसने सूडान, सीरिया, फिलस्तीन एवं पश्चिमी एशिया के कई छोटे राज्यों को विजय करके अपने राज्य में मिला लिया। इसके ५० वर्ष के राज्य-काल में मिश्र के साम्राज्य में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। थौटमोज ने एशिया द्वीप-समूह को भी जीत लिया था और अपने एक योग्य सेनापति को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया। वीरता, शौर्य एवं विजयों के कारण ही उसे 'मिश्र का नैपोलियन' कहा जाता है। अपने पूर्वजों की भाँति थौटमोज तृतीय ने भी मिश्री शिल्प एवं स्थापत्य-कला की उन्नति में अमूल्य योग-दान दिया। थीबीज, हीलियोपोलिस एवं अन्य अनेक स्थानों पर उसने सुन्दर मीनारों एवं मन्दिरों का निर्माण कराया। कारनाक के विश्वविख्यात मन्दिर में उसने अनेक प्रकोष्ठों एवं स्तम्भों का निर्माण कराया।

थौटमोज तृतीय के पश्चात् इतिहास हमारा परिचय आमेनहोतेप तृतीय से कराता है। वह एक सहृदय एवं उदार शासक था। यद्यपि वह थौटमोज की भाँति महान योद्धा न था। थौटमोज तृतीय ने मिश्र को एक महान साम्राज्य दिया; आमेनहोतेप ने उसे एक स्थायी प्रशासन प्रदान किया। लक्सर के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण उसी के समय हुआ था। इसके अतिरिक्त उसने अनेक भव्य एवं सुन्दर पिरेमिड एवं मूर्त्तियाँ बनवाईं।

आमेनहोतेप के उपरान्त उसका पुत्र आमनहोतेप चतुर्थ मिश्र का फराओह

हुआ। वह ई० पू० १३७५ के लगभग सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके १७ वर्ष के राज्यकाल में मिश्री साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया था। इसका मूल कारण यह था कि आमेनहोतेप चतुर्थ एक शान्तिप्रिय राजा था और रक्तपात एवं युद्धों से घृणा करता था। आमेनहोतेप की महानता युद्धों एवं विजयों के कारण नहीं है, न ही वह कुशल शासन-प्रबन्ध के कारण से है। इन दोनों बातों में वह अपने महान पूर्वजों की तुलना में अत्यन्त अयोग्य राजा हुआ। उसकी वास्तविक महानता उसके मौलिक विचारों एवं क्रान्तिकारी धार्मिक सुधारों में निहित है। वह एक भावुक, विचारशील एवं दयालु राजा था। वह अपने समय से कहीं आगे था। वह एक महान दार्शनिक था और अपने प्रगतिशील विचारों से प्रेरित होकर उसने मिश्र के तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में अनेक क्रान्तिकारी सुधार किए। इस दृष्टि से उसे हम 'मिश्र का अशोक' कह सकते हैं। उस समय सम्पूर्ण मिश्र का कोई सर्व-प्रचलित धर्म न था। प्रत्येक प्रान्त के, प्रत्येक प्रदेश के—यहाँ तक कि प्रत्येक गाँव के पृथक पृथक अपने-अपने अलग-अलग देवता थे। धार्मिक दृष्टि से मिश्रवासियों की दशा उस समय वैसी ही थी जैसी कि आजकल विश्व के अनेक आदि-वासियों की है। कबीले और परिवारों के अपने अपने देवता और देवियाँ थीं। धार्मिक एकता का अभाव था। धर्म के वास्तविक महत्त्व से लोग अपरिचित थे। सूर्य देव राँ (Ra) यमलोक का देवता औसिरिस (Osiris) एवं उसकी पत्नी आइसिस (Isis) इन दोनों के पुत्र होरस (Horus) सब बुराइयों का प्रणेता, सेट (Set) आदि अनेक देवताओं को विभिन्न रूपों में पूजा की जाती थी। मानवीय संस्कृति और सभ्यता की प्रगति में धर्म ने अदृष्ट रूप से जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, उसके इस रूप से प्राचीन मिश्रवासी अनभिज्ञ थे। पूजा के मूल में उस देवता-विशेष के प्रति भय एवं आतंक की भावना होती थी। धर्म के रचनात्मक एवं लोक कल्याणकारी रूप का प्राचीन मिश्रवासियों को ज्ञान न था। बहु-देव पूजा प्रणाली के स्थान पर आमेनहोतेप चतुर्थ ने केवल एक ही देवता की पूजा प्रारम्भ की। इस देवता का नाम एहन था और यह सूर्य का प्रतीक था। आमेनहोतेप एहन को निरञ्जन, सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिशाली मानता था। जड़-जङ्गम, चर-अचर सब उसके ही प्रकाश से आलोकित होते थे। वही जगत-पिता एवं सृष्टि-कर्त्ता था। वह प्रतिकार एवं प्रतिहिंसा की भावना से परे था। वह सबके प्रति समान रूप से दयालु था। इस प्रकार आमेनहोतेप ने धर्म को मूर्त्ति-पूजा से ऊपर उठा कर एक उच्च दार्शनिक आधार प्रदान किया, जिसका

अनुसरण ईसाई और यहूदी धर्मो ने भी किया। धर्म के जिम गूढ़ अर्थ से आज के इस अणु-युग में भी लोग अपरिचित है उसका उपदेश आमेनहोतेप ने आज से लगभग २६०० वर्ष पूर्व दिया। आमेनहोतेप ने इसी विचारधारा से अनुप्राणित होकर अपना नाम भी आमेनहोतेप से बदलकर अखेनातन (Akhnaton) रखा जिसका अर्थ है, एतन (Aton) को संतुष्ट करने वाला।' अखेनातन का देवता एतन प्रेम एवं श्रद्धा से सन्तुष्ट होने वाला था। इसीलिये अखेनात ने मन्दिरों मे एतन की मूर्त्ति की स्थापना नही की और न ही उसने राज्य की रक्षा के लिए शक्ति का सहारा लिया। उसने अपनी प्रजा को प्रेम और सहिष्णुता का उपदेश दिया और अपने वास्तविक जीवन मे उसने इन आदर्शो को व्यावहारिक रूप से अपनाया। यही कारण था कि उसने हिब्रू और हित्ती जाति के आक्रमणों के विरुद्ध तलवार नही उठाई, यद्यपि इसके परिणामस्वरूप उसे फिलस्तीन और सीरिया से हाथ धोना पड़ा। मिश्र की जनता इन क्रान्तिकारी सुधारो के लिए प्रस्तुत न थी और न ही वह बौद्धिक रूप से इस योग्य थी कि अखेनातन के मौलिक विचारो का आदर कर पाती। यह कारण था कि अखेनातन की मृत्यु के साथ ही उसके सुधार भी समाप्त हो गए। वह १८वे वंश का अन्तिम महान राजा था। अठारह वर्ष के शासनकाल के पश्चात ३० वर्ष की आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई। विश्व-इतिहास में शायद वह प्रथम सम्राट था जिसने शासन के हेतु शक्ति के स्थान पर प्रेम को अपनाया। उमने थीबीज के स्थान पर अमरना को राजधानी बनाया था।

अखेनातन के बाद उसका दामाद तूतनखातन (Tutankhaton) मिश्र का फराओह हुआ। परन्तु अपनी अल्पायु एवं अयोग्यता के कारण वह कुशलता-पूर्वक शासन न कर सका और शीघ्र ही विष देकर उसकी हत्या कर दी गई। होरेमहब (Horemhab) नामक एक सेनापति ने राज्य पर अधिकार करके फराओह का पद ग्रहण किया।

होरेमहब के बाद से १९ वें राजवंश का प्रारम्भ हुआ। इस वंश के जिन दो फराओहों का इतिहास मे प्रमुख रूप से उल्लेख है, वे थे सेती प्रथम (Seti I) एवं उसका पुत्र रेमजेज द्वितीय (Ramses II)। सेती प्रथम एक शक्तिशाली शासक था। अखेनातन के समय मे खोये हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त करना ही उसकी एकमात्र आकांक्षा थी। उसने हिब्रू एवं हिती लोगों से संघर्ष जारी रखा और उनके आक्रमणों से देश की रक्षा की। उसके

समय में देश में पुनः एक बार जीवन के प्रति एक उत्साह का भाव जागृत हुआ और लोग उत्साह-पूर्वक अपने खोये हुए वैभव को पुनः प्राप्त करने में जुट गए। सेती प्रथम के इस कार्य को उसके योग्य पुत्र रेमजेज द्वितीय ने पूर्ण किया। वह एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। मिश्री साम्राज्य के विस्तार के लिए उसने अनेक युद्ध किए। सूडान एवं सीरिया पर आक्रमण किए। हिती लोगों से वह लगातार १६ वर्ष तक लड़ता रहा। इस दीर्घकालीन युद्ध का अन्त रेमजेज द्वितीय एवं हिती सम्राट के मध्य एक मैत्री-सन्धि द्वारा हुआ। रेमजेज एक महान कला-प्रेमी राजा था। उसने न्यूबिया (Nubia) में अबू सिम्बल (Abu Simbel) के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण कराया। करनॉक (Karnak) एवं लक्सर (Luxar) के प्रसिद्ध मन्दिरों, अनेक भव्य स्तम्भ एवं प्रकोष्ठ बनवाए। उसे अपने यश और नाम से इतना प्रेम था कि उसने अपनी बनवाई हुई इमारतों पर अपनी कीर्त्ति के लेख लिखवाए, अपनी मूर्त्तियाँ स्थापित करवाईं और यहाँ तक कि अन्य राजाओं द्वारा निर्मित भवनों पर से उनके नाम मिटवा करके स्वयं अपना नाम खुदवाया।

सम्भवतः रेमजेज के पुत्र मरनैप्तेह (Mernepteh) के शासन-काल में ही हिब्रुओं के नेता मोजेज (Moses मूसा) ने अपनी जाति को दासता से मुक्त किया था। लगभग ११५० ई० पू० तक मिश्र में शान्ति-पूर्वक शासन चलता रहा। परन्तु ११५० ई० पू० के लगभग एजियन (Aegean) लोगों ने मिश्र पर आक्रमण किया, यद्यपि रेमजेज तृतीय ने उन्हें पराजित करके भगा दिया। फिर भी आक्रमणों का अन्त न हुआ। मिश्र का पतन आरम्भ हो चुका था। मिश्र पर क्रीट (Crete) साइप्रिस (Cipris) एवं भूमध्यसागर के उत्तरी देशों के आक्रमण आरम्भ हो गये थे। फराओह की सत्ता क्षीण हो रही थी। देश में अव्यवस्था थी। मिश्र का गौरव संध्याकालीन सूर्य की भाँति शनैः शनैः अस्त हो रहा था। जनता में विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने के लिये पर्याप्त संगठन और एकता न थी। शासकों ने अपनी सैनिक शक्ति बनाये रखने के लिये देशवासियों का भरोसा छोड़कर के विदेशियों को रखना शुरू कर दिया था। ई० पू० ७२२ में न्यूबिया-वासियों (Nubians) ने मिश्र पर अधिकार कर लिया और मिश्र के इतिहास में प्रथम बार फराओह के स्थान पर एक नीग्रो शासक सिंहासन पर बैठा। पर मानो भाग्य मिश्र से बिलकुल रूँठ गया हो, ई० पू० ६७० में असीरिया (Assyria) के सम्राट ईसारहेड्डन (Esarhaddon) ने मिश्र को जीत कर असीरियन साम्राज्य में मिला लिया। कालचक्र मिश्र के विरुद्ध चल रहा था—मिश्र-वासियों ने

पुनः समस्त शक्ति संचित करके विद्रोह किया, स्वाधीनता प्राप्त की और जब वे इसका उपभोग करने ही वाले थे तभी मिश्र को फिर संकट का सामना करना पड़ा। फराओह सैमिटिकस प्रथम (Psammetichus I ई० पू० ६६४--६१०) ने मिश्र को असीरियन प्रभुत्व से मुक्त किया। उसके उत्तराधिकारी नीको द्वितीय ने सीरिया पर पुन: अधिकार कर लिया। यहूदियों के राजा जोशिया को पराजित करके मार डाला। यह प्रसिद्ध युद्ध मैगिडो (Megiddo) नामक स्थान पर हुआ था। परन्तु शीघ्र ही नीको द्वितीय को स्वाल्डियन सम्राट नेबूचदनेजार (King Nebuchadnezzar the Chaldean) ने पराजित करके मिश्री साम्राज्य के पश्चिमी एशिया के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। मिश्र अभी इस पराजय की कटुता को भुला भी नहीं पाया था कि ई० पू० ५२५ में ईरान के सम्राट कैम्बेसिस (Cambyses) ने मिश्र पर आक्रमण करके उसे ईरानी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। थोड़े समय बाद मिश्र-वासियों ने फिर विद्रोह करके अपने को स्वाधीन घोषित कर दिया। ६० वर्षों (ई० पू० ४००--३४०) तक वे इस स्वतन्त्रता को उपभोग करते रहे। बार-बार के आक्रमणों से मिश्र सामरिक एवं सैनिक शक्ति की दृष्टि से बहुत कमजोर हो गया था, इसलिये ई० पू० ३३२ में सिकन्दर महान के आक्रमण के सम्मुख उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा। ई० पू० ३३२ से बाद का इतिहास मिश्र का क्रन्दन है; क्योंकि इसके बाद यूनानी, रोमन-वासी, अरब-वासी, तुर्क एवं अँग्रेजों ने मिश्र पर समय समय पर आक्रमण किये और राज्य किया। पथ पर पड़ी हुई तिरस्कृत वस्तु की भाँति मिश्र को विभिन्न लोगों ने पदाक्रान्त किया। १४ मार्च सन् १९२२ को अँग्रेजों ने मिश्र को स्वतन्त्र करके अहमद पाशा को सर्वप्रभुत्व सम्पन्न सम्राट स्वीकार किया।

मिश्र की सभ्यता ने अपने जीवन में अनेक प्रकार के उत्थान पतन देखे हैं। उसने यूरोप पर अधिक प्रभाव नहीं डाला। इसका कारण यह था कि यूरोप की सभ्यताओं का विकास यूनानियों और रोमनों के बाद हुआ और यह जातियाँ मिश्र की सभ्यता के बाद में ही अपना विकास कर सकी थी। प्राचीन क्रीट इत्यादि की सभ्यताओं पर मिश्र का सीधा प्रभाव पड़ा था। मिश्र का भारत से प्राचीनतम काल में भी सम्बन्ध था। मोहनजोदड़ो में प्राप्त अवशेषों से ऐसा प्रगट होता है। मिश्र में इतना विकास किस प्रकार हुआ इस पर भी दो मत हैं—

(१) मिश्र की सभ्यता ने अपने आप वहीं रह कर विकास किया।

(२) मिश्र में सभ्यता लाने वाले अन्यत्र (संभवतः भारत) से वहाँ जाकर बसे थे। लेकिन इसके कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिले हैं। अधिक से अधिक यही लगता है कि प्राचीन भारत और मिश्र में सम्बन्ध था, और एक दूसरे का प्रभाव ग्रहण करना कोई आश्चर्य की बात नहीं मानी जा सकती है। मिश्र ने जीवन के अनेक क्षेत्रों में विकास किया था, परन्तु उसमें भारतीय संस्कृति की सी भाव और विचार-समृद्धियाँ नहीं मिलतीं।

मिस्र की महान संस्कृति की नींव नील नदी की जल-राशि पर रखी गई थी। सुमेरियन, बैबिलोनियन एवं भारतीय संस्कृति की भाँति मिश्र की संस्कृति का जन्म एवं विकास नील नदी की लहरों के उतार-चढ़ाव के साथ हुआ। दजला-फरात और सिन्ध घाटी की सभ्यता की भाँति ही नील नदी की घाटी में भी आज से हजारों वर्ष पूर्व मानव ने घर और परिवार में रहना सीखा, कृषि और सिंचाई का प्रारम्भ किया, व्यापार के लिये विदेश यात्राएँ करना शुरू किया, प्रशासन के हेतु सेना रखना, अपने अन्तरतम के सौन्दर्य को सृजनात्मक रूप प्रदान करने के लिए भव्य भवनों, विशाल पिरेमिडों एवं सुन्दर मूर्तियों की रचना करना और अपनी सफलताओं एवं कीर्ति को चिरस्थायी बनाने के हेतु चित्रलिपि एवं वर्ण-लिपि का प्रयोग करना सीखा। आज से लगभग ८००० वर्ष पूर्व मिश्र में अनेक नगर राज्य थे। शनैः शनैः नगर राज्यों की शक्ति पारस्परिक युद्धों के परिणामस्वरूप क्षीण होती गई और ये राज्य अपने-अपने स्वार्थों के अनुसार अन्य राज्यों में मिलते गए। अन्त में सम्पूर्ण मिश्र में केवल दो ही राज्य रह गए—ऊपरी मिश्र एवं निचला मिश्र। मिश्र के इन दोनों भागों को मिला कर एक राष्ट्र का रूप देने का श्रेय मीनेस को है। इसी प्रकार आदिम मिश्रवासी ने कालान्तर में पशु-पालन, कृषि, कारीगरी एवं व्यापार अपनाए। व्यक्ति ने समाज को जन्म दिया और उसी के साथ मनुष्य ने वैवाहिक सम्बन्ध एवं पारिवारिक जीवन को अपनाया। इस प्रकार सभ्यता के विकास के साथ जीवन जटिल होता गया। प्राचीन मिश्र की सभ्यता का अध्ययन करने के हेतु यह आवश्यक है, हम प्राचीन मिश्र-वासियों के जीवन के प्रत्येक अंग से परिचित हों।

बच्चा पैदा होते ही रोता है और साथ ही, जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है, उसके हृदय में भय की भावना विकसित होती जाती है। इसीलिए व्यक्ति अज्ञात एवं अदृष्ट से आतंकित रहता है और उससे अपनी रक्षा करने के लिए उसे प्रसन्न एवं संतुष्ट रखना चाहता है। इस भावना से ही अंध-श्रद्धा के

अंकुर फूटे; पूजा का जन्म हुआ—देवी और देवताओं के अस्तित्व की कल्पना की गई। मिश्र का इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है। प्राचीन मिश्र में धर्म का रूप अस्थिर एवं अस्पष्ट था। स्थान-स्थान पर पृथक-पृथक मत या विश्वासों का बोलबाला था, भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न देवी-देवताओं की पूजा-होती थी। प्राकृतिक रहस्यों का उद्घाटन करना या रोग आदि के वास्तविक कारणों की खोज करना प्राचीन मिश्र-वासियों के लिये सम्भव न था। अज्ञानता ने भय को प्रश्रय दिया और यह भय ही मिश्रवासियों के धर्म और पूजा का आधार था। उस समय एक राष्ट्रीय या सार्वदेशिक धर्म जैसी कोई शक्ति न थी। धर्म के उच्च आध्यात्मिक या दार्शनिक महत्त्व से लोग परिचित न थे। जादू-टोनों में देवताओं की शक्ति का अनुमान लगाया जाता था। मिश्रवासी पशुओं की भी पूजा करते थे। बाज को देवता का प्रतीक मानते थे। वृषभ और बकरे की पूजा करते थे, क्योंकि उनके विश्वासानुसार ये पशु देवताओं के ही रूप थे। मिश्रवासी आर्यों की भाँति प्राकृतिक शक्तियों की भी पूजा करते थे। आकाश ('सिवु') पृथ्वी ('हाथोर') चन्द्रमा (सिन) और सूर्य ('रा' एवं होरस') की उपासना होती थी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्राचीन मिश्र में लगभग २२०० देवताओं की पूजा प्रचलित थी। मिश्री 'ममी' इस सत्य को भली-भाँति स्पष्ट करती है कि प्राचीन मिश्रवासी एक पारलौकिक जीवन में विश्वास करते थे और मृतक की आत्मा के सुख के लिए ही उसके शरीर को सुरक्षित रखते थे एवं उसके साथ उसके जीवन-काल की प्रिय एवं बहुमूल्य वस्तुएँ दफना देते थे। पिरामिडों में पाये गये इन मुर्दों का वास्तविक इतिहास ही मिश्र की सच्ची संस्कृति का सही विवरण है। प्राचीन मिश्रवासी मृत आत्माओं के पथ-प्रदर्शन एवं मनोरंजन के लिए पुस्तिकाएँ रख देते थे। 'मृत आत्माओं की पुस्तक' (The Book of the Dead) में मृत आत्माओं की भावी कठिनाइयों का सामना करने के उपाय होते थे। 'सिन्यूह की कहानी' (The Tale of Sinuhe) नामक एक कहानी प्राप्त हुई है जिससे ज्ञात होता है कि वह मृतकों के साथ इसलिए रख दी जाती थी ताकि उनकी आत्माओं को मनोरंजन प्राप्त होता रहे। राजा को देवता के समान समझा जाता था और उसकी मृत्यु के पश्चात उसकी मूर्ति की स्थापना की जाती थी।

राजा आमेनहोतेप चतुर्थ या अखनातन एकमात्र ऐसा व्यक्ति था जिसने धर्म के आध्यात्मिक मूल्य को समझा और उसे सांसारिक स्वार्थों की पूर्ति का साधन न मानकर आत्मोन्नति के हेतु प्रेरक-शक्ति के रूप में ग्रहण

किया। उसने एटन (सूर्य) की पूजा प्रचलित की। वह मूर्ति-पूजा का विरोधी था और निराकार एवं सर्वव्यापक सर्वोच्च शक्ति में विश्वास करता था। एटन ही वह महानतम शक्ति थी। उसके धर्म की व्याख्या बड़ी गूढ़ थी और उसका विश्वास था कि 'एटन' प्रत्येक प्राणी के प्रति पशु पक्षी अथवा मानव आदि सबके लिए समान रूप से दयालु है। वह इस ब्रह्माण्ड का सृष्टिकर्ता है और इसमें निवास करने वाले सब प्राणियों का पिता है। परन्तु जैसा कि प्रत्येक नवीन वैज्ञानिक व्याख्या के साथ होता आया है, अखेनातन का धर्म भी प्राचीन मिश्रवासियों में लोक-प्रिय न हो सका। उसकी विद्वतापूर्ण एवं दार्शनिक व्याख्या भैंस के सम्मुख बीन बजाने के समान सिद्ध हुई। इस प्रकार हम देखते हैं कि आत्मा की अमरता में ही प्राचीन मिश्रवासियों का जो विश्वास था वह केवल एकमात्र ऐसी महत्त्वपूर्ण बात थी जिसका प्रभाव अन्य धर्मों पर पड़ा।

मिश्र-वासियों का सामाजिक जीवन सदैव विकासोन्मुख रहा। राष्ट्रीय गौरव और भौतिक समृद्धि के साथ साथ उनका सामाजिक जीवन भी उन्नत होता रहा। प्रारम्भ में केवल दो ही वर्ग थे—शासक एवं शासित। परन्तु सभ्यता की प्रगति के साथ उनके जीवन में भी जटिलता आने लगी। कृषि-व्यवसाय प्रमुख पेशा था। अस्सी प्रतिशत जनता जीवन-यापन के हेतु कृषि पर निर्भर करती थी क्योंकि नील नदी से उन्हें पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता था। नील नदी के जल ने एक नए वर्ग के लोगों को जन्म दिया, जिनका मुख्य कार्य नील नदी से नहरें और छोटे छोटे बाँध बनाकर इच्छुक व्यक्तियों को दूर दूर तक जल सुलभ करना था। इस सेवा के बदले में वे 'कर' या 'पारिश्रमिक' वसूल करते थे। कालान्तर में इसी वर्ग ने कृषकों पर प्रभुत्व जमाकर अपनी सम्पत्ति में वृद्धि की और मिश्र में सामन्तवाद का जन्म हुआ। स्थान स्थान पर सामन्त थे जो अपने-अपने विशेष क्षेत्रों में निवास करने वाले किसानों से कर वसूल करते थे और अपने क्षेत्रों में विस्तार करने के हेतु पड़ौसी सामन्तों से युद्ध करते थे। राजा की शक्ति के साथ सामन्तों की शक्ति को भी मान्यता प्राप्त होने लगी। सामन्तों के अतिरिक्त एक बुद्धिजीवी वर्ग था। यह पुरोहित वर्ग था। धार्मिक सत्ता एवं अपने उच्च ज्ञान के कारण जनता में उनका स्थान सर्वोपरि था। प्रारम्भ में पुरोहित-पुजारी अपनी प्रकाण्ड विद्वता, असीम सहिष्णुता एवं महान त्याग के कारण जनता द्वारा आदृत होते थे। परन्तु शनैः शनैः व्यक्तिगत श्रेष्ठता का लोप होता गया और पुरोहित का कार्य पैतृक होता गया। ये लोग जनता के पथ-प्रदर्शक समझे जाते थे

एवं जनता दैवी-प्रकोप अथवा रोग से बचने के हेतु इनकी ही शरण लेती थी।

कालान्तर में देश में दो और वर्गों ने जन्म लिया। राजाओं के वैभव ने देश में स्थापत्य एवं मूर्ति कला को प्रोत्साहन दिया जिसके फलस्वरूप कारीगर लोग अस्तित्व में आये। पुरोहित एवं सामन्तों की भाँति उनके हाथों में कोई सत्ता न थी। फिर भी मिश्र में उन्हें समाज में अपनी कारीगरी के कारण पर्याप्त आदर प्राप्त था। मिश्र में दास-प्रथा प्रचलित थी। मिश्री फराओह विदेशी आक्रमणकारियों को पराजित करने पर उनके सैनिकों को बन्दी बनाकर दास के रूप में प्रयुक्त करते थे। अपराधियों से भी बलपूर्वक सेवा-कार्य कराया जाता था। मिश्र के विशाल पिरेमिडों एवं मन्दिरों के निर्माण में इन गुलामों से ही काम लिया जाता था।

देश एवं समाज में फराओह का स्थान सर्वोपरि था। वह राजसत्ता पर पूर्ण अधिकार रखता था। तत्कालीन प्रचलित विश्वासानुसार वह देवता होता था। अतः धार्मिक क्षेत्र में भी सर्वोच्च होता था। वह अपनी प्रजा के जीवन का स्वामी होता था। वह निरंकुश शासक होता था। उसके अनेक रानियाँ, दासियां एवं दास होते थे।

प्राचीन मिश्रवासियों में बहु-विवाह प्रथा प्रचलित थी। प्रारम्भ में जब मिश्र में मातृसत्तात्मक (Matriarchal) समाज था, पुरुष पत्नी के आधीन था। परन्तु पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने जब मातृसत्तात्मक व्यवस्था पर अधिकार कर लिया तो बहु विवाह का उद्भव हुआ। परन्तु राजकुल से सम्बन्धित उच्च व्यक्तियों एवं सामन्तवर्ग के अतिरिक्त सामान्य मिश्रवासी प्रायः एक ही विवाह करता था। वैवाहिक सम्बन्धों का पालन गम्भीरतापूर्वक किया जाता था। समाज में स्त्री का आदर होता था और यद्यपि उसको कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त न थे, फिर भी वह पुरुषों के समान ही स्वतन्त्रता का उपभोग करती थी। प्रारम्भ में मिश्र में भगिनी विवाह भी प्रचलित था, जैसा कि वह आज भी कई देशों के आदिवासियों में प्रचलित है। पवित्रतम रक्त एवं श्रेष्ठतम वंश की कन्या को प्रधानता दी जाती थी, इसीलिए लोग अपनी भगिनी से विवाह कर लेते थे। बाद में इस प्रथा का लोप हो गया।

आदिकाल में मिश्रवासी प्रायः नग्न रहते थे। परन्तु आत्म-ज्ञान ने लज्जा के भाव को जन्म दिया और स्त्रियों ने अपने कटि-प्रदेश को पशुओं की खाल से ढकना सीखा। पुरुषों ने उनका अनुसरण किया। धीरे-धीरे उन्होंने तन को

ढकने के लिए अन्य वस्तुओं को अपनाया। साम्राज्यवाद से पूर्व मिश्र में वस्त्र निर्माण का आविष्कार नहीं हुआ था। अतः किशोर अवस्था तक प्रायः बालक एवं बालिकाएँ नग्न रहतीं, परन्तु यौवन-आगमन के साथ वे अपनी कटि के चारों ओर खाल लपेटना शुरू कर देते थे। तन का ऊपरी भाग नग्न रहता था। युवतियाँ कमर में गोलियों की माला पहनती थीं। बाद में जब व्यापार बढ़ने लगा और देश में समृद्धि आई तो मिश्रवासियों ने विदेशियों से धोती पहनना सीखा। निर्धन वर्ग के लोग स्त्री एवं पुरुष दोनों धोती पहनते थे। उच्च वर्ग के लोग कीमती वस्त्र पहनते थे। मिश्र में साम्राज्यवाद युग से वस्त्र-निर्माण आरम्भ हो गया था। तभी से मिश्रवासियों की वेश-भूषा में बहुलता और विविधता भी आ गई थी।

प्राचीन मिश्रवासियों को अलंकारों एवं आभूषणों के प्रति बहुत चाव था। स्त्री और पुरुष दोनों ही समान रूप से आभूषणों का प्रयोग करते थे। इतिहासकार डेविस के मतानुसार मिश्र ही वह देश था जहां सर्वप्रथम धातु का उपयोग आरम्भ हुआ। मिश्रवासियों ने सिनाई के क्षेत्र में तांबे की खानों की खोज की। अतएव यह अनुमान लगाया जाता है कि मिश्रवासियों ने काष्ठ, पाषाण एवं दुर्लभ सीपियों को ही अलंकार के रूप में प्रयुक्त न किया अपितु उन्होंने धातु के आभूषणों से भी अपने शरीर को अलंकृत करना सीख लिया था। थीबीज (Thebes) के निकट आमेनहोतेप की कब्र में जो बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई है उससे ज्ञात होता है कि सोने और चांदी के आभूषणों का प्रयोग उस समय के राजकुल के व्यक्तियों द्वारा सामान्य रूप से किया जाता। राजकुल एवं धनी सामन्त वर्ग के लोग अत्यन्त कीमती वस्त्र पहनते थे जिन पर सोने और चांदी की सजावट होती थी। स्त्रियां कानों में कुण्डल, गले में हार, बाजुओं में बहुमूल्य कंगन एवं हाथों में सुन्दर कंकन धारण करती थीं। अधरों एवं नाखूनों को सुन्दर बनाने के लिए स्त्रियां विशेष वस्तुओं के लेप का प्रयोग करती थीं। मुख के सौन्दर्य में वृद्धि के हेतु वे सुगन्धित पाउडर आदि का प्रयोग करती थीं। पुरुष अंगूठी एवं कुण्डलों का प्रयोग करते थे एवं गले में गोलियों की मालाएँ पहनते थे। प्राचीन मिश्रवासियों की वेश-भूषा से स्पष्ट हो जाता है कि अपने शारीरिक सौन्दर्य के प्रति मनुष्य का आकर्षण आज से हजारों वर्ष पूर्व भी वैसा ही था जैसा कि आधुनिक युग में है।

जीवन के अनेक क्षेत्रों में मिश्रवासी अपने समकालीन अन्य देशवासियों

से आगे थे। साहित्यिक क्षेत्र में मिश्रवासियों की प्रगति प्राचीन सुमेरियन या बेबिलोनवासियों से कहीं अधिक अच्छी थी यद्यपि अभी तक यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि सुमेरियन या मिश्रवासियों में से किसने किससे भाषा-ज्ञान सीखा। दोनों का भाषा-ज्ञान समान होते हुए भी मिश्रवासियों ने लेखन-कार्य को अपेक्षाकृत शीघ्र ही अपना लिया। प्राचीन मिश्र में प्रारम्भ में चित्र-लिपि प्रचलित थी। ये चित्र व्यंजनों के प्रतीक-मात्र थे। प्राचीनतम मिश्री लेखों में चित्र-लिपि का ही प्रयोग मिलता है। यह लिपि संकेत लिपि न थी। वास्तव में मिश्रवासियों को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम विचार-लिपि का आविष्कार किया। प्राचीन मिश्रवासी केवल संज्ञाओं एवं सर्वनाम के लिये चित्रों का प्रयोग न करते थे अपितु क्रिया का बोध कराने के लिए भी चित्रों का उपयोग करते थे जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आज से लगभग ६००० वर्ष पूर्व मिश्रवासियों ने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट लिपि का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। फिर भी प्राचीन मिश्र में वर्ण-लिपि का पूर्ण ज्ञान न था। इस विषय में उन्होंने सुमेरियन लोगों का अनुकरण किया। उनकी सहायता से उन्होंने अपनी २४ व्यंजनों की वर्ण-माला का विकास किया।

सरकण्डों की कलम, स्याही, कागज और दवात का प्रयोग लेखन-सामग्री के रूप में होता था। सम्भवतः इस क्षेत्र में मिश्रवासी सबसे अग्रणी थे। उन्होंने कागज (पेपिरस कागज), कलमदान एवं स्याही के रूप में आधुनिक सभ्यता को अमूल्य निधि प्रदान की है। सरकण्डों की कलम का आविष्कार भी उन्होंने किया था। वे मिट्टी की दवातों और गोंद एवं कुछ सूखी वनस्पतियों के चूर्ण से बनी हुई स्याही का प्रयोग करते थे। इंगलैण्ड के अजायबघर में कुछ ऐसे ही प्राचीन कागज हैं जो मिश्र के प्राचीन खण्डहरों से प्राप्त किए गए हैं। इनमें कुछ ऐसे भी कागज हैं जो १३५ फीट लम्बे और १७ इंच चौड़े हैं।

इस प्रकार प्राचीन मिश्रवासियों ने साहित्यिक प्रगति के हेतु आवश्यक सब लेखन-सामग्री बनाना सीख लिया था। इसके फलस्वरूप मिश्र में साहित्य के क्षेत्र में अद्वितीय प्रगति हुई। देवताओं की स्तुति एवं महान राजाओं की प्रशंसा में काव्य-रचना होती थी। मृत आत्माओं के मनोरंजन के लिए कहानियाँ लिखी जाती थीं। ऐसी ही एक कहानी मिश्र के एक प्राचीन पिरामिड से प्राप्त हुई है। इसका नाम है 'सिन्यू की कहानी'। इसके अतिरिक्त मृत-आत्माओं के पथ-प्रदर्शन के लिए कुछ निर्देश भी लिखकर उसकी कब्र में रखे

जाते थे। चित्र-लिपि में लिखी गई ये पुस्तकें पेपिरस कागज को बड़ी-बड़ी तहों पर लिखी जाती थीं। उस समय इतिहास एवं धर्मशास्त्र पर भी पुस्तकें लिखी जाती थीं। लेख बहुधा वर्णनात्मक होते थे और जीवन के सही रूप को चित्रित करते थे।

प्राचीन मिश्रवासियों की कला के प्रति विशेष अभिरुचि थी। यद्यपि साधारणतः मकान मिट्टी के बनते थे, मगर देव-मन्दिर, पिरामिड एवं अन्य

चित्र ३०—क्रीट का पूज्य वृषभ

चित्र ३१—पार्थियनों का पूज्य वृषभ

चित्र ३२—मोअन जो-दड़ों का वृषभ

पवित्र भवन विशाल पाषाण-खण्डों से बनते थे। कालान्तर में बाद के फरा-ओहों ने भी अपने महलों के लिए भी पत्थरों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। स्थापत्य कला के क्षेत्र में मिश्र ने आश्चर्यजनक उन्नति की थी। मिश्रवासियों को 'विशालता' से बड़ा प्रेम था। उनके पिरेमिड और वृहत देव-मन्दिर इस बात के जीते जागते नमूने हैं। धातु-युग से पूर्व सूर्य-ताप

द्वारा तैयार की गई ईंटों को कब्रों के स्तूप बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। परन्तु ताँबे के आविष्कार के फलस्वरूप पत्थर की बड़ी-बड़ी शिलाओं को काटना छाँटना सुगम हो गया। फराओह जोसर (Zoser) द्वारा निर्मित सोपान-पिरेमिड मिश्र का प्राचीनतम पिरेमिड है। ३००० ई० पू० में इम्होतेप (Imhotep) नामक शिल्पकार ने इसे बनाया था। इसके लगभग एक शताब्दी पश्चात फराओह खुफु या च्योपस (Khufu or Cheopos) ने एक अन्य विशाल पिरेमिड का निर्माण कराया जो गिजेह के पिरेमिड के नाम से प्रसिद्ध है। यह विशाल प्रस्तर-खण्ड लगभग १३ एकड़ भूमि पर फैला हुआ है। इसमें लगभग २,३००,००० शिला-खण्डों का प्रयोग किया गया है जिनमें से प्रत्येक शिला-खण्ड का भार लगभग २½ टन आँका जाता है। यह ४८१ फीट ऊँचा है और इसकी प्रत्येक आधार-भुजा ७५५ फीट लम्बी है। यह पिरेमिड मिश्र की वर्तमान राजधानी काहिरा के समीप ही स्थित है। इसके चारों ओर अनेक अन्य छोटे पिरेमिड हैं जो अन्य फराओहों एवं उनके सम्बन्धियों के हैं। आज से ५००० वर्ष पूर्व यंत्रों के अभाव में कैसे ऐसी विशाल इमारतों का निर्माण हुआ होगा, यह आधुनिक इन्जीनियरों के लिए आज भी आश्चर्य का विषय है।

कारनाक, लक्सर, थीबीज एवं अबू सिम्बेल के विशाल एवं भव्य मन्दिर मिश्री शिल्पकला के अमर-स्मारक हैं। कारनाक का मन्दिर वास्तुकला का अद्भुत नमूना है। यह लगभग चौथाई मील लम्बा है। इसको बनवाने में लगभग दो हजार वर्ष लगे और भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न राजाओं ने इसका निर्माण कराया है। इसका निर्माण सामन्त युग में आरम्भ हुआ, फराओहों के गौरवपूर्ण युग में इसका अधिकांश भाग पूर्ण हुआ और उसके नवीनम भागों का निर्माण यूनान के टाल्मी सम्राटों के समय हुआ। मिश्र के अंधकार-पूर्ण इतिहास को अनुपम आलोक से प्रकाशित करने का बहुत कुछ श्रेय इस विशाल मन्दिर को है। इसके सर्वाधिक भव्य एवं सुन्दर भागों का निर्माण पिरामिडकालीन फराओहों के समय में हुआ था। इस मन्दिर में स्तम्भों से बना एक विशाल हॉल है जो ६७० फीट लम्बा और ३८ फीट चौड़ा है। ऐसे ही अनेक और विशाल हॉल हैं जो यद्यपि इससे कुछ छोटे हैं।

यह अकेला हाल ही पेरिस स्थित नोट्रे-डेम गिरजाघर के बराबर है। इसमें १३६ स्तम्भों की ६ कतारें हैं। बीच में ७६ फीट ऊँचे १२ स्तम्भ हैं जिनमें से प्रत्येक के ऊपर १०० व्यक्ति सुगमतापूर्वक बैठ सकते हैं। यह

मन्दिर स्वयं अपने में ही एक वृहत अद्भुतालय है। कारनाक के मन्दिर से लगभग १—१½ पर प्राचीन मिश्र का दूसरा प्रसिद्ध मन्दिर है जो अपनी भव्यता एवं सुन्दरता के लिए उतना ही प्रसिद्ध है जितना कि कारनाक का मन्दिर है। आमेनहोतेप तृतीय और रानी हेतशेपसुत ने इसका निर्माण कराया था। यह लक्सर के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। इन दो मन्दिर के अतिरिक्त थीबीज में अन्य अनेक मन्दिर और हैं। इन मन्दिरों की दीवारों पर सुन्दर चित्रकारी की गई थी। इन चित्रों के द्वारा हमें तत्कालीन मिश्र के सामान्य जीवन का ज्ञान प्राप्त होता है। प्राचीन मिश्र के राजाओं की युद्ध-यात्राओं के चित्र प्रमुखता से प्राप्त होते हैं। फिर भी, चमकदार सफेद और सुनहरी रंगों की विशेषता के अतिरिक्त इन चित्रों में रंग-सामञ्जस्य और शैली की कोई विशेषता नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन मिश्रवासी चित्र-कला में इतनी प्रगति न कर पाये थे जितनी कि स्थापत्य कला या मूर्त्ति-कला में की।

१९वें वंश के फराओह रेमजेज द्वितीय ने अबू सिम्बेल में एक विशाल मन्दिर बनवाया था जो १८५ फीट लम्बा और ९० फीट ऊँचा था। मन्दिरों के अतिरिक्त मूर्त्ति-कला की ओर भी मिश्रवासी समान रूप से आकृष्ट हुए थे। लक्सर के मन्दिर के पास ही अमनहोटेप तृतीय की दो विशाल मूर्त्तियाँ हैं जो अपनी सादगी, विशालता और रचना-सौष्ठव के लिये प्रसिद्ध हैं। एक ही पत्थर को काटकर बनाई हुई ये मूर्त्तियाँ लगभग ९० फीट ऊँची हैं और इनका वजन लगभग १००० टन है। इसी प्रकार रेमजेज द्वितीय द्वारा बनवाई गई मूर्त्तियाँ भी प्राचीन मिश्र की कला का उपयुक्त प्रतिनिधित्व करती हैं। मिश्र के सोपान पिरेमिड के पास बनी हुई स्फिक्स तो विश्व के लिये एक अत्यन्त आश्चर्यजनक वस्तु है। यह एक ऐसी मूर्त्ति है, जिसका चेहरा पुरुष सदृश है और शरीर शेर जैसा है। इस मूर्त्ति की लम्बाई लगभग १६० फीट है और ऊँचाई ७० फीट है। इसका केवल सिर ३३ फीट लम्बा और ७० फीट चौड़ा है। इसके अतिरिक्त मिश्र में अनेक प्रस्तर-शिलाएँ (आवलिस्क–Obelisk) बनवाई गई थीं। 'क्लिओपेट्रा की सुई' (Cleoepatra's Needles) नामक प्रस्तर-शिला विश्व-प्रसिद्ध जिसका निर्माण रानी हेतशेपशुत के राज्य काल में हुआ था। वास्तव में मिश्रवासियों ने किसी अन्य क्षेत्र में इतनी दक्षता और प्रगति नहीं की थी जितनी कि मूर्त्ति-कला और वास्तु-कला में की।

मिश्रवासी बड़े अध्यव्यवसायी एवं परिश्रमी थे। नील की बाढ़ के रहस्य को समझने के लिये उन्होंने बड़े धैर्य-पूर्वक उसकी बाढ़ों का लेखा-जोखा

रखा और अन्त में उन्होंने कुछ ऐसे निष्कर्ष निकाले जिनसे हम लोग आज भी लाभान्वित हो रहे हैं। बाढ़ की नियमितता एवं ग्रहों और उपग्रहों की गणना के अनुसार उन्होने विश्व में सबसे पहले वर्ष को ३६५ दिनों में विभाजित किया था। यह उनकी ज्योतिष की एक महान सफलता थी। नील नदी से सिंचाई के लिये एवं विशाल पिरेमिडों के निर्माण में वे लोग रेखा-गणित के सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करते थे। परन्तु उनका दृष्टिकोण उपयोगितावादी था—वैज्ञानिक नहीं। यही कारण था कि जहाँ उन्होंने भवनों के निर्माण के लिये नाप-तोल के साधन खोज निकाले, वे इस आधार पर कोई वैज्ञानिक सिद्धान्त न बना सके। उन्हें गणित का काफी ज्ञान था परन्तु यह ज्ञान भी वहीं तक सीमित था जहाँ तक कि वह उनके लिये लाभदायक था। उनका गणित काफी कठिन था। पहाड़ा, गुणा, भाग आदि से भी वे पूर्ण रूप से परिचित न थे। उन्हें दशमलव का ज्ञान न था।

मिश्रवासी चिकित्सा के क्षेत्र में कोई मौलिक खोज न कर सके। इस विषय में वे रूढ़िवादी एवं अन्धविश्वासी थे। यद्यपि कुछ रोगों के लिए उन्होंने कुछ नुस्खे बना लिये थे फिर भी पुरोहितों के मन्त्रों पर प्रधानतया विश्वास किया जाता था कि वे मन्त्रोच्चारण द्वारा रोग-निदान करेंगे। प्राचीन मिश्रवासी मृत व्यक्ति को चीरना पाप समझते थे। अतः वे शरीर के मूल भागों से पूर्णतः परिचित न हो पाये थे। कुछ विद्वानों के मतानुसार वे मनुष्य के सिर की चीड़ाफाड़ी करते थे और रुग्ण भाग को निकाल कर उसकी जगह चाँदी के टुकड़े चिपकाया करते थे। इसमें रोगी प्रायः ही मृत्यु को प्राप्त होता था। चीराफाड़ी करने के समय पर भी अत्यन्त पीड़ा होती थी। संभवतः यूनानी चिकित्सा पद्धति पर मिश्री चिकित्सा शास्त्र ने अपना प्रभाव डाला है।

दजला और फरात की घाटी की सभ्यताएँ—मनुष्य का जीवन किस प्रकार प्राकृतिक शक्तियों से प्रभावित होता है यह हम देख चुके हैं। दजला एवं फरात—घाटियों की सभ्यताएँ भी इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं। मनुष्य उसी स्थान में बसने की इच्छा करता है जहाँ वाह्य परिस्थितियाँ उसके अनुकूल होती हैं। कृषि युग से पूर्व भी मनुष्य इन परिस्थितियों की ओर पूरा ध्यान देता था। अन्तर केवल यह था कि जब मनुष्य उर्वरा भूमि को इतना महत्त्व न देता था जितना कि वह हरे-भरे उन मैदानों या घाटियों को देता था जहाँ उसे अपने पशुओं के लिए पर्याप्त मात्रा में घास प्राप्त हो जाती थी। परन्तु

भ्रमणशील अवस्था का परित्याग करने के उपरान्त स्थायी रूप से निवास करने के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने लिए जल, भोजन एवं घर का प्रबन्ध करे। प्रधानतः यही तीन वे आकर्षण थे जो कि मनुष्य को किसी प्रदेश विशेष में बसने के लिए प्रेरित करते थे। दजला एवं फरात नदियों के मध्य में भी एक ऐसा ही प्रदेश था जो अत्यन्त उर्वरा भूमि के कारण अनेक महान संस्कृतियों का क्रीड़ा-स्थल बना। यहाँ की भूमि इतनी उपजाऊ थी कि यहाँ अन्य निकटवर्ती प्रदेशों की अपेक्षा कहीं अधिक गेहूँ पैदा होता था। सम्भवतः इस देश में सर्वप्रथम गेहूँ पैदा हुआ होगा क्योंकि यहीं वह जंगली रूप में उगा हुआ पाया गया था। यहाँ की मिट्टी ईंटें बनाने के लिए बड़ी अच्छी थी। जल की तो कमी ही न थी। दोनों नदियों के बीच में स्थित होने के कारण ही इसे ग्रीकवासियों ने मैसोपोटामिया के नाम से पुकारा।

इस प्रदेश की सम्पन्नता और समृद्धि ने ही मैसोपोटामिया का इतिहास निर्माण किया है। भिन्न समयों में यहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों के व्यक्तियों ने आक्रमण किए, इस भूमि पर अधिकार किया और अपनी नई संस्कृति का निर्माण किया। मैसोपोटामिया की प्राचीनतम संस्कृति संभवतः मिश्र की संस्कृति से भी अधिक प्राचीन थी। यह संस्कृति, जिसे सुमेरियन संस्कृति कहते हैं, ६००० ई० पू० उन्नति के शिखर पर थी। सुमेरियन लोग यहाँ आकर बसने वालों में प्रथम थे। उनके आगमन से पूर्व यहाँ किसका निवास था—यह अभी अज्ञात है। सुमेरियन लोगों के नाम पर यह प्रदेश 'सुमेरिया' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। सुमेरियन लोगों से जब अक्काद (Akkadians) जाति के लोगों ने राज-सत्ता छीन ली तो एक नई संस्कृति पनपी जिसे इतिहासकार सुमेर-अक्काद संस्कृति के काम से सम्बोधित करते हैं। अक्काद लोगों से सीरिया-वासी सैमेटिक जाति के लोगों ने शक्ति छीनकर अधिकार कर लिया था और बैबिलोन को अपनी राजधानी बनाकर 'बैबिलोनिया की संस्कृति' को जन्म दिया। कालान्तर में असीरियावासियों ने बैबिलोन पर अधिकार करके उसे नष्ट कर दिया और निनैवे (Nineveh) को राजधानी बनाया। इस प्रकार असुर या असीरियन संस्कृति ने बैबिलोनियन संस्कृति का स्थान लिया। परन्तु सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के इस क्रम का अन्त यहीं नहीं हुआ। कुछ काल पश्चात खल्द लोगों ने असुर लोगों को सत्ता-हीन करके खल्द (Chaldean) सभ्यता का विकास किया। इस प्रकार दजला एवं फरात नदियों की घाटी में अनेक सभ्यताओं ने जन्म लिया, विकसित हुई एवं विलीन हो गई।

विजेताओं ने इस प्रदेश को अपनी इच्छानुसार बनाया और बिगाड़ा। आज यह प्रदेश-अनेक संस्कृतियों का मिलन-स्थल ईराक के नाम से जाना जाता है। इराक शब्द का आदि रूप 'आर्यक' मे भी माना जाता है।

ईराक की इन प्राचीन सभ्यताओं को प्रकाश में लाने का मुख्य श्रेय एक ब्रिटिश इतिहासकार लायर्ड को है। उसने अनेक वर्षों के सतत परिश्रम एवं अध्ययन के पश्चात सन् १८४२ में प्राचीन खण्डहरों की खोज की।

सुमेर की सभ्यता—(५००० ई० पूर्व से २२०० ई० पू०)पेनसिलवेनिया विश्व-विद्यालय द्वारा आयोजित उत्खनन (Excavation) कार्य के परिणाम-स्वरूप ईराक में एक ऐसे प्राचीन नगर-साम्राज्य के अवशिष्ट चिह्न प्राप्त हुए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि ईसा से लगभग ६००० पूर्व वहाँ कई समृद्धिशाली नगर थे। ईराक में प्रचलित एक प्राचीन कहावत के अनुसार "पहले सब ओर जल था। फिर एरिड (Eridu) का निर्माण हुआ।" आधुनिक पुरातत्व-सम्बन्धी अन्वेषण-कार्य ने इस कहावत की सत्यता सिद्ध कर दी है। प्राचीन एरिड के निकट खुदाई करने मे वैज्ञानिकों को एक-दो नहीं, अपितु १८ नगरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं और उनके मतानुसार सबसे नीचे के अवशेष ही प्राचीन एरिड नगर के अवशिष्ट भाग हैं। शायद यही नगर संसार का सर्वप्रथम नगर था। इसी नगर का समकालीन एक और नगर था 'निप्पुर' (Nippur)। इस नगर के विषय में भी विद्वानों का मत है कि यह ५००० ई० पू० से ६००० ई० पू० के मध्य सुमेरियन लोगों द्वारा बसाया गया था। निप्पुर (Nippur) के खण्डहरों मे प्राप्त सामग्री के आधार पर ही इतिहासकारों ने यह मत स्थिर किया है कि सुमेरियन सभ्यता मिश्र की सभ्यता के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती थी। सुमेरियन सभ्यता के अन्य वैभवशाली नगरों में उर (Ur), लगैश (Lagash) एवं किश (Kish) के नाम प्रमुख थे।

सुमेरियन सभ्यता का प्रारम्भ मैसोपोटामिया में सुमेरियन लोगों के आगमन से आरम्भ हुआ। यह अभी तक एक विवादग्रस्त प्रश्न बना हुआ है कि सुमेरियन लोग किस देश से आकर यहाँ बसे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि यद्यपि ये लोग सैमेटिक नहीं थे फिर भी सम्भवतः ये लोग सीरिया से यहाँ आये थे। परन्तु अन्य विद्वानों ने इस मत का खण्डन किया और इस विषय में एक नई युक्ति प्रस्तुत की जिसके अनुसार ये लोग फारस की खाड़ी द्वारा भारत की तरफ से यहाँ आये। उसके विपरीत जैनेसिस की पुस्तक द्वारा ज्ञात होता है कि ये लोग पूर्व की तरफ से आये और शिनार की भूमि

में आकर बस गए। इसीलिए इस स्थान का नाम 'सुमेरिया' हुआ। सुमेरियन लोग आर्यो की भाँति सुन्दर, बलिष्ठ एवं गौरवर्ण के होते थे।

सुमेरियन लोगों ने नगर राज्यों की स्थापना की थी। वास्तव में सत्य तो यह है कि सुमेरियन लोगों ने प्रशासन के लिए किसी दृढ़ केन्द्रीय संस्था का आविष्कार नही किया था और उसके अभाव में सुमेरियन लोगों के भिन्न-भिन्न कबीलों ने अलग-अलग अपने नगर स्थापित कर लिए थे, जो एक दूसरे से केवल अलग ही न होने थे, अपितु पूर्ण रूप से स्वतन्त्र भी होते थे। नगरों का प्रबन्ध वहाँ के पुरोहित के हाथों में होता था। प्रधान पुरोहित ही मुख्य प्रशासक होता था जिसे 'पातेशी' या 'इसाकू' कहा जाता था। शासक भूमि-कर प्राप्त करने का अधिकारी होता था। शासक का पद पैतृक होता था।

देश में एक राष्ट्रीय या केन्द्रीय प्रशासन के अभाव में प्रत्येक नगर दूसरे नगर की भूमि पर अधिकार करने की चेष्टा करता था। अतः प्रायः आपस में युद्ध होते रहते थे। यही कारण था कि ये लोग चतुर एवं वीर योद्धा होते थे। इनके सेनापति युद्ध-कला में पूर्णतः निष्णात होते थे। लम्बे-लम्बे भाले एवं बड़ी-बड़ी ढालें ही इनके मुख्य अस्त्र-शस्त्र थे।

धर्म—सुमेरियन जाति पवन देवता की पूजा करती थी। पवन देवता को वे 'एनलिल' (Enlil) के नाम से सम्बोधित करते थे। ये लोग ऊँचे-ऊँचे स्तम्भ बनाकर उनके शिखर पर देवताओं के मन्दिर बनाते थे। सुमेरवासी सीढ़ियाँ बनाना नहीं जानते थे। अतः स्तम्भों पर चढ़ने उतरने के लिए ढालू गैलेरियाँ बनाई जाती थीं। निप्पुर में भी उन्होंने एक ऐसा ही विशाल स्तम्भ बनाया था। इस प्रकार के स्तम्भों के खण्डहर मैसोपोटामिया में पाये गये हैं। सुमेरवासी कई अन्य देवों की पूजा करते थे। सूर्य, जल एवं वायु की उपासना अधिक प्रचलित थी, यद्यपि उन्होने कृषि एवं वनस्पति के देवताओं की भी कल्पना करके उनकी पूजा आरम्भ कर दी थी। ये लोग भूत-प्रेत आदि में भी विश्वास करते थे। इनका विश्वास था कि उनके देवता बड़े दयालु थे। उस समय बलि-प्रथा प्रचलित थी। संकट के समय या विशेष उत्सवों पर देवताओं को प्रसन्न करने के हेतु नर-बलि भी दी जाती थी। ये लोग मन्दिरों में अपने आराध्य देवताओं को विशाल प्रतिमाएँ स्थापित करते थे। ये लोग मन्दिरों को 'जिगुरत' (Ziggurat) कहते थे।

इन सब देवताओं की पूजा करते हुए भी उनका धार्मिक विश्वास था

कि सम्पूर्ण विश्व की किसी एक ही शक्ति ने सृष्टि की है और वही सर्वोच्च शक्ति है। इस शक्ति को सुमेरवासी 'ई' नाम से पुकारते थे। कुछ विद्वानों के मतानुसार सुमेरवासी प्राचीन भारतवासियों से सम्बन्धित थे क्योंकि दोनों ही पवन को देवता मानते थे और एक सर्वोच्च शक्ति में विश्वास करते थे। यह कहा जाता है कि सुमेरवासियों के 'एनलिल' एवं 'ई' शब्द भारतीय 'अनिल' एवं 'ईश' शब्दों के ही अपभ्रंश हैं।

निप्पुर के पास प्राप्त हुए एक प्राचीन शिलालेख द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि प्राचीन सुमेरवासी एक विशाल साम्राज्य के स्वामी थे। यह साम्राज्य ईरेक (Ereck) के देवता के पुरोहित द्वारा स्थापित हुआ था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय समाज में पुरोहितों की स्थिति कितनी महत्त्वपूर्ण थी। यह साम्राज्य फारस की खाड़ी से भूमध्यसागर तक फैला हुआ था।

प्राचीन मिश्र की भाँति सुमेरिया के समाज में भी कई वर्ग थे। प्रधानतः तीन वर्ग थे। पुरोहित वर्ग सबसे ऊँचा वर्ग था। धर्म, ज्ञान एवं प्रशासन तीनों ही क्षेत्रों में वे अग्रणी थे। उनका जनता में बहुत सम्मान था। ये सब प्रकार से साधन-सम्पन्न होते थे। ऐसे व्यक्ति जो यद्यपि पुरोहित तो न थे परन्तु जो भू-स्वामी होते थे, वे भी इसी उच्च वर्ग में सम्मिलित किए जाते थे। दूसरा वर्ग व्यवसायी लोगों का था जो उद्योग, व्यवसाय एवं कारीगरी का काम करते थे। इसके अतिरिक्त उस समय भी दास-प्रथा प्रचलित थी। दास व्यक्तिगत सम्पत्ति के समान समझे जाते थे। वैसे उनका सामान्य कार्य अपने से ऊँचे दोनों वर्गों की सेवा करना था। दासों के साथ दया का बरताव किया जाता था।

समाज में स्त्री की अपेक्षा पुरुष को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। घर और घर के बाहर—दोनों ही क्षेत्रों में वह पूर्ण सत्ता का उपभोग करता था। विशेष परिस्थितियों में वह एक से अधिक स्त्री भी रख सकता था। लोग वैवाहिक जीवन व्यतीत करना सीख गए थे। विवाह के सम्बन्ध में सुमेर-वासियों ने कुछ विशिष्ट नियम भी बना लिए थे जिनका पालन करना आवश्यक समझा जाता था। पतित स्त्री को प्राण-दण्ड तक दिया जाता था। यह आश्चर्य का विषय है कि आज से ६-७ हजार वर्ष पूर्व सुमेरियन लोगों ने केवल विवाह करना ही न सीखा अपितु तलाक को भी वैधानिक रूप से स्वीकार कर लिया था। अपंग या बन्ध्या स्त्री को त्यागा जा सकता था। स्त्रियों को

पितृ-गृह से जो वस्तुएँ प्राप्त होती थीं उन पर उसका व्यक्तिगत अधिकार समझा जाता था। दहेज-प्रथा का भी प्रचलन था। प्राचीन अवशेषों से प्राप्त वस्तुओं से यह भी ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ अपने रूप सौन्दर्य की वृद्धि के लिए कृत्रिम साधनों का प्रयोग करती थी।

सुमेरवासी बड़े परिश्रमी एवं चतुर थे। उन्होंने जीवन यापन के लिए अनेक साधन खोज निकाले। सिंचाई के हेतु उन्होने सुनियोजित प्रबन्ध कर लिया था ताकि जल उन्हे सुगमतापूर्वक सुलभ हो सके। कृषि उनका मुख्य पेशा था। परन्तु पशु पालन भी सामान्य रूप से प्रचलित था। वे लोग कालान्तर में वस्त्र बुनना भी सीख गये थे। पत्थर सुलभ न होने के कारण मकान बनाने के लिए उन्होने ईंटें बनाना आरम्भ कर दिया था। ये लोग बड़ी सुन्दर ईंटें बना लेते थे। मन्दिर, स्तम्भ एवं अन्य भवनो के निर्माण में ईंटों का ही प्रयोग किया जाता था। सुमेरवासी रजत् एवं स्वर्ण पात्र बनाने की कला में भी पूर्णतया पारंगत थे। वे समृद्धिशाली और सम्पन्न थे।

साहित्यिक क्षेत्र में सुमेरवासियों की प्रगति मिश्रवासियों के समान न थी। परन्तु सुमेरवासी शायद लेखनकला में मिश्रवासियों से आगे थे। यह उनकी सभ्यता की महानतम विशेषताओं में से प्रमुख है। ४००० ई० पूर्व या इससे भी कुछ पूर्व काल में यह लेखन-कला विकसित हुई। ये संकेत-लिपि का प्रयोग करते थे। उनकी लिपि में लगभग ४०० संकेत थे। वर्ण या अक्षरों के लिए कोई संकेत न थे। शब्दों के लिए संकेत थे। जिनको मिला कर लिखने से वाक्य बनाये जाते थे। यह अनुमान लगाया जाता है कि इस लिपि का जन्म चित्र-लिपि से ही हुआ था। संकेत-लिपि में लिखे हुए प्राचीनतम लेख शिलाओं पर प्राप्त हुए है परन्तु पश्चात्वर्त्ती लेख मिट्टी की तख्तियों पर खुदे हुए मिलते हैं। यह लिपि उर्दू की भाँति दाँये से बाँये की तरफ लिखी जाती थी। इसी लिपि में सांकेतिक अक्षर ऊपर की ओर नुकीले होते थे। इसीलिए इसे 'कीलाक्षर-लिपि' (Cuneiform) कहते हैं। कागज के अभाव में ये लोग गीली मिट्टी की तख्तियों पर सरकण्डो से लिखते थे। सूखने पर ये अक्षर तख्ती पर खुद जाते थे।

सुमेरियन लोग प्राचीन मिश्रवासियों की तुलना में स्थापत्य कला के क्षेत्र में अधिक उन्नति नही कर पाये थे। पत्थरों के अभाव में उन्हें ईंटों पर निर्भर करना पड़ता था। शायद इसी कारण से वे इस ओर अपनी कलात्मक

रुचि को रचनात्मक रूप न दे पाये। फिर भी ये लोग सुन्‍ स्तम्भ, मन्दिर एवं भवन बना लेते थे। स्थापत्य कला की अपेक्षा मूर्त्तिकला के क्षेत्र में अधिक उन्नति की थी। इन्होंने अपने मन्दिरों के लिए विशाल एवं बड़ी मजबूत मूर्त्तियों को निर्माण किया।

वैज्ञानिक क्षेत्र में सुमेरियन लोगों ने कुछ ऐसी सफलताएँ प्राप्त की थीं कि जो आज तक आधुनिक विश्व का मार्ग-दर्शन कर रही हैं। उन्होंने चन्द्रमा की कलाओं का अध्ययन करके समय की गणना करना सीख लिया था। चन्द्रमा की विभिन्न कलाओं के आधार पर ही उन्होंने वर्ष को ३०-३० दिन के १२ मासों में विभक्त किया था। ये लोग नक्षत्रों की गतिविधियों के अध्ययन में भी रुचि रखते थे। इनकी गिनती में ६० इकाइयाँ थीं। यहाँ यह स्मरणीय है कि हम आज भी घन्टे, मिनट एवं वृत्त को ६० भागों में ही विभक्त करते हैं। सुमेरवासी मिट्टी के बर्तन बनाने में भी दक्ष थे, क्योंकि वे कुम्हार के चाक का प्रयोग करना जानते थे।

सुमेर अक्काद साम्राज्य युग—जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, सुमेरवासी स्वतंत्र नगर-राज्यों में निवास करते थे और प्रायः एक दूसरे से परस्पर युद्ध करते रहते थे। इस पारस्परिक कला के फलस्वरूप शनैः शनैः उनकी सैनिक शक्ति क्षीण होती गई। इसके अतिरिक्त एक दीर्घ-काल तक सत्ता का उपभोग करने के कारण उन लोगों में कुछ शिथिलता प्रगट होने लगी। पड़ोसी देशों तक सुमेर के वैभव की कहानियाँ पहले ही पहुँच चुकी थी। वे अवसर की ताक में थे। सुमेरवासियों की शक्ति क्षीण होते ही सुमेर के उत्तर की ओर से अक्काद (Akkad) जाति ने सुमेर पर आक्रमण कर दिया और सुमेर साम्राज्य को नष्ट करके देश पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार २७५० ई० पू० सुमेरवासियों की स्वतन्त्रता समाप्त हो गई।

सारगन प्रथम (Sargon I) ही वह प्रथम राजा था जिसके नेतृत्व में अक्काद लोगों ने सुमेर पर विजय प्राप्त की थी। सारगन प्रथम एक वीर एवं महान योद्धा था। वह बड़ा ही योग्य एवं महत्त्वकांक्षी शासक था। उसने सुमेरवासियों के प्रति दया का वर्ताव किया और उनका विश्वास प्राप्त करने की चेष्टा की, जिसमें वह पूर्ण रूप से सफल हुआ। उसने और उसके बाद उसके पोते (कुछ इतिहासकारों के मतानुसार वह उसका पुत्र था) नरम सिन (Naram Sin) ने बड़ी योग्यता-पूर्वक शासन का संचालन किया और साम्राज्य का विस्तार किया। दजला और फरात नदी की घाटी के थोड़े से

उत्तरी भाग के अतिरिक्त समस्त प्रदेश अक्काद जाति ने अपने आधीन कर लिया था। पश्चिम में उनका साम्राज्य भूमध्यसागर तक फैला हुआ था। नरमसिन के पश्चात बड़ी शीघ्रता से अक्काद साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। इधर, सुमेरियन लोगों ने पुनः शक्ति संचय कर ली थी। परन्तु उन्होंने ऐसी परिस्थिति में बड़ी दूरदर्शिता का परिचय दिया और अपने विजेता, अक्काद लोगों से युद्ध करने के स्थान पर उन्होंने असीरिया और उसके निकटवर्ती प्रदेशों को जीत लिया। इस प्रकार सुमेरियन अक्काद साम्राज्य की स्थापना हुई। इस संयुक्त साम्राज्य का अन्त २१०० ई० पू० के लगभग हुआ जब कि हम्मूरबी ने इस साम्राज्य को नष्ट करके नये साम्राज्य की स्थापना की।

यद्यपि अक्काद जाति ने सुमेर-वासियों को पराजित कर दिया था, फिर भी उन्होंने उनकी संस्कृति को अपना लिया। उन्होंने सुमेरियावासियों की विकसित संस्कृति से लाभ उठाया और उनके रहन-सहन के ढंग, रीतिरिवाज आदि का अनुकरण किया। भाषा, स्थापत्य कला, विज्ञान, व्यापारिक प्रणाली एवं नाप-तोल की पद्यति आदि क्षेत्रों में अक्काद लोग सुमेरवासियों के ऋणी थे। उन्होंने सुमेरियन सभ्यता का प्रसार दूर दूर तक किया। साथ ही साथ सुमेरियावासियों ने भी अक्काद लोगों से बहुत कुछ सीखा। अक्काद जाति स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला के क्षेत्र में सुमेरियन लोगों से अधिक उन्नतिशील थी। अक्काद जाति की मूर्तिकला का एक सुन्दर नमूना प्राप्त हुआ है जिसमें नरमसिन को ऐलाम (Elam) नामक स्थान में एक पहाड़ पर आक्रमण करते हुए प्रदर्शित कया गया है। अक्काद लोग बेलनाकार गोल मुद्रा बनाने में भी बड़े दक्ष थे। गीली मिट्टी के ऊपर इन मुद्राओं द्वारा बड़े अच्छे चित्र अंकित किए जा सकते थे। इन मुद्राओं मे अधिकाशतः पशुओं के चित्र है। इस प्रकार सुमेरियन एवं अक्काद जातियों के संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप सुमेरियन संस्कृति ने बहुत उन्नति की। २१०० ई० पू० हम्मूरब्बी के आक्रमण के समय सुमेरियन अक्काद सभ्यता अपने चरम उत्कर्ष पर थी, यद्यपि सुमेरियन अक्काद साम्राज्य अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा था।

बेबीलोनिया की सभ्यता—अक्काद जाति के राजा नरमसिन के काल से सुमेरियन–अक्काद साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया था। उसके शासन-काल के अन्तिम दिनों में साम्राज्य की सत्ता एवं शक्ति क्षीण होती जा रही थी। अनुकूल परिस्थितियाँ देखकर सैमेटिक जाति ने मैसोपोटामिया पर आक्रमण

आरम्भ कर दिये। एलाम के (Elamites) लोगों ने सुमेर साम्राज्य के दक्षिणी भागों पर अधिकार कर लिया। सैमेटिक जाति के ही अमोराइट (Amorite) नामक लोगों ने भी मैसोपोटामिया के कुछ भागों को जीत लिया एवं उत्तरी सुमेर को पूर्णतया जीत कर वहाँ अपने पैर जमा लिये। बैबिलोन नाम का छोटा सा कस्बा इनका मुख्य केन्द्र था। लगातार विजय प्राप्त करने के कारण अमोराइट लोगों का उत्साह बढ़ रहा था। परन्तु एक सुव्यवस्थित एवं शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना के लिए आवश्यक था कि कोई योग्य एवं शक्तिशाली नेता हो। हम्मूरब्बी के रूप में उन्हें ऐसा ही नेता प्राप्त हुआ। २१०० ई० पूर्व के लगभग हम्मूरब्बी ने अमोराइट लोगों को संगठित करके उनकी शक्ति में वृद्धि की। उसने सुमेरियन लोगों की अवशिष्ट शक्ति को भी कुचल दिया। दूरदर्शी हम्मूरब्बी जानता था कि एक स्थायी साम्राज्य की स्थापना के लिए आवश्यक है कि पड़ोसी जातियों को मित्रतापूर्वक या आवश्यक हो तो, सैनिक-बल द्वारा वश में रखा जावे। अतः उसने एलामपेई लोगों के विरुद्ध अभियान आरम्भ कर दिया। एलाम के लोग उसकी शक्तिशाली सेना के सम्मुख न ठहर सके और आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार दक्षिणी मैसोपोटामिया पर भी उसने अपना प्रभुत्व स्थापित करके सम्पूर्ण सुमेर-अक्काद साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। हम्मूरब्बी ने बैबिलोन को ही अपनी राजधानी बनाया, इसलिये यह सभ्यता भी "बैबिलोनवासियों की सभ्यता" के नाम से विख्यात हुई।

हम्मूरब्बी अपने समय का अत्यन्त प्रतापी राजा हुआ है। वह अपनी सैनिक विजयों के कारण नहीं अपितु अपने योग्य शासन के कारण इतना प्रसिद्ध हुआ है। उसने साम्राज्य-विस्तार से अधिक उचित शासन-प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया। एक ऐसे युग में जबकि प्रायः राजाओं का प्रधान लक्ष्य साम्राज्य-विस्तार के द्वारा असीमित सत्ता का उपभोग करना-मात्र ही था, हम्मूरब्बी प्रथम सम्राट था जिसने राजपद को नैतिक एवं वैधानिक दृष्टि से प्रजा के कल्याण के प्रति उत्तरदायी बनाया। उसने प्रजा को सुरक्षा एवं न्याय प्रदान करके अपने उत्तराधिकारी के सम्मुख एक उच्च आदर्श रखा। उसके समय के ५५ पत्र प्राप्त हुए हैं जो कि उसने भिन्न-भिन्न समयों पर अपने उच्च अधिकारियों को लिखे थे। ये पत्र मिट्टी की तख्तियों पर "कीलाक्षर लिपि" में लिखे हुए हैं और बैबिलोन की संस्कृति एवं सभ्यता पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। इसके अतिरिक्त एक आठ फीट ऊँचा पाषाण-स्तम्भ भी प्राप्त हुआ है जिस पर

हम्मूरब्बी के नियम, कानून एवं विधान अंकित हैं। इस स्तम्भ के शिखर पर हम्मूरब्बी को सूर्य-देवता से 'विधि-ज्ञान' प्राप्त करते हुए प्रदर्शित किया गया है। इन प्राचीन पत्रों एवं लेखों से ज्ञात होता है कि राजा हम्मूरब्बी राज्य के छोटे और बड़े प्रत्येक कार्य में रुचि लेता था। वह कर-संचय, सामान्य उत्सवो, बाढ़ों के नियन्त्रण आदि सामान्य विषयों में भी अपने अधिकारियों को उचित आदेश देता था। घूँसखोरी के विरुद्ध उसने कई प्रभावशाली नियम बनाये थे।

हम्मूरब्बी की महानतम सफलता विधि-क्षेत्र में थी। उसने न्याय को राजा के इच्छित मौखिक आदेशों के स्तर से उठाकर एक उच्च आधार प्रदान किया। एरियू के निकट प्राचीन विधान प्राप्त करने से पूर्व राजा हम्मूरब्बी का विधान ही प्राचीनतम समझा जाता है। यह फ्रांसीसी पुरातत्त्ववेत्ताओं द्वारा सूसा नामक स्थान के पास पाया गया था। इसके कुछ अंश निनैवे स्थित असुरबनिपाल के पुस्तकालय में भी प्राप्त हुए हैं। हम्मूरब्बी ने केवल पूर्ववर्त्ती और अपने समय के कानूनों का संग्रह-मात्र ही नहीं किया था अपितु स्वयं भी अनेक कानूनों की रचना की थी। हम्मूरब्बी के विधान का प्रधान उद्देश्य जनता को उचित न्याय और अपराधियों को उपयुक्त दण्ड प्रदान करना था। अधिकारी-गण इस विधान के अनुसार ही शासन-संचालन करते थे। प्रशासन, सम्पत्ति, समझौते, कृषि, व्यापार, विनिमय, विवाह, गोद-प्रथा, उत्तराधिकार की समस्या आदि के विषय में स्पष्ट नियम थे। अपराधियों को अदालतों से दण्ड मिलता था। विशेष परिस्थितियों में राजा से अपील भी की जा सकती थी। न्याय-पालक की रचना एवं उसकी कार्यप्रणाली के विषय में स्पष्ट निर्देश थे। हम्मूरब्बी का कानून प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेद-भाव के चाहे वह विदेशी ही क्यों न हो, सुरक्षा प्रदान करता था। इस विधान के विषय में (यदि यह न बताया जावे कि यह राजा हम्मूरब्बी का विधान है) यह अनुमान लगाना बड़ा कठिन है कि यह ४००० वर्ष से भी अधिक पुराना है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह विधान कुछ ऐसी समस्याओं के विषय में भी उपयुक्त निर्देश देता है जो कि प्रधानतः हमारे युग की समस्याएँ हैं। सन्तान एवं पत्नी के कानूनी अधिकार, मादक द्रव्यों का नियन्त्रण, लगान की समस्याएँ, पत्नी का कर्जा, सैनिक सेवा सम्बन्धी रियायतें आदि विषयों पर इस विधान में निश्चित कानून हैं। इनके अतिरिक्त इस विधान की एक और विशेषता भी है। हम्मूरब्बी के मतानुसार निर्धनों, विधवाओं और अनाथों को भी उचित न्याय

प्राप्त करने का अधिकार है। परन्तु यह विधान इतना प्रगतिशील होते हुए भी अपने समय का सच्चा प्रतिनिधि है। कुछ विशिष्ट अपराधों में 'जैसे को तैसा' कहावत के अनुसार दण्ड मिलता था। कुछ ऐसे भी अपराधों का उल्लेख है जो आधुनिक मानव को हास्यास्पद प्रतीत होते हैं। उदाहरणतः, इस विधान के अनुसार यदि भवन के स्वामी का पुत्र भवन गिरने के कारण मर जाता है तो उस भवन के स्वामी को अधिकार होगा कि वह उस भवन के बनाने वाले व्यक्ति के पुत्र को राज्य द्वारा मृत्यु-दण्ड देने की याचना करे। फिर भी इतिहासकार इस विषय में एकमत हैं कि तत्कालीन समय को देखते हुए हम्मूरब्बी का विधान अत्यन्त प्रगतिशील था।

बैबिलोनवासियों के जीवन में धर्म का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। सुमेरवासियों की भाँति वे भी अनेक देवताओं की उपासना करते थे। देवताओं को वे मनुष्य की भाँति शरीरधारी समझते थे। उसी रूप में उनकी पूजा की जाती थी। सुमेरवासियों की भाँति इनका प्रधान देवता मर्दुक (Marduk) था। इश्तर की पूजा प्रेम की देवी (Goddess of Love) के रूप में होती थी। इश्तर (Ishtar) के आधार पर ही बाद में यूनानियों ने 'ऐफ्रोडाइट' (Aphrodite) एवं रोमन लोगों ने 'वीनस' (Venus) की कल्पना की। बैबीलोनवासी 'अनु' (आकाश) एवं 'शमश' (सूर्य) की भी उपासना करते थे। समाज में पुरोहित-वर्ग सबसे अधिक शक्तिशाली एवं महत्त्वपूर्ण था। इतिहासकार डेविस के अनुसार पुरोहित लोग बलि की हुई भेड़ के यकृत द्वारा भविष्यवाणियाँ किया करते थे।

बैबीलोन के मंदिर पूजा-स्थल ही न थे, वे कला के संग्रहालय एवं विज्ञान की प्रयोगशालाएँ भी थे। ये वाणिज्य के केन्द्र एवं राजकोष भी थे। राज्य की समस्त आय यहीं संचित की जाती थी, वाणिज्य का संचालन यहीं से होता था। स्पष्ट है कि पुजारी-वर्ग ही सर्वेसर्वा था। प्रायः मन्दिर सात मन्जिलों तक के होते थे। प्रत्येक मंजिल पर अलग २ कार्यालय थे। वोरसिप्पा का जिग्गुरत सप्त-मण्डल के नाम से प्रसिद्ध था। विज्ञान के क्षेत्र में बैबिलोनवासियों ने महान उन्नति की थी। व्यापारिक वृद्धि के कारण समुद्र यात्राओं में वृद्धि हुई। इसी के फलस्वरूप नक्षत्र-विज्ञान ने भी प्रगति की। ज्योतिष-शास्त्र का विकास हुआ। इन मंदिरों में अलग २ नक्षत्रों का अध्ययन किया जाता था। ग्रहों एवं परिग्रहों की गतिविधियों द्वारा भविष्यवाणियाँ की जाती थीं। बैबीलोनवासियों ने समय ज्ञात करने के लिए

घड़ियों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। उनके समय में सूर्य-घड़ी और जल-घड़ी दोनों ही प्रचलित थीं। उन्होंने ग्रहणों का ठीक समय ज्ञात करना भी सीख लिया था। मिश्रवासियो की भाँति सुमेरवासियों ने वर्ष को ३०-३० दिन के १२ मासों मे विभक्त किया था। बैबीलोनवासियों ने इस विषय में भी अधिक उन्नति की थी। उन्होने मास को ४ सप्ताहों में, घड़ी को १२ भागों मे और मिनिट एवं सैकिन्ड को ६०-६० भागों में विभक्त करके आधुनिक विश्व का पथ-प्रदर्शन किया। विलियम ड्यु सैन्ट के मतानुसार यही उनकी महानतम देन है। बैबिलोनवासियो ने विश्व को मुद्रा-प्रणाली और नाप-तोल के क्षेत्र में भी मार्ग-दर्शन किया। मन के बाँट को यूनानियों ने वही से ग्रहण किया।

पाषाण के अभाव में यहाँ मूर्त्ति-कला उतनी विकसित न हो पाई जितनी कि मिश्र में हुई। भवन एवं मन्दिर आदि प्राय: ईंटों के ही बनते थे। सौन्दर्य एवं स्थायित्व—दोनों ही दृष्टियों से ये मिश्री कला के समकक्ष न थे। मूर्त्तियो के लिए प्राय: पत्थर का प्रयोग होता था। परन्तु ये मूर्त्तियाँ भी कुशल कारीगरो के हाथ की बनाई हुई प्रतीत नही होती है।

ऊपर बताया जा चुका है कि लेखन-कार्य मिट्टी की तख्तियों पर सरकंडो द्वारा होता था। बैबिलोनवासी सामी भाषा का प्रयोग साकेतिक शब्दो मे 'कीलाक्षर-लिपि' के अनुसार करते थे। वे दाईं से बाईं ओर लिखते थे। ये लोग भी अपने पूर्वजो की भाति वर्ण-माला का आविष्कार करने में असफल रहे। इनकी लिपि मे लगभग ३०० संकेत थे। राजकीय एवं साहित्यिक उद्देश्यों के लिये इसी लिपि को प्रयुक्त किया जाता था। यद्यपि उस समय का एक धार्मिक महाकाव्य 'गिलगेमिश' प्राप्त हुआ जो उस समय की साहित्यिक प्रगति का प्रतिनिधित्व करता था, फिर भी ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीन बैबी-लोनवासी साहित्य की ओर पूर्ण ध्यान न दे सके थे।

शिक्षा के क्षेत्र में बैबीलोनवासियों ने एक महान प्रयोग किया था। ऐसा प्रतीत होता है विश्व-इतिहास में शायद सर्वप्रथम बैबीलोन में ही सार्वजनिक शिक्षा के हेतु विद्यालय स्थापित किए गये थे। उस समय के एक प्राचीन विद्यालय के अवशेष प्राप्त हुए है। यह लगभग ५५ वर्ग फीट के क्षेत्रफल में स्थित था। इसकी एक दीवार पर उस समय की एक कहावत अंकित है—'जो लेखन-कला में प्रगति करेगा वह सूर्य की भाँति चमकेगा'। यह कहावत

इस बात का परिचायक है कि उस समय लेखन-कला में दक्षता प्राप्त करना कितना दुष्कर कार्य समझा जाता था।

बैबीलोन न केवल पश्चिमी एशिया की राजधानी ही था अपितु वह अपने समय का विश्व का सबसे अधिक समृद्धिशाली नगर था। उस समय मैसोपोटामिया बड़ा प्रगतिशील था। देश की जनता सुखी थी। देश में भिन्न २ व्यवसाय विकसित हो रहे थे। लोगों के सामान्य-पेशा कृषि करना एवं पशु-पालन थे। अनाज की कोई कमी न थी। ऊन का व्यवसाय पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था। बुने हुए कपड़ों का निर्यात होता था। प्रायः सामान गधों पर लाद कर पश्चिम एशिया के नगरों तक ले जाया जाता था। भवन-निर्माण के लिए ईंटे बनाई जाती थीं। स्वर्ण एवं चाँदी का प्रयोग व्यापारिक विनिमय के हेतु होता था।

व्यापार और व्यवसाय की उन्नति के कारण जनता की दशा बहुत अच्छी थी। देश का निम्नतम वर्ग जिसमें अधिकांशतः दास ही थे, सुखी था। तत्कालीन अन्य देशों की भाँति बैबीलोन में भी दास-प्रथा थी। ये अपने से उच्चवर्गों की सेवा करते थे। दासों को कोई राजनैतिक अधिकार प्राप्त न थे, फिर भी राज्य उनकी रक्षा के जिए उत्तरदायी था। यूनान अथवा रोम के दासों की अपेक्षा उनकी दशा बैबिलोन में कहीं अच्छी थी। सुमेरवासियों में भी हीन वर्ग थे। बैबिलोन में वर्गों की सृष्टि समाज ने नहीं अपितु शासन ने की थी। शासन ने जनता को तीन श्रेणियों में विभक्त कर रखा था—अमेल (उच्च वर्ग) मुशविनु (मध्यम वर्ग) एवं दासवर्ग। उच्च वर्ग को अधिक स्वतन्त्रता और अधिकार प्राप्त थे। समाज एवं शासन दोनों में ही उनका बहुत महत्त्व था। मध्यमवर्ग भी स्वतन्त्र था। शान्तिकाल में देश की समृद्धि उसके परिश्रम पर और युद्धकाल में उसके शौर्य एवं साहस पर निर्भर करती थी। युद्ध के समय इनको अनिवार्य रूप से सेना में सम्मिलित होना पड़ता था।

विवाह को धार्मिक महत्त्व की अपेक्षा कानूनी महत्त्व अधिक प्राप्त था। स्त्री-पुरुष स्वेच्छा से विवाह कर सकते थे। बैबिलोनवासियों में स्त्री का अधिक सम्मान था। इस दृष्टि से वे सुमेरवासियों से अधिक प्रगतिशील थे। समाज और घर दोनों में स्त्री का बड़ा सम्मान था। वे व्यवसाय में भी पुरुषों का हाथ बँटाती थीं। पर्दा-प्रथा न थी। स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जा सकता था। पुत्र गोद लेने की प्रथा प्रचलित थी। सब पुत्रों के समान

अधिकार होते थे। स्त्रियाँ अलंकारो और आभूषणों का प्रयोग करती थीं। शृंगार के प्रति उनका चाव अन्य देशों की स्त्रियो के समान था। धनवान पुरुष कीमती वस्त्र धारण करते थे। सुमेरवासियों एवं बैबिलोनवासियों की वेशभूषा लगभग एक सी ही थी।

असुर संस्कृति—लगभग दो शताब्दी तक मैसोपोटामिया मे राज्य करने के पश्चात बेबीलोनवासियो का पतन आरम्भ हो गया। प्रारम्भ मे जो उत्साह था वह शनैः शनैः कम हो रहा था। हम्मूरब्बी के राज्य काल मे जनता को पूर्ण शान्ति और सुरक्षा प्राप्त थी। इसलिए जनता मे भोग-विलास की प्रवृत्ति ने जन्म लिया। हम्मूरब्बी की मृत्यु के पश्चात पड़ोसी जातियों को भी बैबिलोन के वैभव का रसास्वादन करने की आकांक्षा हुई। सुमेर-वासियो के समय मे ही असीरिया की असुर जाति ने मैसोपोटामिया पर आक्रमण आरम्भ कर दिये थे। परन्तु सारगन प्रथम ने उन्हें पराजित करके भगा दिया था और वे घाटी के ऊपरी भाग में बस गये थे। उन्हें अब फिर मैसोपोटामिया पर अधिकार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। बैबिलोन की उस शक्तिहीनता का लाभ केवल वही नही उठाना चाहते थे अपितु कैसाइट (Kassite) नामक एक पहाड़ी जाति और थी। इन लोगों ने १६०० ई. पू के लगभग बैबिलोनवासियो से युद्ध करने के स्थान पर शान्ति-पूर्वक उनके नगरो मे बसना आरम्भ कर दिया। उनके इस व्यवहार से बैबिलोनवासियो को तनिक भी सन्देह नही हुआ। कैसाइट लोग अनुकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा मे थे। जहाँ कही भी उन्हे अवसर मिलता था वहाँ वे शासन मे हस्तक्षेप करते थे और अधिकार कर लेते थे। इस प्रकार उन्होने अपने पैर जमा लिये थे, फिर भी वे अभी तक बैबिलोनवासियो को पूर्णयता सत्ता-च्युत न कर पाये थे। परन्तु लगभग १७५० ई. पू. हित्ती लोगो ने बैबिलोन पर भयंकर आक्रमण किया और बैबिलोन को लूटकर चले गए। इससे बैबिलोनवासियो की शक्ति क्षीण हो गई और वे कैसाइट या कस्सिय जाति से पराजित हो गए। इन पहाड़ी जातियों ने युद्ध मे घोड़ों का प्रयोग किया था जो कि बैबिलोनवासियों के लिये एक नई वस्तु थी।

असुर जाति का इतिहास—लगभग ६०० वर्षो तक कस्सिय लोगो ने बैबिलोन पर शासन किया। परन्तु उनके पड़ोसी असीरियावासियों ने उन्हें शान्तिपूर्वक न बैठने दिया। अपने प्रारम्भिक आक्रमणो में ये सुमेरवासियो से पराजित हो चुके थे। परन्तु १८१० ई. पू. के लगभग उन्होने बैबीलोन

वासियों के विरुद्ध सफलता-पूर्वक विद्रोह करके अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करली थी। असीरियन या असुर जाति का इतिहास जटिलताओं से परिपूर्ण है। सुमेरवासियों से भी पूर्व ये लोग मैसोपोटामिया के उत्तरी भाग में बस गये थे। इनका संघर्षमय इतिहास तभी से प्रारम्भ होता है। परन्तु अपने शक्तिशाली पड़ोसियों मैसोपोटामिया एवं मिश्र के कारण वे एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना न कर सके। परन्तु बैबिलोन में कस्सिय जाति के शासन में शिथिलता के लक्षण देखते ही इन्होंने १३०० ई. पू. के लगभग बैबिलोन को जीत लिया। ये लोग अश्व और रथों का प्रयोग अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि करने के हेतु करते थे। हित्ती लोगों से इन लोगों ने लौह-निर्मित अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करना सीख लिया। इन्हीं कारणों से ये युद्ध-कला में बड़े निपुण थे। साहस और वीरता उनके चारित्रिक गुण थे। इनके देश, देवता और स्वयं इनकी जाति का नाम असुर (Asshur) था। ई० पूर्व १३वीं शताब्दी में रेमजेन द्वितीय के योग्य शासन में मिश्र की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। अतः बैबिलोन जीत कर भी असुर लोग अपने साम्राज्य की कोई दृढ़ नींव न रख सके और न ही, मिश्र की शक्ति के कारण, निकटवर्त्ती देशों को जीत सके। ११०० ई० पूर्व के लगभग उन्होंने, परिस्थितियों को अनुकूल पाकर पड़ोसी राष्ट्रों पर आक्रमण कर दिये और मैसोपोटामिया में भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। ई० पू० २४०० से लगभग ६१२ ई० पू० तक को दीर्घ अवधि में असुर लोगों की शक्ति और समृद्धि क्रमशः १२ वीं; ६ वीं और ८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं ७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अपने चरमोत्कर्ष पर थी। असुर जाति ने ई. पू. १३वीं शताब्दी में अपनी विजय-यात्रायें शेलमनेजर प्रथम (Shalmanesar I १२७६ ई० पू०) के नेतृत्त्व में आरम्भ की थीं। असुरों के इस दीर्घ-कालीन इतिहास में अनेक राजा हुए थे। साथ ही इस अवधि में कई बार बेबिलोन इनके हाथों से छिना और इनके भिन्न-भिन्न राजाओं ने इसे पुनः पुनः जीता। असुर और निनीवे इस जाति के प्रधान नगर थे। असीरियन या असुर जाति के अनेक राजाओं में से केवल थोड़े से ही राजा ऐसे हुए जिन्होंने वास्तव में असीरियन साम्राज्य का निर्माण किया। शेल मनेजर प्रथम (१२७६ ई० पू०) टिगलाथ पिलेजर प्रथम (Tiglath Pilesar ११२० ई० पू०), असुर नासिर पाल (Assurnasirpal, ८८० ई० पू०) टिगलाथ पिलेजर तृतीय (७४५-७२७ ई० पू०), शेलमनेजर चतुर्थ (७२७-७२२ ई० पू०) सारगन द्वितीय (७२१-७०५ ई० पू०), सेनाकेरिब

(Sennacherib ७०४-६८२) ईसरहेड्डुन (Esarhaddon, ६८०-६६८) एवं असुर बानी पाल (Assur-bani-Pal, ६६८ से ६२६) आदि असुर सम्राटों में प्रमुख थे। विशेषतः टिगलाथ पिलेजर तृतीय (७४५-७२७ ई० पू०) पूर्व के राज्य काल में असुर जाति पूर्णतः संगठित हो गई थी और वास्तव में वही असुर साम्राज्य का वास्तविक स्थापक था। उसने बैबिलोन और दमिश्क को जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया था। सारगन द्वितीय वीर योद्धा था। उसने साम्राज्य-विस्तार की नीति का ही अनुसरण किया। उसने फिलस्तीन को जीता, हीब्रू लोगों को जीतकर बहुत बड़ी संख्या मे कैदी बना लिया और असीरियन साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर मैसोपोटामिया मे फारस की खाडी तक और दक्षिण पूर्व मे मिश्र तक बढा दी। सेनाकेरिब अपने पिता सारगन द्वितीय से भी अधिक महत्त्वाकाक्षी था। उसने एशिया माइनर एवं फीनीशिया के अनेक तटीय नगरो को विजय किया। इसी बीच बैबिलोन ने विद्रोह कर फिर स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी। इसलिये उसने बैबिलोन पर अधिकार करके उसे नष्ट कर दिया। उसका विचार मिश्र-विजय करने का भी था परन्तु मिश्र की सीमा पर प्लेग फैला हुआ था, जिसकी वजह से उसके बहुत से सैनिक मर गये। इसलिये वह वापिस लौट आया लौटते समय उसने निनवे को राजधानी बनाया और उसका नवनिर्माण करके उसे एक भव्य एवं सुन्दर नगर के रूप मे परिवर्तित कर दिया। सेनाकेरिब के पुत्र ईसरहेड्डुन ने मिश्र-विजय करके पिता के स्वप्न को साकार किया और साम्राज्य में वृद्धि की। असुरबनिपाल असुर जाति का अन्तिम महान सम्राट था। वह अत्यन्त साहसी एवं भयंकर योद्धा था। उसके राज्यकाल में असुर साम्राज्य अपनी गौरव-गरिमा के उच्चतम शिखर पर था। उसने ललित कला एव साहित्य के उत्थान में महान योग दिया था। उसकी मृत्यु के १४ वर्ष पश्चात ही असुर साम्राज्य का पतन हो गया।

युद्ध-कला—असुर जाति एक बर्बर, क्रूर एवं भयंकर जाति थी। ये लोग सैमेटिक थे। ये अपने को असुर देवता (सूर्य) की संतान मानते थे इसीलिए अपने देश को असीरिया और स्वयं अपने को असुर कहते थे। दुस्साहस एवं वीरता इनके जातिगत गुण थे। ये लोग युद्धकला मे बडे निपुण थे। हित्ती लोगों की भाँति ये लोग भी लोहे के अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग करते थे। असुर सैनिक पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होते थे। सेना के प्रायः तीन अंग होते थे—(१) पैदल सैनिक (२) अश्वारोही, एवं (३) रथारोही। घोड़ो और रथो के

कारण इनकी सैनिक शक्ति बहुत बढ़ गई थी। दुर्ग-प्राचीरों एवं गढ़ों को नष्ट करने के लिए ये विशिष्ट प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग करते थे। इस प्रकार वे युद्ध-कला में अपनी समकालीन जातियों से अधिक उन्नतिशील थे। असुर लोग विजित प्रदेशों को लूट कर उजाड़ देते थे—लोगों की क्रूरतापूर्वक हत्या कर देते थे। युद्धबन्दियों की खाल खिचवा लेते थे और मस्तक काट लेते थे। उस प्रकार का व्यवहार करने से उन्हें एक विशेष आनन्द प्राप्त होता था और वे इस पर गर्व करते थे क्योंकि उस समय के एक शिलालेख में बड़े ही गौरवपूर्ण शब्दों में उनके एक सम्राट ने ये शब्द अंकित कराये थे, "मैंने इनकी लाशों से पहाड़ों की चोटियाँ एवं घाटियाँ पाट दी हैं—इनके मस्तक काट कर मैंने इनके नगर की दीवारों को इन मस्तकों से सजाया है। मैं अपने साथ अनेक दास और अपरिमित धनराशि ले आया हूँ।" असीरियन साम्राज्य की नींव मानव के हाड़-माँस पर रखी गई थी और उसे मानवरक्त से सींचा गया था।

असीरियावासियों की संस्कृति प्रायः बैबिलोनवासियों एवं सुमेरवासियों से मिलती-जुलती थी, क्योंकि, जैसा कि डेविस का मत है, संस्कृति एवं सभ्यता के क्षेत्र में उन्होंने इन दोनों का ही अनुकरण किया था। ये लोग देवताओं के मानवीय रूप की उपासना करते थे। इस जाति में भी वायु और आकाश की पूजा प्रचलित थी। उन्होंने बैबिलोन को नष्ट कर दिया था परन्तु उसके देवता 'मर्दुक' को अपना लिया। 'असुर' उनका प्रधान देवता था। युद्ध से पूर्व वे उसके आशीर्वाद की आकांक्षा करते थे। पुरोहितों का सम्मान किया जाता था परन्तु शासन-प्रबन्ध में उन्हें वह महत्त्व प्राप्त न था जोकि राजा हम्मूरब्बी के समय में था

निनैवे अपने समय का पूर्व का सबसे अधिक वैभवशाली नगर था। वह व्यापार और व्यवसाय का केन्द्र था। व्यापारीगण का असीरियन समाज में उतना महत्त्वपूर्ण स्थान न था जितना कि पुरोहित-वर्ग का था। वे मध्यम वर्ग में थे। कृषक एवं राजकीय कर्मचारी भी इसी वर्ग में सम्मिलित कर लिए जाते थे। असीरियावासी पराजित लोगों को बन्दी बना कर ले आते थे और उन्हें दासों की भाँति प्रयुक्त करते। दासों के साथ उतना अच्छा व्यवहार नहीं होता था जैसा कि राजा हम्मूरब्बी के समय में होता था।

असीरिया-वासी दो कार्यों में बड़े निपुण थे—युद्ध में और भोगविलास में। उनके जीवन में चिन्तन और गम्भीरता को कोई स्थान प्राप्त न था।

ऐश्वर्य भोगने में ही जीवन की सार्थकता समझी जाती थी। स्त्रियों को समाज में कोई महत्त्व न था। असीरिया-वासी उन्हें प्रेम और क्रीड़ा की वस्तु समझते थे। परिणामतः स्त्रियों में भी शृंगार-प्रियता की प्रवृत्ति का विकास हुआ। स्त्रियाँ भिन्न प्रकार से केश-शृंगार करती थीं। स्वर्ण एवं काँसे के आभूषण धारण करती थीं। सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग करती थीं। पुरुष लोग दाढ़ी रखते थे और उन्हें बड़े बड़े केश रखने का शौक था।

साहित्य के क्षेत्र में असीरियावासियों ने अपने पूर्ववर्त्ती और समकालीन जातियों का अनुसरण किया था। बैबिलोनवासियों की भाँति वे भी मिट्टी की तख्तियों पर 'कीलाक्षर-लिपि' का प्रयोग करते थे। फिर भी दो बातों में उन्होंने विशेष प्रगति की थी। इन लोगों ने फीनीशिया-वासियों की वर्णमाला को अपना लिया था। यह एक नई बात थी। बाद में इसी वर्णमाला ने 'कीला-क्षर-लिपि' का स्थान ग्रहण किया। कालान्तर में असीरियावासियों में यह भाषा इतनी लोकप्रिय हो गई कि राजकीय कार्य के लिए दोनों लिपियों का प्रयोग होने लगा। ऐसे लेख प्राप्त हुए हैं जिनमें 'कीलाक्षर-लिपि' के साथ इस 'वर्णमाला लिपि' का भी प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त असुरबनिपाल ने निनैवे में एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की थी जिसमें २०,००० पुस्तकों का संग्रह था। इससे पूर्व इतना बड़ा पुस्तकालय कहीं भी नहीं था। असुरबनिपाल को अपनी लेखन-कला पर गर्व था।

स्थापत्यकला, मूर्त्तिकला एवं चित्रकला में असुर जाति ने बैबीलोनवासियों से अधिक उन्नति की थी। यह एक आश्चर्य का विषय है कि इतने क्रूर और बर्बर होते हुए भी कला के प्रति उनकी तीव्र रुचि थी। निनैवे के महलों के खण्डहर उनकी उच्च स्थापत्य-कला के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ये लोग बड़े सुन्दर गोल महराब बना लेते थे। भवनों की रचना सुन्दर ढंग से की जाती थी। पत्थर पर नक्काशी के कार्य में भी ये लोग सिद्धहस्त थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें चित्रकला का भी अच्छा ज्ञान था। दीवारों पर खुदाई कर के सुन्दर चित्र बनाये जाते थे। इन चित्रों में पशुओं के चित्रों की प्रधानता है। चित्र बड़े आकर्षक और सजीव होते थे। ये लोग ईंटों को रँगना भी जानते। इन रँगी हुई ईंटों का प्रयोग मुख्यतः राजमहलों या मन्दिरों के निर्माण के लिए ही होता था। असुर लोग हाथी-दाँत का प्रयोग करना भी जानते थे। यह समृद्धिशाली व्यक्तियों के विलास की समग्री समझा जाता था। देश में कपास की खेती होती थी। इसलिए वस्त्र-उद्योग ने असीरियन साम्राज्य में बड़ी उन्नति

की थी। इन लोगों ने फलों की उपज की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया था। विशेषतः अंगूर की उपज बढ़ाने में उन्होंने बड़ी उन्नति की थी। फिर भी असुर-संस्कृति के विषय में एक बात पूर्णतः स्पष्ट है कि असीरियावासी बड़े चतुर अनुसरण-कर्ता थे, अच्छे आविष्कारकर्ता नहीं थे।

असीरियन साम्राज्य में राजा असीमित अधिकारों का उपभोग करता था। उसका आदेश ही कानून था। वह निरंकुश होता था। शासन-प्रबन्ध की ओर राजा बड़ा सतर्क रहता था। अतीत कालीन साम्राज्यों से उन्होंने यह शिक्षा ग्रहण की थी कि शासन की अव्यवस्था घर में शत्रुओं को जन्म देती है और घर के बाहर के शत्रुओं को पोषण प्रदान करती है। शासन-संचालन बड़ी कठोरता-पूर्वक होता था। सम्पूर्ण राज्य को लगभग ७० प्रदेशों में विभक्त कर दिया गया था। प्रत्येक प्रदेश के प्रबन्ध सम्राट के विश्वासपात्र व्यक्ति होते थे जो उसकी आज्ञानुसार कार्य करते थे। प्रत्येक प्रदेश एक निश्चित धनराशि सम्राट को नियमित ढंग से देता था। स्थानीय शासन में प्रबन्धक को पर्याप्त स्वतंत्रता थी। विशाल साम्राज्य के सुप्रबन्ध के लिए एवं व्यापार की उन्नति के हेतु सम्पूर्ण साम्राज्य में सड़कों का निर्माण कर दिया गया था। सम्राट स्थायी रूप से दूत और गुप्तचर रखता था जो उसे पूरे साम्राज्य के समाचार देते थे। परन्तु यह सब सुप्रबन्ध राजा के हित के लिये था, प्रजा के हित के लिए नहीं। इसीलिए प्रजा हृदय से सुखी न थी। राजा के प्रियपात्र अपने भोग-विलास के लिए जनता का शोषण करते थे।

राज-सत्ता और विलासी शासकों के मध्य सदैव ही वैर रहा है। विशेषतः निरंकुश शक्ति राज-सत्ता को ऐसे ही नष्ट कर देती है जैसे दीमक काष्ठ को कर देती है। असीरियन साम्राज्य के साथ भी ऐसा ही हुआ। असुरबनिपाल के बाद साम्राज्य की शक्ति का पतन आरम्भ हो गया। छोटी मछली को बड़ी मछली निगलती है। शक्ति-हीन असुर-साम्राज्य को ६१२ ई० पू० में मिडिया (मद) एवं खल्द (Chaldean) लोगों की संयुक्त शक्ति ने नष्ट कर दिया।

खल्द (Chaldean) **सभ्यता**—ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि ६१२ ई० पू० में मिडिया एवं खल्द की संयुक्त शक्ति ने असीरियन साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। इन लोगों ने निनैवे को पूर्णतया मिटा दिया। इस संयुक्त सेना का नेतृत्व खल्द जाति के नेबोपोलेसर ने किया था। इससे चार वर्ष पूर्व ६१६ ई०

पू० में उसने बेविलोन पर अधिकार कर लिया था। निनैवे के विनाश पर असीरिया के पड़ौसी राष्ट्रों ने खुशियाँ मनाई थीं। खल्द जाति सैमेटिक रक्त से सम्बन्धित थी और बैबिलोन एवं फारस की खाड़ी के मध्य के क्षेत्र में इनका मूल निवास था। बैबिलोनवासियों को ग्रीक लोग चाल्डीयन (Chaldean) नाम से पुकारते थे। इसीलिए खल्द लोगों को भी (Chaldean) ही समझा जाता था।

दोनों विजेता जातियों ने विशाल असीरियन साम्राज्य को आपस में विभाजित कर लिया। मोडियावासियों ने सम्पूर्ण असीरिया को लिया, जबकि मैसोपोटामिया आदि शेष देशों पर नेबोपोलेसर ने अधिकार कर लिया।

नेबूचैदनेजार (Nebuchadnezzar) इस जाति का द्वितीय सम्राट हुआ। वही इस साम्राज्य का महानतम राजा हुआ। उसके शासनकाल के विषय में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। कुछ इतिहासकार इसके शासनकाल को ई० पू० ६०५ से ५६२ तक मानते हैं, अन्य इसे ६०० से ५६१ तक मानते हैं। एक तीसरे मत के अनुसार जिसका समर्थन इतिहासकार डेविस भी करता है, यह समय ई० पू० ६०४ से ५६१ तक का था। परन्तु ६०५ से ५६२ तक की अवधि समर्थन की पुष्टि में नवीनतम खोजें बड़ी सहायक सिद्ध हुई हैं। अतः इसे ही नेबूचैदनेरजार का वास्तविक शासनकाल का समय मानना चाहिये। यह सम्राट बड़ा न्यायप्रिय, योग्य एवं बुद्धिमान शासक था। वह बड़ा कुशल शासन-प्रबन्धक था। उसने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को सुसंगठित किया। लोकप्रिय-शासन की दृष्टि से राजा हम्मूरब्बी के पश्चात वही एक ऐसा शासक हुआ जिसके शासन में प्रजा तन-मन धन तीनों से सुखी थी। उसने अपने पूर्ववर्त्ती सुमेरवासियों एवं बैबिलोनवासियों की सभ्यता और संस्कृति का आदर किया। उसने बैबिलोन में झूलते हुए उद्यानों का निर्माण कराया जिनको देखकर यूनानी लोग भी आश्चर्य-चकित हो गए थे। ये उद्यान महलों की छतों पर लगाये गये थे। छतें मजबूत बनाई जाती थीं। इन छतों के ऊपर शीशे की चादरें बिछादी जाती थीं। शीशे की इन चादरों के ऊपर मिट्टी डाली जाती थी। इस मिट्टी में पौधे लगाये जाते थे। छतें सुन्दर स्तम्भों एवं महराबों पर आधारित होती थी। यह कहा जाता है कि ये झूलते हुए उद्यान ४ एकड़ भूमि में फैले हुये थे।

नेबूचैदनेजार के राज्य-काल में बैबिलोन अत्यन्त गौरवशाली नगर बन गया था। पूर्व में उसकी तुलना का अन्य कोई नगर न था। वाणिज्य, व्यवसाय, उद्योग, कला, साहित्य, विज्ञान आदि प्रत्येक क्षेत्र में बैबिलोन विश्व का

सबसे अधिक उन्नतिशील नगर हो गया। सम्राट शान्ति और सुरक्षा के महत्त्व को जानता था। उसने अपने पड़ोसी मिश्र, मिडिया, फारस आदि राष्ट्रों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे ताकि उसका देश प्रगति कर सके। उसके समय में बैबिलोन में जवाहरात बड़ी सुन्दरता के साथ काटे जाते थे। कीमती और सुन्दर कालीन बनाये जाते थे। सोने और चाँदी के काम में भी बैबिलोनवासियों ने बड़ी उन्नति की थी। आभूषण और जवाहरात के काम के लिए बैबिलोन वहुत प्रसिद्ध हो गया था। यहाँ की मलमल और वस्त्र पूर्व में बड़े लोकप्रिय थे।

विज्ञान एवं गणित के क्षेत्र में भी खल्द लोगों ने अनेक सफलताएँ प्राप्त की थीं। ग्रहों की स्थिति के आधार पर वे भविष्यवाणी करते थे और ग्रहणों का पूर्व ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। उन्होंने तारों को १२ समूहों में विभक्त कर दिया था। ये बारह समूह वही हैं जिन्हें अब पाश्चात्य संसार Twelve Signs of Zodiac के नाम से पुकारता है। इन्होंने मुख्य-मुख्य ग्रहों के नाम भी रखे। ये संख्या में सात थे। प्रत्येक दिन का नाम उसी ग्रह-देवता के नाम के अनुसार हो गया जिसकी उस दिन पूजा होती थी। बाद में यूनानी और रोमन लोगों ने यही नाम अपने देवी और देवताओं के अनुसार रख लिए। तभी से सप्ताह के वर्तमान सातों दिन चले आ रहे हैं। इस विषय में पश्चिम खल्द लोगों का ऋणी हैं। नेबूचँदनेजार स्वयं एक कला-प्रेमी और सुसंस्कृत व्यक्ति था। अतएव उसने अपना अधिकांश राज्य-काल संस्कृति के विकास के हेतु अर्पित कर दिया था। उसने प्रधानतः शान्ति की नीति का ही अनुसरण किया, यद्यपि उसे यहूदियों के विद्रोह का दमन करने के हेतु दो बार जहूा (Judah) पर आक्रमण करना पड़ा। दूसरी बार उसने यहूदियों का पूरी तरह से दमन किया और अधिकांश विद्रोही यहूदियों को कैदी बनाकर बैबिलोन ले आया।

नेबूचेदनेजार की मृत्यु के ६ वर्ष पश्चात लगभग ५५५ ई० पू० में नेबोनिडस खल्द (Chaldea) नाम का राजा हुआ। वह एक उदार और दयालु शासक था। ज्ञानार्जन और पुरातत्व सम्बन्धी खोजों में उसकी विशेष रुचि थी। उसने अपने समय में बैबिलोन में अनेक जगह खुदाई करवाई थी। इस ओर उसकी इतनी रुचि थी कि उसे राज-कार्य भी नीरस प्रतीत होता था। उसने मिश्र के अखेनातन की भाँति बैबिलोन में धार्मिक सुधार करने की भी चेष्टा की थी। इससे बैबिलोन-वासी—विशेषतः पुरोहित वर्ग उससे असन्तुष्ट हो गया। इससे उसका मन राज-कार्य की ओर से और भी अधिक विरक्त

हो गया और उसने राज्य अपने पुत्र बेल्शेजार (Belshazzar) को सौंप दिया।

बेल्शेजार अयोग्य शासक था। जनता में उसके प्रति तनिक भी श्रद्धा न थी। वह बड़ा अदूरदर्शी था। फलतः फारस के सम्राट कुरुष (Cyrus) के आक्रमण के भय से उसने मिश्र, एशिया माईनर के लीडिया और यूनान के स्पार्टा राज्यों से सन्धि कर ली। परन्तु कुरुष ने तत्काल ही लीडिया पर आक्रमण करके उसे पराजित किया और उसके बाद बैबिलोन की ओर अग्रसर हुआ। बैबिलोनवासी बेल्शेजार से पहले ही असन्तुष्ट थे, उन्होंने राजा का साथ नहीं दिया। इस प्रकार कुरुष ने ५३८ ई० पू० में खल्द साम्राज्य का अन्त कर दिया। खल्द साम्राज्य के अन्त के साथ ही हजारों वर्षों से चला आ रहा सैमेटिक जातियों (सुमेरवासी, बैबिलोनवासी, असीरियावासी और खल्द—चारों ही सैमेटिक जाति के थे) का साम्राज्य भी समाप्त हो गया। इसके पश्चात आर्य जाति के लोगों का प्रभुत्व स्थापित हुआ। इनमें प्रथम थे ईरानवासी।

चीन—चीन भी संसार की प्रारंभिक सभ्यताओं के निवास-स्थल के रूप में गिना जा सकता है। पुरातत्वविदों ने अनेक प्राचीन पाषाणों की खोज की है। आदिम चीनी गाँवों में रहते थे और सूअर पालते थे। वे कुल्हाड़ों और पत्थर के चाकुओं का प्रयोग करते थे। वे बुनना जानते थे और मिट्टी के बर्तन भी बनाते थे। वैल्स ने लिखा है कि लगभग २७०० से २४०० ईस्वी पूर्व चीन में सम्राटों का शासन था।

जॉन वैन ड्यून साउथवर्थ के अनुसार चीन की प्राचीन सभ्यता भी नदियों के किनारे ही विकसित हुई थी। दजला और फरात से लगभग ५००० मील दूर की भूमि चीन है। यहाँ की धरती उपजाऊ है। किन्तु चीन की प्राचीनता के प्रमाणों का अभाव मनुष्य कृत है। लगभग २२१ ईस्वी पूर्व में शी-ह्वांग ली नामक एक चीनी सम्राट को अपने ऊपर इतना गर्व हो गया कि उसने अपने समय में सारे ऐतिहासिक प्रमाण नष्ट करवा दिये ताकि आगे की पीढ़ियाँ उसी से इतिहास का प्रारंभ जान सकें। यद्यपि आगे की पीढ़ियाँ इस बात को नहीं मानतीं किन्तु इतिहासज्ञों का कार्य निश्चय ही काफी कठिन हो गया।

चीन में मनुष्य की उपस्थिति बहुत ही प्राचीन काल में मिलती है। उसे 'पेकिंग का मनुष्य' कहते हैं। वह निएनडरथाल मानव से भी प्राचीन था।

यद्यपि इसके प्रमाण नहीं मिलते कि वहाँ मनुष्य तब से निरंतर रहा, परन्तु चीन की पुरानी कथाएँ बताती हैं कि लगभग ३००० ईस्वी पूर्व में कुछ अर्द्ध सभ्य जातियाँ पश्चिम से चलकर यांग्सी नदी की घाटी में बस गई थीं। यह लोग रंग के पीले थे, और मंगोल थे। इनके पास पशु थे और वे खेती भी करना जानते थे। उनके यांगसी घाटी में बसने पर एक राज्य स्थापित हुआ। ३००० ईस्वी पूर्व यद्यपि पुरानी तिथि है, किन्तु संभवतः यह घटना और भी प्राचीन हो सकती है।

लगभग २२०५ ईस्वी पूर्व में यू नामक चीनी नेता सम्राट बन गया। वह बड़ा प्रचण्ड शासक था। उसने, कहा जाता है, नौ पर्वत काटकर नौ झीलें बनाईं। उसने अनेक अद्भुत कार्य किये। उसने गोबी रेगिस्तान की ओर पश्चिम में भी विजय प्राप्त की और दक्षिण की कुछ आदिम जातियों को भी पराजित किया। यू के वंशज ह्सिया अर्थात सभ्य कहलाये। उन्होंने २२०५ से १७७५ ईस्वी पूर्व तक शासन किया। अंतिम शासक निष्ठुर प्रमाणित हुआ और १७७६ ई० पू० की क्रान्ति के समय यह भाग गया।

क्रांति का नेता तांग था। उसके नाम से शांग वंश का राज्य स्थापित हुआ। इस वंश ने ११२२ ई० पू० तक राज्य किया। इस वंश का अंतिम शासक भी अत्याचारी हो गया और चाउ प्रांत के लोगों ने विद्रोह कर दिया। शांग सम्राट ने आत्महत्या कर ली और चाउ वंश सशक्त हुआ।

ह्सिया और शांग वंशों के राज्य-काल में चीनियों में धीरे-धीरे सभ्यता विकास करती गई। उन्होने खेती के लिए घोड़ों का प्रयोग प्रारंभ किया। वे घोड़ों को यातायात के काम में भी लाने लगे और युद्ध में भी उनसे काम लेते थे। धातु-प्रयोग प्रचलित था। वे ताँबा, काँसा, सोना और चाँदी का प्रयोग करते थे। रेशम के कीड़े पालना, रेशम बुनना, इत्यादि कार्य चीनियों में प्रचलित थे। चीन की सभ्यता का विकास एकांत ही रहा। अन्य जातियों से उसका संपर्क बहुत दिन बाद हुआ। मिश्र, सुमेरु के विषय में तो संभवतः वे जानते भी न थे। संभवत: भारत से उनका संपर्क था, क्योंकि ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि ३५०० ई० पू० के लगभग भारत और चीन में कुछ संबंध था। वाल्मीकि रामायण जिसे पाश्चात्य विद्वान लगभग २०० ई० पू० की रचना मानते हैं उसमें भी चीन से आने वाले रेशम का उल्लेख मिलता है। यदि आज से बाईस सौ वर्ष पहले भारत में चीन से रेशम आता था। तो इसे मानने में अत्युक्ति नहीं होगी कि संपर्क और भी पुराना अवश्य रहा होगा।

चाऊ वंश का चीन में विशेष महत्त्व है। इसे चीन का स्वर्ण युग कहा जाता है। सम्राट को वांग कहा जाता था। वह न केवल शासक था, वरन् उसे मुख्य धर्म गुरू भी माना जाता था। लाओत्सू नामक दार्शनिक ने वांग को संबोधित करके ही अपनी सत्पथ पर ले जाने वाली कविताएँ लिखी हैं। सारी भूमि वांग की होती थी। वह उसे कुलीनों में बाँट दिया करता था। कुलीन अपनी भूमि और अपने किसानों के स्वामी होते थे। कारीगर के लिये धंधा राज्य की ओर से नियत किया जाता था। परिवार को प्रमुखता दी जाती थी। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि चीन में पूर्वज-पूजा इसी कारण प्रारंभ हुई कि वहाँ परिवार में बड़ों का आदर बहुत महत्त्व रखता था।

इसी काल में कन्फ्यूशस, और मैंजन्स आदि मेधावी दार्शनिक चीन में जन्मे और उन्होंने अपने अमूल्य उपदेश जनता को सुनाये। यह समय वही है जब भारत में गौतम बुद्ध थे।

चाउ वंश का अंत २५६ ई० पू० में हुआ।

लगभग २२१ ई० पू० में शी ह्वांगती सम्राट ने पुराने इतिहासों को नष्ट करवाया और इसी के समय में सौ वर्ष से मंगोलों के आक्रमण से बचाने को बनाई जाती चीन की विशाल प्राचीर संपूर्ण हुई। यह दीवार १४०० मील लंबी, औसतन २५ फुट ऊँची और १५ फुट मोटी थी, जिसके अवशेष अब भी विद्यमान हैं।

डेविस के मतानुसार चीन की जनता शांतिप्रिय थी। वहाँ योद्धा होना श्रेष्ठ नहीं माना जाता था। चीन में चार प्रमुख वर्ग थे: मण्डारिन, यह ब्राह्मणों की भाँति बुद्धिमानों का वर्ग था, किन्तु जन्म के आधार पर स्वीकार नहीं किया जाता था। दूसरा वर्ग किसानों का था। तीसरा वर्ग कारीगरों का था और चौथा वर्ग अधिकारियों का था। अधिकारियों को योग्यतानुसार चुना जाता था। चीन में संयुक्त परिवार प्रथा थी। परिवार की आय वयोवृद्ध के पास एकत्र होती थी। राज्य भी परिवारों को वैधानिक मान्यता प्रदान करता था। पितृसत्ताक समाज था अतः पुरुषों को समाज में अधिक मान्यता प्राप्त थी। माता-पिता ही लड़कियों और लड़कों के विवाह तय करते थे। बाल-विवाह वर्जित था। तलाक प्रथा प्रचलित थी। धनी व्यक्ति बहु-विवाह करते थे और रखैल भी रखते थे।

चीन के लोग प्रकृति की उपासना करते थे। आकाश पुरुष था और पृथ्वी स्त्री। इनको वे यांग और यिन मानते थे।

चीन की एक विशेषता है कि इसको चित्र-लिपि का बहुत प्राचीन काल से ही परिचय प्राप्त होता है। चीन में नैतिकता को सामाजिक जीवन के लिये अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता था, और चीन के दार्शनिकों में हमें प्रायः यही मिलता है, दर्शन के क्षेत्र में चीन में अधिक वैविध्य नहीं मिलता। चीन ने पारा, बारूद, कागज, पत्थर का कोयला, कुतुबनुमा, ज्योतिष में ग्रहण का ज्ञान और ऐसी अन्यान्य वस्तुओं तथा विषयों का आविष्कार संसार में सबसे पहले किया। यद्यपि चीन ने स्थापत्य-कला में विशेष उन्नति नहीं की, किन्तु चित्र और संगीत में विशेष अभिरुचि दिखाई। चीन खेतिहर देश था, यद्यपि यहाँ अन्य व्यवसाय भी थे। चीन की प्रशासन व्यवस्था संसार के प्राचीन देशों में बहुत ही बढ़ी हुई थी। आज भी उसको देखकर चकित रह जाना पड़ता है। चीन की मुख्य देन उसकी नैतिकता के प्रति घोर आस्था है और इसी के कारण परवर्ती काल में भारतीय बौद्धमत वहाँ विकसित हो सका।

भारत—संसार की सबसे बड़ी समस्या है भारतीय संस्कृति। यूरोपीय विद्वानों के लिये भारत एक बड़ी मुसीबत है। भारत में इस्लाम आया तब उसके उपदेश भी यहाँ मौजूद थे, जब ईसाई आये तब भी यहाँ मानववाद मौजूद था। यद्यपि वहाँ छुआछूत, देवी देवताओं का बाहुल्य जैसी उलझनें हैं, पर दर्शन में यहाँ बड़ी गहराइयाँ हैं। यहाँ कला, साहित्य और संगीत भी कम नहीं। रही विज्ञान की बात। यूरोप के लोगों ने बहुत विकास किया है, परन्तु भारत ने भी योग के चमत्कारों वाला पक्ष आगे कर दिया है। भारत बहुत दिनों से दास रहा, परन्तु फिर भी वह मरा नहीं है। इसमें अनेक संस्कृतियाँ आईं पर आकर इसमें खो गईं। इसमें अनेक कथाएँ हैं, परंतु इतिहास का लिखा हुआ विवरण नहीं हैं। अतः अंगरेजी राज्य में यूरोपीय विद्वानों ने भारतीय इतिहास का प्रारंभ सिकन्दर से माना। परन्तु फिर दुर्भाग्य आ गया कि मोहन-जो-दड़ो और हरप्पा के खंडहर मिले। अब लोथल और मिल गया है; रंगपुर, रूपड़ और अनेक स्थान उसी प्राचीन संस्कृति के मिल गये हैं।

तब पहले जिस हरप्पा संस्कृति को यूरोपीय विद्वानों ने ३५०० ई० पू० माना था, अब वे उसे धीरे-धीरे २००० ई० पू० तक उतार लाये हैं। पहले उनका कहना था कि यूनान से भारत ने सबकुछ सीखा, पर हरप्पा ने यह मामला बिगाड़ दिया। तब उन्होंने कहा कि सुमेरु सभ्यता से भारत ने सबकुछ सीखा।

आजकल भारतीय इतिहास के नाम पर पहले तो सिंधु घाटी की सभ्यता का उल्लेख होता है। और फिर यह कहा जाता है कि ई० पू० १५०० मे आर्य भारत मे आ गये। एक मत के लोग कहते है आर्य भारतीय ही थे। वे कही से नही आये। बल्कि मिस्री, सुमेरुवासी, एष्टक, इन्का और पर्शु (फारसी लोग) सब यही से बाहर गये। वैसे सचमुच ही भारतीय सस्कृति का इनमे काफी प्रभाव मिलता भी है। पर हम निश्चय से तो नही कह सकते। मैक्समूलर ने प्रतिपादित किया था कि आर्य बाहर से आये। विन्टरनित्स के समय तक उनका आगमन २५०० ई० पू० तक था, पिगट तक आते-आते १५०० ई० पू० रह गया, बल्कि और लोग तो १००० ई० पू० तक उतार लाते है।

पहले मै विदेशो से भारत के कुछ साम्य बता दू ँ।

मिस्र मे नाग गरुड पूजा प्रचलित थी, वृषभ पूजा भी थी। सुमेरु मे हैमात आदि की उपासना थी। इन्का का अर्थ संस्कृत मे सूर्यशिल्पी होता है। माया सभ्यता की स्त्रियाँ साडी पहनती थी। यूनानी, तथा फारस के लोग और निकटवर्त्ती लोगो के देवता भी अग्नि, इन्द्र इत्यादि से मिलते जुलते है। यह साँस्कृतिक अतभुक्ति का फल हो सकता है। यह भी हो सकता है कि विभिन्न समयो मे भारतीय जातियाँ बाहर जाती रही है। आर्य बाहर से आये थे इसका कोई पक्का प्रमाण नही मिला है। एक वर्णन महाभारत मे सरस्वती तीर्थ के बारे मे आता है कि एक बार ऋषि लोग नैमिषारण्य मे एकत्र हुए। जब वे वहाँ समा न सके तो पूर्व की ओर बढे। यह भी उल्लेख है कि मिथि जनक ने मिथिला बसाई थी। यह भी उल्लेख आता है कि अगस्त्य और दंड दक्षिण मे गये थे। पर इससे यह तो निश्चित नही हुआ कि ये बाहर से आये थे। सपूर्णानंद का कहना है कि ऋग्वेद मे एक गर्म देश का सा भी उल्लेख है, यह नही कहा जा सकता कि आर्य ठडे देश के वासी थे। तिलक का कहना है कि वे उत्तरी ध्रुव से आये थे। पाश्चात्यो का कहना था कि ऋग्वेद के दसवे मडल मे ही गगा का वर्णन है, अतः आर्य बाद मे वहाँ पहुँचे थे। पर ऋग्वेद मे चीते का भी उल्लेख नही है। परन्तु हरप्पा मे चीते की जानकारी थी, ऐसा वहाँ एक सील से प्रगट हुआ है। हरप्पा को पाश्चात्य आर्यों से पुराना मानते है, कि हरप्पा ही को आर्यों ने नष्ट किया था और हरप्पा को ही ऋग्वेद मे हरयूपीय कहा गया है। (यद्यपि इस हरयूपीय नगर का पुराणो तथा महाभारत—कही भी और उल्लेख नही मिलता।) तब तो आर्यों को भी

चीते की जानकारी होनी चाहिये थी। हरप्पा को अनार्यों का कहने का एक कारण था कि वहाँ घोड़ा नहीं मिला था, और घोड़ा आर्यों के पास था। परन्तु हरप्पा संस्कृति का परवर्ती काल लोथल में निकला है, और वहाँ घोड़ा भी मिला है। अतः यह भी कुछ स्पष्ट नहीं रहा। पिल्लई का मत है कि अरा शब्द से आर्य निकला है। खेती करने वाले आर्य थे। द्राविड़ और उराँव तथा मुँडा लोगों की जातीय अंतर्भुक्ति (racial assimilation) से आर्यों का जन्म हुआ था। वे बाहर के नहीं थे। यहीं से बाहर गये थे। पर पुरानी जातियों की अंतर्भुक्ति से एक वैदिक संस्कृति का निकलना तर्क-संगत नहीं लगता। फिर स्पष्ट ही इसका उल्लेख है कि आर्य किसी से लड़ कर बढ़े थे, जीते थे। यदि वे यहीं के होते तो वे किन अनासों (बिना नाक वालों) से लड़े थे? इधर के. एन. शास्त्री ने बहुत ही तर्कसंगत ढंग से बताया है मोअन-जो-दड़ो और हरप्पावासी वास्तव में पीपल वृक्ष को महत्त्व देते थे। मोअन-जो-दड़ो में जो दो सींगों वाले देवता की ध्यानमग्न योग-मुद्रा में बैठी आकृति निकली है वस्तुतः वह मनुष्य नहीं है। वह एक भैंसे का सिर है। उसके हाथ काँतर हैं और पाँव सांप हैं। अनेक पशुओं को मिलाकर वह एक देवता बनाया गया है। मोअन-जो-दड़ो में वृक्ष में भी एक देवता बनाया गया है।

हमारे मतानुसार ऋग्वेद में वृक्ष में यक्ष बताया गया है। क्या हम इससे यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मोअन-जो-दड़ो और हरप्पा में यक्ष और नाग आदि जातियाँ थीं? वाल्मीकि रामायण में उल्लेख है कि राम के भाई भरत के पुत्रों ने सिंध प्रदेश में गंधर्वों की समृद्ध बस्ती को जीता था। सरस्वती नदी के तट पर, महाभारत में उल्लेख है, बलराम को समृद्ध नागों की बस्तियाँ मिली थीं; जिन्हें अमीरों ने उजाड़ा था। यह सब विषय फिर से सोचने को बाध्य करने वाले तथ्य हैं।

डॉन और इयूइंग ने खोज से प्रमाणित किया है कि ११००० वर्ष पूर्व उत्तरी ध्रुव प्रदेश का जलवायु नम था, और उन दिनों अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान को भूमि में घने जंगल थे। सहारा में वे गुफाएँ भी मिल गई हैं जिनमें चित्र बने हैं और घने वन के जंतुओं के ही वे चित्र हैं। यदि हम मान लें कि आर्य तब से दक्षिण को चले और क्रमशः शताब्दियों में उत्तर कुरु पार करके भारत आये तो विचार के लिये नया प्रदेश खुल जाता है।

इससे पूर्व कि हम इस प्रकार के किसी निष्कर्ष पर पहुँचें, वर्तमान काल

में जो मान लिया गया है कि आर्य १५०० ई० पू० में आये, और वैदिक काल १२०० ई० पू० से १००० ई० पू० तक था, इसका विवेचन करें।

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने इसे मान लिया है।

विज्ञान को कोई चुनौती कैसे दे? आजकल रेडियो कार्बन डेटिंग (रेडियो कार्बन की जाँच से तिथि निर्णय) होता है। उसे सब चुनौती देते डरते हैं। परन्तु क्या वह पक्का तरीका है? मैन्चैस्टर विश्वविद्यालय के एच. एच. राडले नामक सेमेटिक विद्वान ने जी. ई. राइट को उद्धृत किया है, जिन्होंने इस पर जाँच की और कार्बन १४ टैस्ट के एक ही लकड़ी के टुकड़े पर तीन प्रयोगात्मक परीक्षण किये गये तो उसी एक टुकडे की तीन बार के अलग अलग प्रयोगों में तीन तिथियाँ निकलीं—७४६ ई० पू०, ६९८ ई० पू० और २८९ ई० पू० और तीनों तिथियों के बारे में यह भी कहा गया है कि हर तिथि के इधर या उधर २७० वर्ष घटाये बढ़ाये जा सकते हैं। यानी जो वस्तु ७४६ ई० पू० की थी वह ७४६—२७०=४७६ ई० पू० की भी हो सकती है, और ७४६+२७०=१०१६ ई० पू० की भी हो सकती है।[1]

इससे यही ज्ञात होता है कि अभी स्वयं रेडियो कार्बन डेटिंग भी पूरी तरह से अंतिम निर्णय के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। वह धीरे धीरे ही बिल्कुल ठीक तिथि बताने में समर्थ हो सकेगा। आज जो ११०० ई० पू० बताया गया है वह ११००+२७०=१३७० भी हो सकता है और ११००—२७०=८३० भी।

यह तो रही तिथि-निर्णय के इस वैज्ञानिक पक्ष की बात। रही यह कि जो इस आधार पर भारत में हस्तिनापुर की प्राप्त वस्तुओं को महाभारत-कालीन ही मान लिया गया है, उसका कोई प्रमाण तो मिला नहीं है। रेडियो कार्बन डेटिंग से आज यह हो सकता है कि हम बता सकें कि कितने हजार वर्ष की वस्तु हो सकती है, परन्तु यह नही कि यह १२०० की है या १३०० की है। और फिर यदि यह भी संभव हो तो यह किस तरह कह सकते हैं कि यह अमुक वस्तु है, अमुक काल की है। प्रमाण में कहा गया

1 The meaning of the dead sea scrolls—A Powell Davies Signetkey Book U. S. America June 1956, pp. 41.

है कि हस्तिनापुर में बाढ़ आई थी और यहाँ भी बाढ़ के चिन्ह हैं। परन्तु प्रश्न है कि क्या किसी नदी में एक ही बार बाढ़ आती है? इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान लोगों ने पुराणों के भी साक्ष्य देने की चेष्टा की है। ऊपर हमने मुंशी जी का नाम बताया है, यहाँ हम मुंशी जी के प्रमाणों का विवेचन करते हैं।

यदि हम स्वीकार कर लें कि हरप्पा संस्कृति की बैल्ट नष्ट हो गई और चित्रित भूरे पात्रों (painted grey ware) वाले लोगों ने ११५० ई० पू० के लगभग वहाँ निवास किया था, तो भी हमारी समस्या नहीं सुलझती। यदि तब आर्य्य ही आये थे और यहाँ वे बस गये थे, तो भाषा की समस्या बिल्कुल नहीं सुलझती। भारत में कई विदेशी आये हैं—यूनानी, शक, कुषाण, तुर्क, मुगल और तब अंगरेज। न तो इन विदेशियों की भाषा जनता में उतरी, न उनका आर्यों की संस्कृति की भाँति विकास ही हुआ। यदि आर्य तभी भारत में आये थे तो वे इतनी शीघ्रता से अपनी भाषा जमा करके भारत की मूल भाषाओं को कैसे हटा सके? ६०० ई० पू० में पाणिनि ने लौकिक संस्कृत के व्याकरण की रचना की है, जिसका अर्थ है कि तब तक वैदिक भाषा विकसित होते-होते लौकिक भाषा का रूप धारण कर चुकी थी, जो बोलचाल में भी काम आती थी। परन्तु अनार्य भाषाओं का क्या हुआ? क्या वे लुप्त हो गईं? इतनी शीघ्र खो गईं? या उस समय आर्यों के अन्तिम दल का आक्रमण हुआ था? संस्कृत भाषा का जनता तक उतर जाना तो यह प्रमाणित करता है कि आर्य्यों और अनार्य्यों का संपर्क काफी लंबे समय तक चला, उनका सह-अस्तित्व रहा और इससे प्रगट होता है कि आर्य्य जातियाँ भारत में एक बार नहीं, अनेक बार आई होंगी। यदि हम अवैज्ञानिक ढंग से कहें कि लौकिक संस्कृत तो कभी जनभाषा थी ही नहीं, तब भी लगभग ६०० ई० पू० में पाली जनभाषा थी, जिसका वैदिक प्राकृत से विकास हुआ था। ७०० ई० पू० में यास्क ने वैदिक भाषाओं को दुरूह कहा है, क्योंकि उसके अनुसार वैदिक भाषा बहुत प्राचीन हो चुकी थी। क्या हम मान सकते हैं कि ४०० वर्ष में ही भाषा दुरूह हो जाती है?

आर्य्यों के आगमन का काल का हस्तिनापुर की खुदाई पर निर्णय किया गया है। रेडियो कार्बन डेटिंग हुआ है। अतः यह प्रामाणिक काल माना गया है कि समय १००० ई० पू० ही था, जब हस्तिनापुर नष्ट हुआ था। परन्तु रेडियो कार्बन डेटिंग से यह कैसे पता चलता है कि वहाँ आर्य्य ही रहते थे?

हस्तिनापुर के प्रथम दो आवासों में लोहा नहीं मिला है, तीसर में अवश्य मिला है। भारत में लोहा कब आया, यह भी एक विवादास्पद विषय है। मुन्शी जी के अनुसार यदि हम स्वीकर कर लें कि—

(१) महाभारत युद्ध ८७० ई० पू० में हुआ था,

(२) उग्र श्रवस ने वैशम्पायन को मूल महाभारत सुनाते सुना था, जब कि तक्षशिला में जनमेजय ने नागयज्ञ किया था,

(३) जनमेजय अर्जुन का नाती था, उस समय व्यास वहाँ मौजूद थे।

(४) और व्यास तथा जनमेजय की मृत्यु ८३० ई० पू० में यों रखी जा सकती है कि व्यास, पाराशर पुत्र, जिनका संहिता में भी उल्लेख है ६५० ई० पू० में पैदा हुए थे—

तब भी हमारे सामने अड़चन आती है। हमें यह भी मानना पड़ता है कि संहिता (वैदिक) की भाषा और महाभारत (लौकिक) की भाषा दोनों ही सम-सामयिक थीं, जब कि अथर्ववेद और उपनिषदों में वैदिक भाषा का क्रम-विकास दृष्टिगत होता है। इसकी हम व्याख्या किस प्रकार कर सकते हैं? इसका अर्थ तो होता है कि आर्य्य दो बोलचाल की भाषाएँ लेकर आये थे—एक वैदिक, दूसरी लौकिक? यह बात समझ में नहीं बैठती। या तो तब भाषाएँ बड़ी तेजी से बदलती थीं या पलक मारते जनता में उतर जाती थीं। या तो सारे उत्तर भारत में तब कोई नहीं रहता था, हर जगह हरप्पा-सभ्यता अपने आप लुप्त हो जाती थी, उसका कहीं चिन्ह भी नहीं बचा था, या यहाँ के मूल निवासी नयी भाषा सीखने के इतने शौकीन थे कि वे किसी विदेशी के आकर नयी भाषा देने की प्रतीक्षा कर रहे थे। और आश्चर्य तो यह है कि यह भूरे पात्रों के लोग भी कैसे विचित्र थे कि हस्तिनापुर तो उन्होंने बाढ़ के कारण छोड़ा, परन्तु रूपड़ का बिना बाढ़ के ही परित्याग कर गये।

यदि हम यह मान लें कि वैदिक भापा बोगजकोई के लेखों की भाषा से विकसित हुई, लगभग १४०० ई० पू० के समकालीन ही, और संहिताओं की रचना १००० से ८३० ई० पू० में हुई तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि ८३० से ६०० ई० पू० के २०० वर्ष में ही वैदिक भाषा की जगह लौकिक ने ले ली और पाणिनि भाषा के पूर्ण विकास के पहले ही उसका इतना अच्छा व्याकरण भी लिख गया? जब वैदिक ऋषि ने 'पुरा' अर्थात्

प्राचीनकाल का वर्णन किया है तब हमें यही मानना होगा कि वह ज्यादा से ज्यादा १०० या २०० बरस की बात कह रहे हैं। क्या उस समय लोगों की याद इतनी कमजोर थी।

यह प्रश्न हमारे सामने आते हैं और हमें इन्हें देखना होगा और अपने पूर्वाग्रहों का त्याग आवश्यक है। यदि हरप्पा बैल्ट अनार्य है और चित्रित ग्रे पात्र बैल्ट आर्य्यों के अंतिम आक्रमण का प्रतीक है तो हमें उन आर्य्यों को ढूँढना पड़ेगा जो हस्तिनापुर में नहीं बसे, बल्कि अयोध्या और अन्य स्थानों में अनार्य्यों के साथ रहे और शताब्दियों में ही उनकी भाषा इतनी उतर सकी। यदि हम मान लें कि पीले पात्रों वाले (ochre coloured ware) भी कोई आर्य्यों से पुराने लोग थे, जिनके वंशज कंस और जरासंध थे, और यह लोग २०० वर्ष रहे (लगभग १४०० से १२०० ई० पू० तक) तो हमें यह याद रखना पड़ेगा कि कंस कृष्ण की जाति का था और कृष्ण यदुकुल के थे, जोकि कुरुओं के एक पूर्वज थे। तो क्या उन्हें आर्य्य-पूर्व कहा जा सकता है ?

परंपरा पुरु से पाण्डवों तक ३८ पीढ़ियाँ बताती है और यदि औसत एक पीढ़ी बीस वर्ष की मानी जाय तो ३८×२०=७६० वर्ष होते हैं। यदि महाभारत युद्ध ८७० ई० पू० में माना जाता है, तो पुरु का समय १६३० ई० पू० होता है और यह बोगजकोई के लेखों के समय से पहले पहुँच जाता है। हम ऐसा तो नहीं कर सकते कि अपनी सहूलियत के लिये परंपराओं से थोड़ा भाग ले लें और थोड़ा सा छोड़ दें। यदि ११५० ई० पू० में आर्य्य हस्तिनापुर पहुँचे थे तो वह समय हस्तिन का होना चाहिये, जो पाण्डवों से १६ पीढ़ी पहले हुआ था। उसका समय ११९० ई० पू० होगा, लेकिन उसके जो २२ पूर्वज गिनाये गये हैं, उनकी व्याख्या हम कैसे कर सकेंगे ?

मैं तनिक इस परम्परा पर और भी विचार करना चाहता हूँ।

ऋग्वेद में मनु, इला, पुरुर्वा, आयु, नहुष और ययाति को (पुरा) प्राचीनकाल के व्यक्तियों के रूप में वर्णित किया गया है। इसका अर्थ है कि जब इन ऋचाओं की रचना की गई थी तब तक अनेक पीढ़ियाँ गुजर चुकी थीं। यदि इन्द्र को हरप्पा निवासियों से लड़ने वाला पुरंदर माना जाये तो वह स्वयं ऋग्वेद में अतीत के व्यक्ति के रूप में उल्लिखित है। फिर पुरु के भाई थे यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु। यदु की संतान यादव थे, और कृष्ण भी इन्हीं में जन्मे थे। पौरव या बाद में कौरव कहलाने वाले पुरु की संतान थे। द्रुह्यु भोज की संतान थे और अनु म्लेच्छ की। यदि (ग्रीक आदि के रूप में)

यवन और म्लेच्छ भारत में बाद में आये थे, तो उन्हें प्राचीन परम्परा में वर्णित करने की कोई ऐसी आवश्यकता नहीं थी। पौराणिक परम्परा यह स्पष्ट कहती है कि यवन तो आर्यों में से ही जन्मे थे। महाभारत में जब कृष्ण युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने की सलाह देते हैं तब उन्होंने स्वीकार किया है कि उनकी जाति के लोग, यदु की संतान थे और उनका सम्मान उतना नहीं था जितना पुरुवंश का। उन्होंने कहा है कि परशुराम के युग के ब्राह्मण-क्षत्रियों-युद्धों में क्षत्रियों का बहुत ध्वंस हो चुका था। तत्कालीन अधिकांश क्षत्रिय अपने को इला और इक्ष्वाकु की संतान कहते थे। उन्होंने युवनाश्व, मांधाता, भागीरथ, कार्तवीर्य्य भरत और मरुत्त को प्राचीन काल के शासकों के रूप में गिनाया है।

हम लोगों का अपना एक आर्य्य भूगोल था। पुरु के नातों प्रवीर का शूरसेन देश की एक राजकुमारी से विवाह हुआ था। उसके पुत्र मनस्यु का सौवीर राजकुमारी से विवाह हुआ। संकट आने पर कुरु के पिता संवरण सिंधु देश को गये थे। उनके पितृव्य दुष्यंत के समय में पांचालों ने अपनी सत्ता अलग कर ली थी। जयतसेन का सुश्रवा से विवाह हुआ था। यह विदर्भ की रहने वाली थी। विदर्भ विंध्याचल से दक्षिण में था। पाणिनि (६०० ई० पू०) ने इसका उल्लेख किया है और ब्राह्मण ग्रंथों में भी उसका नाम आया है। अंगदेश की राजकुमारी से अरिह ने, विदेह कुमारी से देवातिथि ने, तक्षक (नाग[1]) की पुत्री से ऋक्ष ने, और काशीराज की पुत्री से दुष्यंत के पुत्र भरत ने विवाह किया था।

इस प्रकार अ पात्र बेल्ट की 'थ्योरी' तो 'फिट' नहीं बैठती दिखाई देती।

इस विषय पर श्री के० एन० शास्त्री ने अपनी 'न्यू लाइट ऑन दी इन्डस सिविलिजेशन' में अच्छा विवेचन किया है।[2] हस्तिनापुर में मनुष्यों के आवास के पाँच स्तर मिले हैं। चार बार बीच में बस्ती वीरान हुई है।

पाँचवी बस्ती—समय ११०० ई० से १५०० ई०

---

१ कौरव्य नाग भीम का नाना था—महाभारत में उल्लेख है।

2 New light on the Indus civilization. Atma Ram & Sons Delhi p.p. 109,

चौथा वीराना। इसके नीचे वीराना मिला है।
इसके नीचे ४थी बस्ती है। समय २०० ई० पू० से ३०० ई० पू०

तीसरा वीराना। फिर वीराना मिला है।
तीसरी बस्ती इसके नीचे है। समय ६०० ई० पू० से ३०० ई० पू०

दूसरा वीराना। फिर वीराना मिलता है। बाढ़ से विनाश।
फिर नीचे दूसरी बस्ती है। ११०० ई० पू० से ८०० ई० पू०

प्रथम वीराना। फिर पहला वीराना है।
इसके नीचे पहली बस्ती है। समय १३०० ई० पू०
इसके नीचे प्राकृतिक धरातल है।

पुरातत्त्वविद श्रीलाल ने दूसरी बस्ती के निवासियों को चित्रित ग्रे पात्रों वाला वैदिक आर्य कहा है। उनका समय ११०० ई० पू० से ८०० ई० पू० माना है। यह लोग महाभारत-काल में हस्तिनापुर में रहते थे। हम ऊपर राजवंश का उल्लेख कर आये हैं। श्री शास्त्री भी कहते हैं कि इस हिसाब से बाढ़ उदयन से १८ पीढ़ी पहले निचक्षु के समय में आई थी। १८ वर्ष की औसत से बाढ लाल के मतानुसार करीब ८०० ई० पू० में मानी गई है। यह माटी की पर्त ७ फुट है। लाल ने इसे ३०० वर्ष का आवास माना है। यों निचली सतह ११०० ई० पू० मानी है। किन्तु राजवंश के अनुसार हस्तिन से निचक्षु तक लगभग ५५ राजा हुए थे। यदि ५५ में १८ का गुणा करें तो लगगग ९९० वर्ष होते हैं। इस बस्ती का समय इस प्रकार ३०० न होकर हजार वर्ष होना चाहिये। सबसे विशेष बात तो यह है कि दूसरी, तीसरी और चौथी बस्ती के आवासों की माटी की पर्त्तों की मोटाई लगभग सात-सात फुट की है, और इस प्रकार हर एक को हजार हजार साल होना चाहिये। इस सबसे भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यह जगह हस्तिन का हस्तिनापुर ही है इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। इस दूसरी बस्ती की खुदाई में बहुत ही साधारण किस्म की चीजें मिली हैं। लगता है कि यहाँ सभ्यता का कोई विशेष स्तर भी नहीं था। महाभारत-काल में लोहितायस (ताँबा) और कृष्णायस (लोहा) था। परन्तु इस हस्तिनापुर में लोहा नहीं मिला है। शास्त्री ने स्पष्ट किया है कि चित्रित ग्रे पात्रों का आर्य्यों से सम्बन्ध जोड़ने का कोई प्रमाण नहीं है।

वस्तुतः अब इस विचार-वृक्ष की जड़ को देखना आवश्यक है। स्टुअर्ट पिगट ने अपनी 'प्रिहिस्टौरिक इंडिया'[1] में वैदिक ग्रंथों और पुरातत्वान्वेषणों का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

पश्चिमी एशिया में कांस्ययुग की बस्तियों ने कई संस्कृतियों से हमारा परिचय कराया है—क्वेटापात्र, ज्हौब संस्कृति, आमरी संस्कृति, कुल्ली संस्कृति, नाल मुंडारा संस्कृति, शाही तुम्प संस्कृति। इन संस्कृतियों के निवासियों को अभी तक पहिचाना नहीं जा सका है। झंगर और झुकर में प्राप्त संस्कृतियों के बारे में भी कुछ स्पष्ट नहीं है। वहाँ के काले भूरे अलंकृत पात्र भी ईसा से कुछ पहले की शताब्दियों में ही रखे जा सकते हैं। पिगट के मतानुसार HR एरिया के एक घर के सूने आँगन के खंडहर में बने मोअन-जो-दड़ो के कब्रिस्तान में (जो कि मूल निवासियों की अपेक्षा आक्रमणकारियों का ही लगता है) एक मनुष्य की खोपड़ी मिली है। वह खोपड़ी मंगोलियन ग्रुप में रखी जा सकती है और आधुनिक नागा टाइप से तुलनीय है (पृ० २२९) पिगट को आक्रमणकारी के बारे में तो निश्चय नहीं है, पर वे कहते हैं—'उससे ऐसा लगता है कि आक्रमण करने वाले लोगों में बड़ा जातीय मिश्रण था, हो सकता है कि वैतनिक योद्धा भर्ती कर लिये गये हों ? क्या ऐसा हो सकता है कि उस खोपड़ी वाला व्यक्ति कोई गुरखा था ?' पिगट का मत वास्तव में बड़ा दिलचस्प है 'पश्चिम से आता आर्य दल पहले नेपाल गया होगा, वहाँ से हरप्पावासियों पर हमला करने को पंजाब की ओर फिर एक गुरखा लाया होगा !!'

पृ० २३२ पर H कब्रिस्तान के दो स्तरों की हरप्पा में तुलना करते हुए पिगट ने कहा है—'यद्यपि ऊपरी और नीचे के स्तर में क्रमशः विशेष आकृतियाँ पर भेद अवयवी लगता है, सांस्कृतिक नहीं, और पात्र निर्माण और रंगने के टैकनीक में दोनों में समानता मिलती है।' इस प्रकार स्वयं ही पिगट ने अपनी बात को काट दिया है। आगे पिगट ने कहा है—'ऐसा संकेत करने को कुछ नहीं मिलता कि किसी अन्य जाति ने आक्रमण किया हो, ताकि हम कह सकें कि कोई पश्चिम से आया था।' (पृ० २२३) क्या पिगट का तात्पर्य यहाँ यह कहने का है कि हरप्पा संस्कृति को यहीं रहने वाली जाति ने नष्ट किया था ?

पृ० २२९ पर पिगट कहते हैं—'यह आर्य्य आक्रमण, यह जातियों का

---

1 Prehistoric India,

गतिमान होना, यह प्राचीन नगरों का बर्बरों द्वारा विध्वस्त होना ...२००० ई० पू० के तुरन्त बाद ही.... इस बात से निकाले गये निष्कर्ष हैं कि अक्काद के सरगन का मैसोपोटामिया का साम्राज्य शीघ्र विघटित और विच्छिन्न हो गया जब कि गुटी तथा अन्य जातियाँ इस भूमि पर टूट पड़ीं। कुछ शताब्दियों बाद बर्बरों के आक्रमण बढ़ गये। हिताइत साम्राज्य के एशिया माइनर में उदय के साथ ही हमें सीरिया और उत्तरी फारस में अन्य पुरातत्व संबंधी प्रमाणों द्वारा जातियों का गतिमान होना दीख पड़ता है।' और 'कैस्पियन से यह योद्धाओं और स्थानान्तरकारी लोगों का आन्दोलन रूसी तुर्किस्तान के अनाऊ नामक स्थान तक पूर्व में देखा जा सकता है, जहाँ आवास के तीसरे स्तर में हिसार III और कुछ-कुछ हरप्पा से भी संपर्क के चिह्न दिखाई देते हैं। २००० ई० पू० तथा अगली कुछ शताब्दियों में जातीय स्थानांतरण के संदर्भ में (पृ० २४०) उन्होंने बलूचीग्रामों और हरप्पा के नगरों को रख लिया है और वे स्वीकार करते हैं कि 'इसके प्रमाण मिलते हैं कि विजेताओं की दूसरी धार या उपनिवेश-निर्माण लगभग १००० वर्ष बाद पश्चिम से आये और उन्होंने बलूचिस्तान में अपने निशान छोड़े हैं' (पृ० २४०) जिससे यह स्पष्ट होता है, आर्य बार-बार दल बनाकर आये थे। इस हिसाब से आर्य २००० ई० पू० से १००० ई० पू० तक बलूचिस्तान में ही पहुँच सके थे।

पिगट के पुरातत्त्व के प्रमाण इतने ही हैं और फिर वे भाषा विज्ञान और साहित्य का आधार लेकर चलते हैं। (पृ० २४१)

कहते हैं—'ऐसा लगता है कि लगभग २००० ई० पू० में अनेक जातियों का एक शिथिल सा संघ संबंध था, जो दक्षिण रूस से तुर्किस्तान तक फैला हुआ था, जिसमें सांस्कृतिक तत्त्व मिलते-जुलते थे, और अपनी धातु-वस्तुओं के निर्माण टैकनीक के लिए सभ्यता के विशेष केन्द्रों पर निर्भर थे। वे इंडो-यूरोपियन बोलियाँ बोलते थे।' (पृ० २४६) 'हिताइत साम्राज्य के लेखों और दस्तावेजों में, जो कि २००० ई० पू० के हैं, नशीली बोली इंडोपियन परिवार की मिलती है' (पृ० २५०)। दूसरा आक्रमण १६०० ई० पू० में हुआ और 'आक्रमणकारी उत्तर या उत्तर पूर्व से आये होंगे और इंडोयूरोपियन भाषा भाषियों के पूर्व की ओर संकेत करते हैं। पाँच सौ वर्षों से अधिक बचे रहने वाले राजवंश के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता, पर इस समय हमें एक और इंडोयूरोपियन ग्रुप का कैसाइट (कस्सी) साम्राज्य की उत्तर पश्चिमी सीमा

पर परिचय मिलता है, जो मितन्नी था, जिसने खबूर नदी के मुख्य प्रवाह के समीप की भूमि घेर रखी थी और उनका उत्तर सीरिया के अधिकांश भू-भाग पर शासन था।' (पृ० २५०) १३८० ई० पू० के लगभग 'हमें वह महत्त्वपूर्ण लेख मिलता है.... सुबीलुलीउमा हिताइत, राजा और मत्ति उज्जा मितन्नी राजा, दुसरत्त के पुत्र के बीच हुई संधि का वर्णन....' (पृ० २५०) जिसमें ऋगवेद में उल्लिखित मित्र, वरुण और इन्द्र का नाम आया है, पिगट कहते हैं—'इस हिताइत संधि का यह अर्थ नहीं कि उस समय मितन्नी साम्राज्य में भारतीय थे, पर इससे हम उस मिलती-जुलती पुराण कथा की भूमि तक पहुँचते हैं जहाँ इंडोयूरोपियन जातियों का एक उद्‌गम था, और भाषा से लगता है कि महान इंडोयूरोपियन परिवार की पूर्वी शाखा के भी वही देवता थे जो कि मितन्नियों के थे। लगता है १४वीं सदी ई० पू० तक संस्कृत और मितन्नियन भाषाएँ बहुत दूर नहीं हुई थीं। (पृ० २५०-५१) क्योंकि ऐकवर्तन्न, तेरवर्तन्न, पंजवर्तन्न इत्यादि संस्कृत के वर्तनम् की भाँति हैं। वे कहते हैं—'पुरातत्त्व और भाषाशास्त्र के आधार पर २००० ई० पू० के लगभग इंडोयूरोपियन भाषा-भाषियों को हम भारत के सबसे अधिक निकट ले आते हैं। जब हम मितन्नी साम्राज्य से फारस और आगे बढ़ते हैं तब शिक्षित समाज छूट जाते हैं और ऐसे संसार में घुसते हैं, जहाँ लेखन या चित्र-लिपि या पाषाणांकित साक्ष्य नहीं मिलते। फारस में अवेस्ता और भारत में ऋगवेद दो इंडोयूरोपियन धर्म ग्रंथ हैं जो भाषा शास्त्र के दृष्टिकोण से इसी युग के अंतर्गत आ सकते हैं, पर इसके लिये हमें अंतरसाक्ष्य की ओर जाना आवश्यक है।' (पृ० २५१)

अब हम देख सकते हैं कि—

(१) यद्यपि पिगट न तो विभिन्न प्राप्त संस्कृतियों को पहले पहचान ही सके हैं—

(२) यद्यपि ग्रे पात्र और काले पात्र बहुत पुराने नहीं माने जा सकते—

(३) यद्यपि झंगर और झुखर संस्कृतियों की समस्या भी नहीं सुलझी है—

(४) यद्यपि विदेशियों ने नागा टाइप की खोपड़ी छोड़ी है जिससे यह प्रमाणित होता है कि आर्य ने गुरखा बुला लिया था—

(५) यद्यपि स्तर भेद है, परन्तु विभेद अवयवी है, सांस्कृतिक नहीं—

(६) यद्यपि आक्रमण जाति अलग थी यह भी पश्चिम से आती किसी ज़ाति से नहीं जोड़ा जा सकता—

(७) यद्यपि केवल मैसोपोटामिया साम्राज्य के विच्छिन्न होने से ही आक्रमण सिद्धांत को निष्कर्ष रूप में निकाला गया है—

(८) यद्यपि आक्रमणों की एक और लहर भी स्वीकार कर ली गई है—

(९) यद्यपि यह केवल एक अनुमान है कि वे उत्तर या उत्तर पूर्व से आये होंगे—

(१०) यद्यपि कोई राजवंश ऐसा नहीं मिला है जिसने ५०० वर्ष राज्य किया हो—

फिर भी एक पूरी 'थ्योरी' बना ली गई है, जब कि प्रमाण यही बताते हैं कि मंगोलायड अवशेष के कारण गति को पूर्व से पश्चिम की ओर रखना अधिक उचित है।

हिताइत और मितन्नी आर्य थे। मिलते-जुलते देवता और शब्द एक स्रोत से आये थे। यहाँ मैं कह दूँ कि यास्क भी बोलियों के ऐसे संबंध के विषय में परिचित था, पाणिनि भी जानता था। पिगट को कोई जातीय प्रमाण नहीं मिला है। ऋग्वेद के आधार पर लगता है कि आर्यों ने आक्रमण किया था। परंतु कब ? जब ग्रीकों ने भारत पर हमला किया था, तब उन्हें यवन कहा गया था। क्यों ? भारत के उत्तर में सिकन्दर से पहले ही 'योन' नामक जाति विद्यमान थी। संभवतः योन या यवन उन लोगों के लिये प्रचलित होने वाला शब्द था, जो कि यज्ञादि नहीं करते थे, परंतु फिर भी जिनमें परम्पराओं की समानता थी। मनुस्मृति में उल्लेख है कि—इसी देश से अनेक देशों में लोग गये और उन्होंने शिक्षा दी—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिकां सर्वमानवाः॥

इस परंपरा से स्पष्ट होता है कि कई कबीले या जातियाँ ऐसी थीं, जो भारत के पश्चिम को भी भारत से गई थीं। भारत से जातियाँ बहुत बाद तक जावा, सुमित्रा इत्यादि गईं, इसके प्रमाण हमें काफी मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त चाइल्ड ने स्पष्ट बताया है, मितन्नी 'शतम ग्रुप भाषा-भाषी' थे और इंडोयूरोपियन की पूर्वी शाखा (सेन्टुम ग्रुप भाषाभाषी) थी। इससे बोगजकोई संधि के लेखक लोग इंडोयूरोपियनों की पूर्वी शाखा के उत्तरी ईरान से पश्चिम गमन को प्रमाणित करते हैं। या पार्जिटर के मतानुसार १६०० ई० पू० के लगभग भारत के द्रुह्यु बाहर गये थे जिन्होंने पश्चिम में भारतीय संस्कृति फैलाई और बोगजकोई लेख उन्हीं के हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दो तथ्य—बोगज-कोई लेखाधार का निष्कर्ष और हस्तिनापुर खुदाई का निष्कर्ष जिनको तमाम तूल देकर एक सिद्धांत बना लिया गया है, निर्मूल हैं। अब हम पिगट के आगे के तर्क का अध्ययन करते हैं।

पिगट के अनुसार भारत में प्राचीन संस्कृतियों का ध्वंस इंद्र ने किया था। यह हो ही नहीं सकता। यदि उन्हीं के तर्क को लिया जाये कि मितन्नी शाखा से इंडोयूरोपियनों में दो भेद हो गये जिनमें एक संस्कृत वाला दल भारत आया और दूसरा फारसी वाला ईरान में रहा तो भी मितन्नी-हिताइत संधि में इन्द्र का उल्लेख है। और इस प्रकार इन्द्र को भारत में अनेक पहले ही आर्य लोग देवता मानते थे। इन्द्र को असुर भी कहा गया है। बाद में असुर पूजा (अहुरमज्दा) अलग हुई है। इसका अर्थ हुआ कि वृत्र का वध करने वाला इन्द्र, जो कि असुर-नाशक था, मितन्नी-हिताइत संधि के पहले ही वृत्र को मार चुका था। इस हिसाब से १४०० ई० पू० के बोगजकोई संधि काल से पहले इन्द्र हो चुका था। उसका भारत में आने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे ऋग्वेद में इन्द्र देवता है, मनु आदि प्राचीन काल के मनुष्य हैं, और ऋग्वेद के रचना-काल में मनु आदि भी काफी पुराने हो चुके थे। ऋग्वेद के रचना-काल में ऋषि और आर्य्य भारतीय अनार्योंसे लड़ रहे थे। मनु उनके लिये प्राचीन थे और इन्द्र और भी प्राचीन। आर्य्यों के पुराने देवता थे वरुण, अदिति, अर्यमा, भग, द्यावा, पृथिवी, अग्नि, यम, मरुद्गण इत्यादि। वरुण को असुर भी कहा गया है। इन्द्र का उत्थान वरुण के बाद असुर विरोध में हुआ है, यही शुनःशेप कथा से भी स्पष्ट होता है कि इन्द्र ने वरुण के विरुद्ध, नर-बलि प्रथा रोक कर, स्वर उठाया था। फिर इन्द्र की अर्थात द्यौस और दिवस्पितर (वज्रधर) की कथा इतनी पुरानी थी कि वह ग्रीकों में जियस और रोमनों में जूपीटर के रूप में विद्यमान थी। ये लोग पूर्व से ही पश्चिम को गये होंगे, क्योंकि यदि वे पूर्व से नहीं गये थे तो इन्द्र को और भी प्राचीन मानना होगा।

पिगट को ब्राह्मणी लिपि सिमाइट लिपि से निकली हुई मालूम देती है। उन का विचार है कि वैदिक लोगों के पास लिपि नहीं थी। वे यह तो मानते हैं कि हरप्पा संस्कृति से आर्यों ने सीखा था, पर हरप्पा मोअन-जो-दड़ो में लिपि थी। फिर भी पिगट यह नहीं मानते कि वैदिक आर्यों ने लिपि सीखी होगी। विद्वानों ने स्वीकार किया है ब्राह्मी लिपि का ही रूपांतर है दक्षिण भारत की लिपियों

में। सहज तो यह लगता है कि मोअन-जो-दड़ो की लिपि का ही भारत की सब लिपियों के रूप में विकास हुआ होगा। लेकिन पिगट कैसे मान लें कि भारत में भी लिपि हो सकती हैं ? ओझा ने प्रमाणित किया है अथर्ववेद में जूए के हिसाब लिखे जाते थें। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि हिन्द से ही अंक अरब में हिंदसे बनकर पहुँचे थे, जिनसे यूरोप ने सीखे। हिंद ने ही पहले पहल ० (जीरो) का प्रयोग प्रारंभ किया। अभी तक कोई शिलालेख नहीं मिला है। पर पिगट यह क्यों नहीं देखते की मोअन-जो-दड़ो में लिपि मौजूद है। भारत में वास्तव में अभी खुदाई हुई ही कितनी है ? हरप्पा की खुदाई से पहले भारत का इतिहास ग्रीकों से शुरू होता था। भारत पर निरन्तर विदेशी आक्रमण होते रहे हैं, इसलिए यहाँ घोर विनाश हुआ है। दूसरी बात यह भी है कि यहाँ का इतिहास इतना प्राचीन है कि लोगों ने गति को चक्र (Cycle) की भाँति मान लिया था। भारत में लिपि का विकास हुआ है। वैर (भरतपुर जिले) में एक टैराकोटा सील मिली है जिस पर लिपि है। केन्द्रीय पुरातत्त्वविद विशेषज्ञ उस पर मनन कर रहे हैं। वह लिपि ब्राह्मी का कोई पुराना रूप है।

(२५०० वर्ष पुरानी वैर की सील)
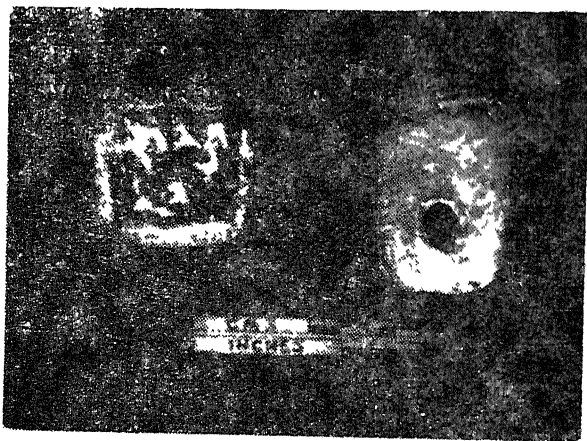
चित्र ३३— (आगरा पुरातत्त्व विभाग के सौजन्य से)

इस लिपि की सील उस टीले में मिली है जहाँ कुछ ग्रे पात्रों के अवशेष भी मिले हैं। यदि ग्रे पात्रों के आधार पर इसकी तिथि का अनुमान किया जाये तो यह बुद्ध से प्राचीन होनी चाहिये। इसके समीप ही बुद्ध चन्द्रगुप्त-कालीन उत्तरी चमकदार काले पात्र का अवशेष (N. B. Puaxes) भी मिला है। उस हिसाब से

भी यह बुद्ध-कालीन होनी चाहिये। वैर की सील प्रमाणित करती है कि बुद्ध से पूर्व भारत में लिपि थी।

वेद का मौखिक रूप से याद किया जाना जातीय और वर्गीय गर्व पर आधारित था। जब कृष्ण द्वैपायन व्यास ने वेद का संपादन किया था तब उस विशाल साहित्य का सम्पादन क्या बिना किसी लिखावट के हो सका होगा? पिगट ने जिन ड्रूइडों की मौखिक गीतस्मरण परंपरा का उल्लेख किया है, उनके पास थोड़े गीत थे, आर्यों की भाँति उनके पास इतना भण्डार नहीं था। बार बार विदेशी आक्रमणों के भय के कारण, उच्चारण की पवित्रता बनाये रखने की लालसा के कारण ही, वेद रटे जाते थे। जब तक हम इस ऐतिहासिक परिपार्श्व को याद नहीं रखेंगे तब तक इस समस्या को नहीं सुलझा सकेंगे। वैदिक ब्राह्मण को वेद का गर्व था। (देवता की स्तुति उसके पौरोहित्य का गर्व था) वह अपनी सम्पत्ति दूसरे को नहीं देना चाहता था। वर्ण विभाग के लिए यह आवश्यक भी था। वह एक एक स्वर को ठीक बोलता था। पाश्चात्य विद्वान त्वष्टा की कथा बार बार उद्धृत कर दिया करते हैं। पिगट ने उसे डैमन (Demon) लिखा है। वह डैमन नहीं था, असुर था। और असुर विद्वान होते थे। त्वष्टा की गलती का उल्लेख इसीलिए मिलता है। उच्चारण की शुद्धता रखना गर्व का प्रतीक था, न कि जादू का। वेद नहीं लिखे गए तो इस के दो ही कारण थे—अपनी विद्या शूद्रों को न देने के लिए तथा विदेशियों के आक्रमणों में उसे बचाने के लिए। लिपि का अभाव इस का कारण नहीं माना जा सकता। वेद तो, स्वयं पिगट ने माना है, १८ वी सदी में लिखे गए। तो क्या हम यह मान लें कि भारत में ईस्वी १८ वीं सदी तक लिपि नहीं थी? लिपि के रहते हुए भी वेद का न लिखा जाना हमारी बात को प्रमाणित करता है।

पिगट कहते हैं—'अब यह भेद की रचना का समय लगभग १४००-१५०० ई० पू० माना जाता है, पर इसके कोई पक्के प्रमाण नहीं हैं।' (२२५ पृ०) पता नहीं बिना पक्के प्रमाण के पूरी 'थ्योरी' कैसे बना ली जाती है। ऊपर हम उन की पुरातत्त्व-गवेषणा भी प्रस्तुत कर चुके हैं। फिर कैसे कोई बात मानी जा सकती है?

हम निश्चय से नहीं कह सकते कि इन्द्र और वृत्र का युद्ध पंजाब में हुआ था, जैसा कि पिगट की कल्पना है। ऋग्वेद में चीते का वर्णन नहीं है, पर अथर्ववेद में

है और हरप्पा की सील बताती है कि तत्कालीन पंजाब के लोग चीतों को जानते थे। आर्यों ने उनसे क्यों नहीं सीखा ? या आर्य्यों के आने तक चीतों का ज्ञान लुप्त हो चुका था ?

ऋग्वेद में पहले देवों, ऋषियों और मानवों का उल्लेख हुआ है। बाद में ही वर्णों का नाम आता है। यजुर्वेद में शूद्र को भी एक वर्ण के रूप में स्वीकार किया गया है। निषादों को भी पाँचवें वर्ण के रूप में माना गया है। जाति का उल्लेख परवर्त्ती ब्राह्मण साहित्य में हुआ है। पिगट के मतानुसार (पृ० २६०) ऋचाओं के प्रणेता ऋषि क्षत्रियों के आधीन थे। यह गलत है। क्षत्रिय तो ब्राह्मणों में से ही निकले थे। ब्राह्मणों का सर्वाधिकार महाभारत युद्ध के बाद ही टूटा था। क्षत्रियों ने ब्राह्मणों से कई बार अधिकार छीनने की चेष्टा की थी।

पिगट के मतानुसार इन्द्र ने हरप्पा के जिन निवासियों को जीता था वे आग्नेय (Proto Austroloid) थे। उनका कहना है कि ऋग्वेदिक आर्य नगर नामक चीज को नहीं जानता था। पर ऋग्वेद में नगर का उल्लेख है (९.८६.४१)। इन्द्र असुरों से लड़ा था और वह स्वयं भी असुर कहा गया है। क्या इन्द्र प्रोटो ऑस्ट्रोलॉयड था ? वृत्र को सदैव गुफा से संबंधित बताया गया है, किलों से नहीं। वरुण भी शत्रु-दुर्गों को नष्ट करता था (ऋ. वे. १.१.३.८.३)। इन्द्र ने विशेषकर असुरों से युद्ध किया है—शुष्ण, वृत्र, बल, नमुचि, वांग्रिद, करञ्ज, पर्णय इत्यादि और यह लोग अनास नहीं कहे गये हैं। वास्तव में इन्द्र ने अवेस्ता के अहुर से युद्ध किया था।

ऋग्वेदिक आर्य ने इन्द्र को देवता के रूप में याद किया है। उसके अनुसार वह बहुत प्राचीन काल में था, मनु इत्यादि भी तब नहीं थे। वरुण (२४.१४) सूर्यरश्मि (३५.७), सविता (३५.१०), इन्द्र (५४.३) मरुद्गण (६४.२), ऋत्विकगण (१०८.६) और त्वष्टा (११०.३) इत्यादि को ऋग्वेद (मं० १) में असुर कहा गया है। असुरों के पास दुर्ग भी थे और इन्द्र ने उन्हें नष्ट किया था, पर दृश्य पंजाब का ही है, यह तो प्रमाणित नहीं होता। अवेस्ता की साक्षी इन्द्र के विरुद्ध है और यह इंडोयूरोपियन जातियों की ही साक्षी है।

ऋग्वेदिक आर्य जो कि इन्द्र के बहुत बाद आता है, वह पंजाब में अनासों और राक्षसों से लड़ता मिलता है। यह ऋग्वेदिक आर्य नर्य्य, तुर्वशु और यदु का समकालीन था। इसके लिये इन्द्र अतीत का व्यक्ति था। हम अवेस्तन अहुर की अपनी सहूलियत के लिये उपेक्षा नहीं कर सकते। पितर पूजा (ancestor worship) में समय की दूरी ने ही इन्द्र को देवता का पद दिलवा दिया था।

क्या हम यह मान सकते हैं कि हरप्पा में असुर रहते थे ? तब हम अवेस्ता की भाषा की समस्या कैसे सुलझा सकेंगे ? हम जाति अंतर्भुक्ति (racial assimilation) की बात महाकाव्यों और पुराणों में तो मान सकते हैं, परन्तु ऋग्वेद में इस रूप में नहीं मान सकते कि इन्द्र को ही असुर कहा जाये, जो कि इस प्रकार अनास शत्रु बन जायेगा।

पिगट ने आर्यों को अश्व से तो परिचित माना है, पर उनके मतानुसार वे साफे (उष्णीश) को नहीं जानते थे। पर वैदिक इन्डैक्स (I पृ० १०४) में कीथ और मैकडोनल ने साफे का उल्लेख भी दिया है।

अन्त में पिगट कहते हैं कि 'चन्द्रगुप्त मौर्य विदेशी नहीं था, वह भारतीय जनता पर अपनी इच्छा लादने वाले उत्तर-पश्चिम से आने वाले हर्ष और बाबर जैसा कोई आक्रमणकारी नहीं था।' (पृ० २२८)[1] मैं समझता हूँ यह बहुत काफी है। भारतीय इतिहास को अभी तक तो पता नहीं है कि किसी हर्ष-विदेशी ने उत्तर पश्चिम से भारत पर आक्रमण किया था।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिताइत, मितन्नी, कैसाइट, मीडीज (मद) और बोगजकोई लेख—कोई भी समस्या का अच्छा हल नहीं करते। न हस्तिनापुर की खुदाई को ही प्रामाणिक माना जा सकता है। जिस प्रकार मूल घटनाओं के बीत जाने के बहुत दिन बाद ऋग्वेद की रचना हुई थी, उसी प्रकार जैंदावस्ता की भी हुई थी। यह कोशिश क्यों की जाये कि उसकी तारीख बाद में डालने के लिये हम यह सोचें कि जब ईरान की भाषा बदल गई थी तब जानबूझ कर जैंदावस्ता प्राचीनकाल की भाषा में लिखा गया था। पैगम्बर सदैव वर्त्तमान भाषा में रचा करते हैं। अतीत की भाषा में जोरोस्टर ने ही क्यों कर ऐसा प्रपञ्च रचा होगा ? मीडीज की तारीख भी कोई घटनाक्रम सजाने वाली तारीख नहीं है। पीले पात्र (ochre coloured pottery) भी परम्परा की व्याख्या नहीं करते, न ग्रे पात्र (grey ware) ही मदद करते हैं। हमें फिर से सारे तथ्यों को लेकर, पूर्वाग्रह छोड़कर, जाँच करनी होगी। हम यह पहले से क्यों तय कर लेते हैं

1. 'ChandraGupta Maurya was not a foreigner, no invader such as Harsa or Babur, coming in from the North-West to impose his will on the Indian people.' p. 288. Prehistoric India.

कि आर्यों ने रास्ते के हर सशक्त शत्रु को पराजित ही किया। यह भी तो हो सकता है कि आर्य में बुद्धि भी थी और वह मौका देखकर सशक्त लोगों को टाल कर कमजोरों को दबाता बढ़ता था, जैसे महमूद गजनवी ने मालवा के भोज को सशक्त देखकर उस रास्ते को छोड़कर रेगिस्तान से होकर सोमनाथ पर हमला किया था। उन दिनों भारत की आज की सी सीमा तो थी नहीं।

वाल्मीकि रामायण (उ. का. १०० अ.) में स्पष्ट है कि रोम के भाई भरत के पुत्रों ने सिंधु प्रदेश में गंधर्व देश पर आक्रमण किया था। राक्षस आर्यों के रक्षक मददगार थे तभी उनका नाम राक्षस पड़ा था। हम बता चुके हैं कि नाग और गंधर्व पंजाब में सरस्वती तीर पर रहते थे जिन्हें आभीरों ने नष्ट किया था। यह गंधर्व बड़े सभ्य लोग थे। परम्परा उनका मूलस्थान हिमालय में बताती हैं। क्या वे मंगोलॉयड थे जो पश्चिम भारत में आ गये थे ?

प्रश्न अनेक हैं।

हरप्पा संस्कृति के वे कौन लोग थे जो सिंधु घाटी से दक्षिण पश्चिम की ओर राजस्थान, सौराष्ट्र और गुजरात होते हुए गोदावरी घाटी की ओर बढ़ रहे थे ?

वे कौन थे जो चमकदार पत्थर के कुल्हाड़ों का प्रयोग करते थे और तब उत्तर भारत से अज्ञात गोदावरी के दक्षिण की ओर बढ़ रहे थे।

वे कौन थे जो पीले पात्रों का प्रयोग करते थे और गंगा के प्रदेश से दक्षिण पश्चिम दिशा की ओर जा रहे थे ?

भूरे पात्र की बैल्ट वाले लोग कौन थे ?

हरप्पा को यदि नष्ट भी किया गया तो मोअन-जो-दड़ो सभ्यता कैसे अपने आप नष्ट हो गई ?

लोथल में हरप्पा संस्कृति ने कैसे विकास किया ?

कोटदीजी में प्राप्त खुदाई की चीजों ने हरप्पा संस्कृति का उदय दिखाया है, हरप्पा वालों से पहले कौन रहते थे ?

यदि भूरे (Grey) पात्रों वाले ऋग्वेदिक आर्य थे, और कृष्ण भी तभी थे तो कृष्ण तो द्वारका गये थे, फिर ऋग्वेद में इसका उल्लेख क्यों नहीं है ?

इसलिये आवश्यकता यह है कि हम फिर से अध्ययन प्रारम्भ करें।

हमें पहले अन्तरसाक्ष्य और परम्परा का अध्ययन करना होगा।

इसके बाद एक और समस्या है। ६०० ई० पू० तक मागध काल में हमें सारे गंगा प्रदेश में लोहे के औजार मिलते हैं, जबकि उत्तरी चमकदार काले पात्र मिलते हैं। इस युग में इतिहास किसी विदेशी आक्रमण का उल्लेख नहीं करता। यह परिवर्त्तन कैसे आया? नये पात्र पुरानी संस्कृतियों के विकास में निकले या किसी नये तत्त्व के कारण यहाँ आये? इस समय हमें परंपरा में देव, राक्षस, यक्ष, नाग, गंधर्व इत्यादि सब पुरानी जातियाँ देवता मानी गई मिलती हैं।

यद्यपि जातियों में अंतर्भुक्ति (assimilation) थी फिर भी भारत में पुरानी जातियों के चिन्ह अवशिष्ट हैं। वैदिक मालव आज भी मालवीयों में मिलते हैं। वैदिक काल की अपनी जातियाँ बर्बर (brutes) थीं। महाभारत में (शांतिपर्व २०७.४०.४९) नरवर, अंध्रक, गुह, पुलिंद, शंबर, चूचुक, और मद्रक दक्षिणी जातियाँ हैं, और योन, काम्बोज, गाँधार, किरात और बर्बर उत्तर की हैं। इस युग के बाद राक्षस, यक्ष, गंधर्व, नाग इत्यादि दृश्य से लुप्त हो जाते हैं। नंद से हर्ष तक दूसरी ही जातियाँ मिलती हैं और हर्ष के बाद से अन्य ही जातियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

वेद, महाभारत तथा पुराणों में अनेक जातियाँ मिलती हैं। काम्बोज, गांधार, कुरु, पंचाल, शूरसेन, चेदि, मद्र, मालव, शाल्व, उशीनर, बाह्लीक त्रिगर्त्त, यौधेय, केकय, आमीर, शिवि, दरद, कारूष, कुलट, कुलिंद, बर्बर, मरुण्ड, अर्जुनायन, आर्जुनायन, अम्बष्ठ, निषाद, निषध, काशी, कोशल, वत्स, वाटधान, आत्रेय, भारद्वाज, लम्पाक, योन, कलिंग, आंध्र, दमिल, शबर, मूतिब, पुलिंद, कुन्तल, राष्ट्रिक, नासिक्य, अश्मक, मूलक, चोल, पाण्ड्य केरल या चेर, मागध, विदेह, ज्ञातृक, शाक्य, मल्ल, वंग, गौड, सुम्ह, पुण्ड्र, किरात, प्राग्ज्योतिष, बुलि, कोलिय, मोरिय, भग्ग, कालाम, लिच्छवि, उत्कल उड्र, अवन्ति, सिंधु-सौवीर, सुराष्ट, शूद्र, लाट, शूर्पारक, औदुम्बर, काक, खर्परिक, सनकानीक, मत्स्य, रमठ, पारद, भोज, मेकल, दशार्ण, पारियात्र, पेटनिक, गोलांगूल, शैलूष, कुसुम, नामवासक, आधक्य, दण्डक, पौरिक, अथर्वस, अर्कलिंग, मौलिक, मूषिक, चुलिक, कंकण, तोसल, वैदिश, तुष्तिकार, माहिषक, कीकट, प्रवरंग, रांगेय, मानद, उग्र, तंगण, मुदकर, अतर्गिर्य, बहिर्गिर, अनूप, कुकुर, सूर्प्यारक, वृक, हारभूषिक, माठर, जागुर, अह्योतर,

भृगुकच्छ, माहेय, भोज, अपरान्त, हैहय, भोगवर्द्धन, सरज, वीरहोत्र, विंध्य, मौलेय, जाङ्गल, भद्रकर, क्षुद्रक, पुस्कल, चीन, तुषार, सारस्वत, अश्वकूट कुल्य, मलक, बोध, दशमालिक, हर्षवर्द्धन, कुशेरूक, हंसमार्ग, कुहक, शतपथ, चर्मखाण्डिक, गबल, शतद्रुज, ऊर्ण, दरव, बहुभद्र, त्रैपुर, गजाह्वय, पर्णशबर, अर्बुद, खस, आरट्ट इत्यादि ।

इसमें से कुछ वैदिक काल में भी हैं, कुछ बाद तक मिलती हैं । हर्षवर्द्धन के बाद गुर्जर इत्यादि जातियाँ दीखती हैं । जाट इत्यादि भी तभी मिलते हैं। पुराना दृश्य ही बदल जाता है । नाम बदलते हैं । कुछ तो भाषा के परिवर्त्तन के कारण ऐसा होता है, कुछ अनेक विदेशी जातियों के आकर समाज में घुल मिल जाने से । इन जातियों के अतिरिक्त अनेक अनार्य्य जातियाँ भी थीं । टॉटेम जातियाँ, दक्षिण की जातियाँ और वन्य जातियाँ हम यहाँ पूरी नही गिना सके हैं । यहाँ जाति का अर्थ (Tribe) लेना उचित होगा ।

परन्तु इनके अतिरिक्त भारतीय साहित्य और संस्कृति पर गहरी छाप डालने वाली कुछ और जातियों का भी उल्लेख है, जिन्हें Race के अन्तर्गत लेना ठीक दिखाई देता है । कुछ यह हैं :

(१) असुर—सुर [आदिमाता अदिति]
(२) नाग [आदिमाता कद्रू]
(३) गंधर्व
(४) गरुड़ [आदिमाता विनता]
(५) पिशाच
(६) यक्ष राक्षस [आदिपुरुष पुलस्त्य]
(७) दैत्य [आदिमाता दिति]
(८) दानव [आदिमाता दनु]

इन लोगो की उत्पत्ति के अलग अलग स्रोत बताये गये हैं । इन लोगों के रहन-सहन और विवाह आदि के नियमो में भी भेद कहे गये है । ये लोग कौन थे ? क्या यह सब कल्पना के प्राणी थे, जो सामाजिक जीवन में विभिन्न व्यवस्थाओं के रूप दे गये ? निश्चय ही यह प्राचीन जातियाँ थी और भारत में सशक्त थीं ।

हमें भारतीय साहित्य मे इन लोगों के अलग अलग उल्लेख मिलते है; लेकिन बाद में संभवत यह जातियॉ अंतर्भुक्त (assimilate) हो गईं । तब विवरणों मे गड़बड़ हो गई ।

जिस प्रकार यवन और म्लेच्छ शब्द पहले ग्रीक आदि के लिये प्रयुक्त हुए, पर बाद में इन्हीं शब्दों का प्रयोग, तुर्क, मंगोल, और यूरोपीय जातियों के लिये किया गया, उसी तरह असुर और राक्षस शब्दों के साथ भी हुआ ।

कार्त्तिकेय की कथा (महाभारत) में स्पष्ट मिलता है कि राक्षसों ने असुरों के विरुद्ध सुरों की मदद की थी । ऋग्वेद के प्रथम मंडल में ही (१.१.२.५.२१.५)

ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् ।
अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ।

अर्थात वे महान और सभारक्षक इन्द्र और अग्निराक्षस जाति को दुष्टता-शून्य करें, भक्षक राक्षस लोग निस्संतान हों,

कहा है । राक्षसों की प्रचीनता स्पष्ट है ।

सायण ने असुर का अर्थ 'अनिष्ट हटाने वाला' किया है । क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजनेनांसि शिश्रथः कृतानि में वरुण के लिये प्रयुक्त है असुर शब्द ! बाद के युग में असुरों को राक्षस भी कहा गया है । दैत्य, दानव असुर, राक्षसों के भेद भुला से दिये गये हैं । यहाँ तक कि अघासुर को तो गर्ग संहिता में नाग कहा गया है । कृष्ण के समय की अनेक टॉटेम जातियाँ धेनु-वृषभ, वक, इत्यादि को भी असुर कह दिया गया है ।

इन्हीं कारणों से गड़बड़ दिखाई देती है । वैसे इन जातियों के स्रोत अलग अलग बताये गये हैं । एक और विशेष बात यह है कि परंपरा के अनुसार इन जातियों का संबंध देवों (इन्द्रादि) से अधिक है । मनु के बाद इनकी शक्ति घटती ही नजर आती है । राम के समय में जो राक्षस द्वीप पर रहते हैं, बड़े धनी हैं, जिनकी अपनी नैतिकता है, जिनके धर्म, चैत्य, मर्यादा रहन-सहन, खान पान, नियम विशेष हैं, वे महाभारत में जंगलों में रहते हैं, उनकी हालत काफी बिगड़ गई है । बुद्ध काल तक आते आते इन जातियों का केवल नाम मिलता है । बुद्ध के समय में एक आलवक नामक यक्ष राजा अवश्य था परन्तु वह भी कोई बड़ा राजा नहीं था । राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार कनोर नाम से अभी तक शिमला के पास किन्नर जाति के वंशज हैं ।

अतः जब तक इस सारे विषय को फिर से नहीं देखा जाता, हमारा

सामाजिक मानवशास्त्रीय अध्ययन अधूरा ही कहा जा सकता है। जैन परंपरा ने परवर्त्ती काल में नाग, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, राक्षस, पिशाच, वानर और ऋक्ष इत्यादि को विद्याधर योनि के अन्तर्गत माना है। ब्राह्मणों ने देव योनि में। बौद्धों ने भी इन्हें देवता योनि में ही स्वीकार किया है। यदि यह जातियाँ ऐतिहासिक थीं ही नहीं तो क्या कारण हो सकता है कि उनके इतने वर्णन भारतीय साहित्यों में प्राप्त होते हैं।

एक और बात विशेष है। वह यह कि भारतीय कबीला जातियाँ (Tribes) तो वैष्टिक से लेकर बाद के युग तक मिलती हैं, जैसे अंध्र, मालव इत्यादि, पर जातीय (Racial) भेद हमें जिस रूप में महाभारत तक मिलते है, वे बाद में बुद्ध काल में नहीं मिलते। इससे लगता है कि एक सामाजिक और सांस्कृतिक अंतर्भुक्ति (assimilation) हुई थी। और इनमें विशेषता यह भी है कि महाभारत के बाद हमें असुर, राक्षस, यक्ष, गंधर्व आदि के देवता हिन्दू धर्म में मिलते हैं। परवर्त्ती हिन्दू धर्म पौराणिक है और उसमें सब प्राप्त होते हैं।

ब्रह्मपुराण में निम्नलिखित टॉटेमतीर्थ हैं—

धेनुक, शूकर, शाखोटक, कोकामुख, मत्स्यतिल, कोटरक, वटमूल इत्यादि।

विभिन्न जातियों के मिलन से यह तीर्थ बने हैं—

नागों का प्रयाग, नागों का धर्मारण्य, यक्षों का उर्वशी, राक्षसों का कोटिद्रुम, नागों का पुनाग, गंधर्वों का गांधर्व, नागों का पिण्डरक, गोटॉटम का गोवर, यक्षों का मणिमान, यक्षों का यक्षिणीहृद, यक्षों का यक्षराजतीर्थ, मातृकाओं (यक्ष देवियों) का मातृतीर्थ, नागों का नागतीर्थ, राक्षसों का कुम्भकर्णहृद इत्यादि हिन्दू धर्म में यह सब तीर्थं स्वीकृत हैं। इससे अंतर्भुक्ति के अतिरिक्त और क्या प्रमाणित होता है?

इतिहासकार और सांस्कृतिक मानवशास्त्री पश्चिम से प्रभावित होकर सभ्यताओं के उदय का निम्नलिखित क्रम बताते हैं—

(१) ५००० ई० पू० से २५०० ई० पू० तक मिस्र, सुमेरु, चीन।

(२) २००० ई० पू० से १००० ई० पू० तक क्रीट, फीनीशियन, यहूदी, हिताइत, मितन्नी, यूनानी, मद (मीडीज), पर्शियन, माया (अमेरिका)

(३) १००० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक इनका (अमेरिका), रोमन।

(४) ६०० ई० से ७५० ई० तक टोल्टेक (अमेरिका), एज्टेक (अमेरिका), अरब।

(५) १००० ई० से १२०० ई० तक तुर्क, मंगोल।

(६) १६०० ई० से यूरोपीय जातियाँ।

इसी प्रचलित आधार पर भारत के प्राचीनकाल को दो भागों में बताया जाता है—

(१) सिंधु घाटी सभ्यता।

(२) वैदिक सभ्यता।

सिंधु घाटी सभ्यता—सिंध प्रांत के लरकाना जिले में मोअन-जो दड़ो, पंजाब में मान्टगुमरी जिले में हरप्पा नामक स्थान मिले हैं। अब ये दोनों पाकिस्तान में है। इन स्थानों पर खुदाई हुई है और अत्यंत प्राचीन सभ्यताएं मिली हैं। इसी सभ्यता की तीसरी बहुत बड़ी बस्ती, अब श्री एस० आर० राव ने सौराष्ट्र में खोज निकाली है। इसका नाम लोथल है। लोथल शब्द लोथ अर्थात् फर्दा से बनी है। मोअन-जो-दड़ो सिंधी शब्द है जिसका अर्थ है मुर्दों का टीला। इस सभ्यता के अन्य स्थल भी अब भारत में धीरे-धीरे मिलते जा रहे हैं। अतः यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि उस अत्यंत प्राचीन काल में भी इस सभ्यता का विस्तार वास्तव में बहुत बड़ा था। मिस्र, असीरिया और बैबिलौन की प्राचीन सभ्यताओं की भाँति यह भी अत्यंत प्राचीन थी।

ऊपर हम सिंधु घाटी सभ्यता की आयु के बारे में कुछ विवेचन कर चुके हैं। ह्वीलर इत्यादि ने यही प्रयत्न किया है कि इसको परवर्त्ती ठहराया जाये। इसका कारण हम पहले देख चुके हैं कि पाश्चात्य विद्वानों को आर्यों की तिथि निश्चित करने के अपने पूर्वाग्रह पकड़े हुए हैं। भूरे पात्रों की थ्योरी, आर्यों के आगमन की थ्योरी इत्यादि ने मार्ग में बाधाएं उपस्थित की हैं। के० एन० शास्त्री ने मोअन-जो-दड़ो, हरप्पा, लोथल, रंगपुर, रूपड़, बारा और एलौरा का गहरा अध्ययन करके प्रमाणित कर दिया है कि भूरे (Green) पात्र वाले लोग कभी हरप्पा संस्कृति के लोगों से मिलते ही नहीं थे, क्योंकि उनकी हर बस्ती अलग मिली है। इन्होंने यह भी प्रमाणित किया है कि मोअन-जो-दड़ो सभ्यता मैसोपोटामियन की सभ्यता के बाद की नहीं है। उन्होंने सिंधु, इलम और सुमेरियन लिपियों का बड़ा सादृश्य प्रस्तुत किया है।

सिंधु घाटी में कौन रहता था, यह अभी तक निश्चय से जाना नहीं जा सका है, क्योंकि यहाँ की लिपि अभी तक पढ़ी नहीं गई है। ह्रौजो तथा अनेक

भारतीयों ने भी प्रयत्न किये हैं, किन्तु अभी इस ओर कुछ ऐसा नहीं हुआ जो
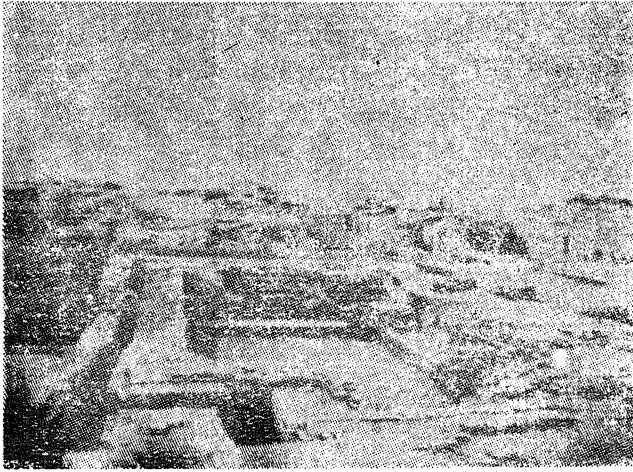
चित्र ३५—मोहन जो-दड़ो का स्नानागार
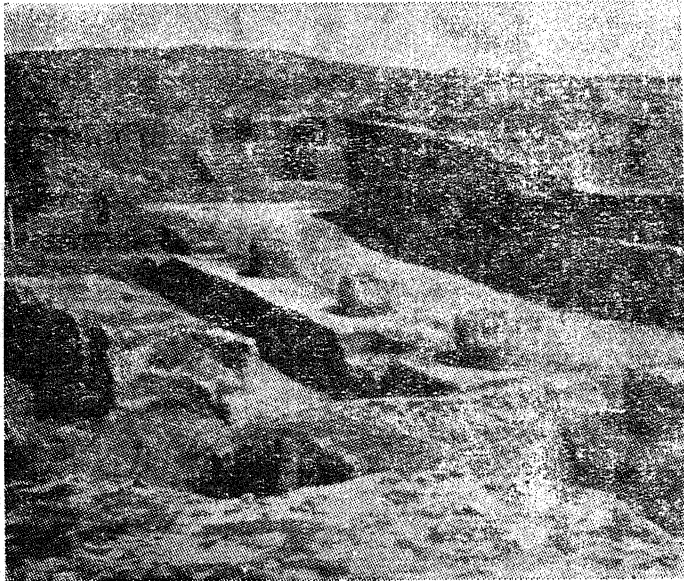
चित्र ३६—सुमेर में किश के महल के खंडहर : लगभग ३५०० ई० पू०

प्रामाणिक माना जा सके । न हम वहाँ की राजनीति और इतिहास ही जानते

हैं। जब तक भूमि की खुदाई के पीछे कोई ठोस परंपरा नहीं मिल जाती तब तक उसके सूत्र बिठाना बहुत कठिन होता है।

कनिंघम ने इसे आर्यों से पुराना माना था। उनका मत था कि यहाँ घोड़ा नहीं है, यहाँ मातृपूजा विशेष दिखाई देती है अतः यह आर्य सभ्यता नहीं है।

व्हीलर का मत है कि आर्यों का भारत में आगमन-काल जब इतना परवर्ती है तो यह स्थान आर्यों का नहीं हो सकता।

शास्त्री का मत है कि मोअन-जो-दड़ो में मातृपूजा नहीं थी, पुरुष-पूजा प्रधान थी।

इस अवस्था में हम इस नगर के विषय में नहीं कह सकते कि यहाँ कौन रहता था।

मोअन-जो-दड़ो की खुदाई ने एक विशाल नगर हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इसमें दो कमरे वाले मकान भी थे और महलों जैसे बड़े-बड़े भवन भी थे, जिनका अगला हिस्सा ८५ फीट लंबा और १७ फीट चौड़ा था। बाहर वाली दीवार चार से लेकर पाँच फुट तक मोटी होती थी। शर्मा का मत है कि इन भवनों में सड़क की ओर खिड़कियाँ नहीं होती थीं। मोअन-जो-दड़ो में एक भी साबुत मकान नहीं मिला है। पता नहीं शर्मा महोदय ने किस तरह यह ईजाद कर ली।

मकान पकी हुई बड़ी बड़ी ईंटों के बनते थे। हर घर में कुआ था। इस नगर की विशेषता है इसकी भूमि के भीतर दबी नालियाँ। वे नालियाँ सड़क के नीचे की नालियों में मिल जाती थीं। मोअन-जो-दड़ो का स्नानागार विश्वविख्यात है।

सीढ़ियों के अवशेषों से पता चलता है कि यहाँ मकान दुमंजिले भी होते थे। सड़कें समानांतर थीं और समानांतर ही उन्हें काटती थीं। कूड़ा डालने के लिये स्थान बने थे और मलमूत्र के लिये शोषक कूप (Soak pit) बने रहते थे। एक सड़क निकली है जो ३३ फीट चौड़ी थी। वह आधा मील की दूरी तक निकाली गई है।

इस नगर के लोग गौ, सूहर, भेड़, मछली, मुर्ग, कछुए खाते थे। गेहूँ प्रधान खाद्य था। जौ, खजूर, दूध का भी प्रयोग होता था।

सूती और ऊनी दोनों प्रकार के कपड़े काम में लाये जाते थे। पुरुष दाढ़ी

रखते थे और संभवतः मूँछों को मुँडवा देते थे, (वैसे अब भी मुसलमानों में मिलता है) केशों को गूँथा जाता था।

स्त्री और पुरुष सभी आभूषण पहनते थे। स्वर्ण और चाँदी, हाथी-दाँत और रत्नों के अनेक स्त्रियों के सुन्दरतम आभूषण मिले हैं। साधारण जनता में हड्डियों, घोंघों, गुरियों, ताँबे और मिट्टी के गहने आमतौर पर चलते थे। यहाँ ढोल, कंचे और पाँसे मिले हैं। खिलौने, पहिएदार छोटी गाड़ियाँ भी मिली हैं। इनसे मनोरंजन के साधन प्रगट होते हैं। पत्थर का प्रयोग कम होता था, सम्भवतः वह बाहर से लाया जाता था। लोहा मोअन-जो-दड़ो में नहीं मिला है। मिट्टी के वर्तनों को चमकदार भी बनाया जाता था। बैलों से खेती होती थी। इस नगर में बैल की प्रसिद्ध आकृति मिली है। सीलों पर गेंड़े, भैंसे, बन्दर, सिंह, भालू और खरगोश के चित्र भी मिले हैं। यहाँ पीपल वृक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता था। चित्रकला यहाँ विशेष रूप से विकसित थी। हरप्पा में सुन्दर मूर्तियाँ मिली हैं। मोअन-जो-दड़ो में नर्तकी की धातु-मूर्त्ति मिली है जो नग्न है। यहाँ की सीलों से पता चलता है कि व्यापार यहाँ प्रमुख था और एशिया तथा दक्षिण भारत से आदान-प्रदान होता था। टीन, ताँबा और रत्न बाहर से भी मँगाये जाते थे। मोअन-जो-दड़ो में शायद दाह-क्रिया से मुर्दे का संस्कार करते थे। हरप्पा में कब्रिस्तान भी मिला है। मुर्दा जला कर यहाँ घड़ों में उसकी भस्म रखने की प्रणाली थी।

अभी तक लोगों का यह विचार था कि सिंधु सभ्यता भूमध्यसागरीय संस्कृति का पूर्वी छोर थी, पर लोथल ने यह भ्रम तोड़ दिया है। अब यह भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि यह अनार्य्य सभ्यता थी। लोथल में तो यज्ञकुण्ड जैसा और सती-प्रथा का इंगित मिला है। अब ऐसा लगता है कि सिन्धु सभ्यता सिंधु में ही नहीं, भारत में व्यापक पैमाने पर फैली थी। सौराष्ट्र में ही हरप्पा कालीन २०० बस्तियों के निशान मिले हैं। उत्खनन होने पर बहुत कुछ ज्ञात होने की संभवना है।

प्रायः मोअन-जो-दड़ो के विषय में विभिन्न मत हैं—

(१) यह आर्य सभ्यता थी। परन्तु ऋग्वेद के वर्णनों से इसका कुछ कम मेल बैठता है। यहाँ चरागाही जीवन का निशान नहीं है। नागरिक जीवन मिलता है।

(२) यह द्रविड़ सभ्यता थी। इसमें भी दो मत हैं—

(अ) द्रविड़ भारत से सुमेरु जाकर बसे।

(आ) द्रविड़ भारत में बाहर से आये।

दोनों मतों में बलूचिस्तान में मिली ब्राहुई बोली का आधार लिया जाता है। कुछ का मत है कि द्रविड़ भाषाओं से मिलती ब्राहुई किसी आवागमन के कारण ही बलूचिस्तान में मिलती है। पर द्रविड़ शब्द संस्कृत के द्रविण से बना है जिसका अर्थ है धन, द्रव्य इसीमे निकला है। द्रविड़ कौन थे?

प्रश्न है कि वेद में द्रविड़ कोई जाति नहीं है। फिर द्रविड़ कौन हो सकते हैं? स्वयं आर्य एक जाति थी या यह एक संस्कृति थी? भारत में मुसलमान आये। पर वे एक जाति (Ethnic group) नहीं थे। मुसलमानों में अरब, तुर्क, मंगोल, पठान आदि प्रमुख रूप से भारत में शासन कर चुके हैं। किन्तु वे अलग अलग जातियों (Races) के लोग थे। क्या आर्य भी ऐसे ही थे?

इस स्थिति में हरप्पा, मोअन-जो-दड़ो और लोथल के निवासियों के बारे में नहीं के बराबर ही ज्ञान है। हम आर्य और द्रविड़ खोजते हैं। परन्तु हमारी परम्परा की शब्दावली दूसरे ही प्रकार की है। अतः अभी इतना ही कहा जा सकता है कि कुछ नगर निकले हैं जिन के बारे में अभी निश्चय से नहीं कहा जा सकता। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तीनों नगर किसी आक्रमण में नष्ट नहीं हुए हैं। इनका क्रमशः ह्रास हुआ है। हमारी पौराणिक परंपरा सिन्धु सभ्यता और हरप्पा को यक्ष- गंधर्वों के साथ जोड़ती है। जब तक इसके और प्रमाण नहीं मिल जाते, तब तक हम इस विषय पर अन्तिम बात नहीं कह सकते। यक्ष मुर्गा बहुत खाते थे। उन के भीतर ही दूसरे विचारधारा के लोग राक्षस थे जिन में सती-प्रथा थी। यक्ष वृक्ष की पूजा करते थे। वे वृक्ष में देवता माना करते थे। बहुत सी बातें हैं जो यहाँ हमें परंपरा का पोषण करते हुए मिलती हैं।

चाइल्ड का मत है कि सिन्धु सभ्यता और सुमेरियन सभ्यता में काफी साम्य दिखाई देता है। डा० हन्टर का मत है कि यह साम्य सुमेर के जमदत्तनस्र काल (३५०० ई० पू०) के समय में अधिक दिखाई देता है। इससे मोअन-जो-दड़ो का समय भी पीछे खिसकता है। शास्त्री का मत भी यही है। मोअन-जो-दड़ो का अन्तिम समय ही मैसोपोटामिया का समय माना जा सकता है। उनके मतानुसार ईस्वी ३५०० वर्ष पूर्व से यह सभ्यता और पुरानी ही हो सकती है, परवर्त्ती नहीं।

अब प्रश्न आता है भारत से बाहर जाने वाली जातियों का। वैल्स के मतानुसार १५००० से १००० ईस्वी पूर्व तक हीलियोलिथिक नियोलिथिक संस्कृति के लोग संसार में समुद्र पर नावों पर (Canoes) घूमा करते थे। वे भारत, चीन के प्रशांत महासागरीय तट से मैक्सिको और पीरू तक फैले हुए थे। उनकी यह विशेषतायें मिलती हैं :—

(१) खतना प्रथा,

(२) काडवेड प्रथा—(बालक के जन्म के समय पिता को बिस्तर में सुलाना),

(३) मालिश करने की प्रथा,

(४) ममी बनाने की प्रथा,

(५) पत्थर के स्मारक बनाने की प्रथा,

(६) युवकों के सिर को कृत्रिम उपायों से विकृत बनाने की प्रथा,

(७) शरीर गुदवाने की प्रथा,

(८) सूर्य और नाग का सम्बन्ध जोड़ने की प्रथा,

(९) कल्याणकारी समझ कर स्वस्तिक के प्रयोग की प्रथा।

इलियट स्मिथ के अनुसार तत्कालीन जगत में यह एक श्रेष्ठ संस्कृति थी। इसका उद्गम-स्थल भूमध्यसागर या उत्तरी अफरीका रहा होगा। इस संस्कृति का प्रभाव मंगोलों पर नहीं मिलता, न नार्डिकों पर मिलता है। इसका विस्तार विषुवत रेखा के समीपस्थ प्रदेशों में अधिक रहा था। मैनेलेशिया और पोलीनेशिया में इसका प्रभाव था। संभवतः मिस्र तथा दजला-फरात की सभ्यतायें इसी से उठ खड़ी हुई थीं। चरागाही घुमन्तु सेमेटिकों में भी इस संस्कृति का प्रभाव था। अमरीका की पुरानी जातियाँ मंगोल थीं। अब भी चमड़े की नावों में बैठकर एशिया और अमेरिका की ओर बॅरिंग स्ट्रेट से यात्रा होती है। बाद में शायद अमेरिका की कुछ नयी जातियाँ गई थीं।

भारत में भी उपर्युक्त प्रथायें मौजूद थीं। अमेरिका और मैक्सिको में भारतीय संस्कृति के अनेक उपकरण मिलते हैं। अतः निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि भारत से कौन कब गया। परन्तु अमेरिका में माया या मयों का उल्लेख है और भारत में भी मय शिल्पियों का उल्लेख है। मयों का भारत से जाने का समय महाभारत युद्ध से कुछ पहले का काल है। यद्यपि निश्चय से नहीं कहा जा सकता, पर यह असम्भव भी नहीं है। परवर्ती काल में भारत से अनेक जातियों के बाहर जाने के बारे में मनु ने लिखा ही है, और कोई कारण नहीं है कि उस

बात का बिल्कुल ही तिरस्कार कर दिया जाय। भारत के उत्तर पश्चिम मे जाने वाले द्रुह्यो का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। हो सकता है कि बोगजकोई के

चित्र ३७—मैक्सिको की एक मय महिला, जिसकी वेष-भूषा हिंदुओं की है।
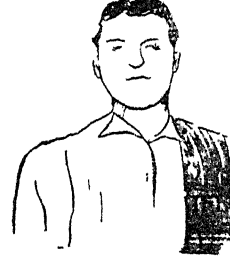
चित्र ३८—एक मय पुरुष

चित्र ३९—मैक्सिको के माया (मयों) के देवी देवता जो हिंदुओं के से लगते है।

चित्र ४०—मयों का हिंदुओं की भांति १३ मास प्रगट करने वाला व्यासचक्र।

लेखों के प्रणेता भी ऐसे ही भारतीय रहे हो। बुद्धकाल से तो यह ज्ञात ही है कि भारतीय लोग रोम और मिस्र ही नही, जावा, सुमात्रा तक जाया करते थे।

यद्यपि यह अभी विवादास्पद है पर अन्त मे हम अपना मत लिखते है।

(१) हीलियोलिथिक संस्कृति के काल मे भारत से अमेरिका तक लोग आते जाते थे। इस कारण बहुत सी बातो मे साम्य हुआ। नागों में परवर्त्ती काल में सूर्य की उपासना भारत मे प्रचलित थी। नाग का महत्त्व मिस्र मे भी था। संभवतः नाग टॉटेम के लोग उस समय विद्यमान थे।

(२) ईस्वी पूर्व ५००० ई० से २५०० ई० तक के संसार में मिस्र, सुमेरु और चीन के साथ भारत भी सभ्य था। सभ्यता कहाँ प्रारंभ हुई थी, यह तो नहीं कहा जा सकता पर इन सभ्यताओं में आदान प्रदान था। इस सभ्यता का सबसे अधिक विस्तार भारत में था। अतः हो सकता है मूल स्थान भारत ही रहा हो। इस समय की अन्तिम शताब्दी में आर्य भारत में प्रथम बार आये।

(३) २००० ई० पू० से १००० ई० पू० तक क्रीट, फीनीशियन, यहूदी, हिताइत, मितन्नी, यूनानी, मद, पर्शियन, और यामा मिलते हैं। भारतीय आर्य इनसे प्राचीन थे। यह आर्य यहाँ बसे। अनेक जातियों से मिले। संभवतः बहुत से आर्य बाहर भी गये। संभवतः यहाँ से अनार्य भो गए।

आगे के इतिहास के बारे में प्रायः ही यह ज्ञात है कि भारत से विशेष कौन कौन जातियाँ बाहर गईं।

इस प्रकार हमने प्रारंभिक सभ्यताओं के विकास की झलक देखी। इन्हीं मूल स्रोतों से संसार की बाद की सभ्यताओं ने अनेक प्रकार से प्रेरणाएँ प्राप्त कीं।

यह सब इतने प्राचीन काल की बातें हैं कि एक एक नई खोज बहुत से परिवर्तन खड़े कर देती है।

५

मनोविज्ञान और मानवविकास

हमारे सारे विचार हमारी सीमाओं की उपज हैं। हम सब मनुष्य जिन सत्यों के लिये जीवित हैं, उनका पृथ्वी पर रहने वाले अन्य प्राणि-जगत से कोई संबंध दिखाई नहीं देता। जीवन और मृत्यु सबके सत्य तो हैं पर मृत्यु पर मनुष्य ने ही मनन किया है। मनुष्य मृत्यु के सामने असमर्थ रहा है। इसलिये उसने लोक और परलोक के भय को स्वीकार किया है। उसने मृत्यु का गौरव केवल सामाजिक मूल्यों से अनुभव किया है। व्यक्ति रूप में उसने मृत्यु को आत्म-घृणा का ही पर्य्याय माना है। आदिम जीवन से धीरे-धीरे विकास होते-होते वह घृणा अब एक संस्कार बन गई है। मनुष्य का विचार ठोस नहीं वायव्य है। अरूप ही है वह। उसका रूप केवल रूपों (images) में होता है। संसार में मनुष्य आज भी अतीत के युगों की भाँति ही विचारों को महत्त्व देता है। पहले परिस्थिति से विचार जन्म लेता है, परन्तु एक विचार के प्रारंभ होने पर वह परिस्थिति पर अपना प्रभाव डालता है। संभवतः अन्य प्राणियों की दृष्टि में मनुष्य केवल एक प्रकार का पशु है। हमारे पूर्वजों ने जो जन्म मृत्यु के विषय में पूर्व जन्म और पुनर्जन्म की धारणा बनाई थी, उसमें उन्होंने पशु-पक्षियों के जीवन से अपना संबंध जोड़ लिया था। उनका विचार था कि सर्वश्रेष्ठ मानव होता है। यदि वह पाप पुण्य करते थे तो उसके अनुसार जन्म मिलता था। उन लोगों ने अपनी सत्ता को सबका केन्द्र बनाकर रखना चाहा था। उन्होंने प्रवाह के रूप में सबको स्वीकार किया था।

प्रवाह की स्वीकृति वास्तव में सामूहिक जीवन की स्वीकृति है। व्यक्ति का उसमें एक नियत स्थान है। उसमें असीम तृष्णा अपना स्थान नहीं पाती। मध्यकालीन भारतीय संतों ने जब मनुष्य के अहंकार की निंदा की थी, तब वास्तव में वह भी समाज का उपकार करने की ही चेष्टा थी, कि व्यक्ति को दूसरों से द्वेष और गर्व नहीं करना चाहिये। पर संतों का दूसरा आधार आत्म-घृणा (Self loathing) थी, इसलिये लोक को उससे शक्ति नहीं मिली। आत्म घृणा के कारण समूह और व्यक्ति का सच्चा तादात्म्य नहीं होता।

समाज के दो अंग रहे हैं, एक जनसमाज, एक उसके शासक। आदिम समाज से लेकर आज तक यह भेद किसी न किसी प्रकार बना रहा है। सदा ही शासक-वर्ग अपने शासित-वर्ग की तुलना में, (बुद्धिमान न सही) चतुर अवश्य रहा है।

इस प्रकार एक दूरी सदैव बनी रही है। इस दूरी के कारणस्वरूप एक द्वन्द्व समाज में ज़न्म लेता है।

भौतिक पदार्थ का क्रमशः विकास हुआ। भूततत्त्व चेतन शक्ति ग्रहण करता गया। जब वह मनुष्य बना तो उसने अपने लिये लोक परलोक बनाये, ताकि अपने अस्तित्व की व्याख्या कर सके। अपने को निरतंर विकसित करने के लिये मनुष्य ने संघर्ष किया है, केवल दो कारणों से—जिजीविषा और रिरिंसा के लिये। मनुष्य का चेतन परिवर्द्धित होता है, और वह उसे सामाजिक रूप देता है।

चेतन का निरंतर विकास ही अहं का विकास है। अहं के इस विकास को अन्य चेतन योनियों में भी स्वीकार किया जा सकता है। वह कहता है कि परलोक की कल्पना मनुष्य के ही साथ है। क्या जीवन के प्रारंभ में एक रंध्रीय प्राण में जिजीविषा नहीं थी ? जिजीविषा ही आत्मा है। वही चेतन है। चेतन भौतिक का ही गुणात्मक परिवर्त्तन है। भौतिक के क्षय—यानी रूप परिवर्त्तन के साथ ही चेतन शक्ति का नाश आवश्यक नहीं है।

भौतिक के गुणात्मक परिवर्त्तन के रूप में चेतन है, और चेतन का विकास है, उसकी विकसित शक्ति है। चेतन भौतिक पदार्थ में कैसे प्रारंभ हुआ, यह अज्ञात है। क्या प्रकृति के क्षेत्र में, चेतन गुण और भौतिक प्रक्रिया का एक ही संबंध हो सकता है ? जिस चेतन में स्मरण शक्ति, परंपरा आदि

का विकास हुआ है, वह ज्ञान तंतुओं के विनाश के साथ कैसे विनष्ट होता है ? क्या पता प्रकृति का भौतिक तत्त्व में वह चेतन अपने किसी अन्य रूप में बना रहता है, और वही फिर आगे का विकास नहीं कर लेता ? जीवन का प्रारम्भ मनुष्य से पुराना है। मनुष्य उस चेतन की विकास प्राप्त एक राह की मंजिल है। जड़ और जीवन का भेद है कि जीवन में—उस प्राणी में जिसमें जीवन है—एक चाह है अपने को बचाये रखने की, और वह चाहना जिजीविषा है। वही अहंकार है। अहंकार का विकास चेतन का ही विकास है।

लोक की विभिन्न अवस्थाओं में जड़, चेतन, रूप, परिवर्त्तनमय जन्म-जीवन, मृत्यु में, जन्म पुनर्जन्म को ईश्वर से जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। उसे भौतिक के विकास चेतन का ही गुणात्मक परिवर्त्तन कहना अधिक संगत है। जड़ से चेतन का विकास क्रम में जन्म हुआ और उस कड़ी के बीच की अवस्था में हम केवल कल्पना का आधार मानते हैं।

भौतिक पदार्थ में क्रमशः चेतन का विकास हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि चेतन का विकास जड़ से हुआ, परन्तु किस तरह हुआ, यह अभी स्पष्ट नही है। प्रयोग ने बताया है कि विकास क्रमशः हुआ है। भौतिक पदार्थ के विकास में चेतन का गुण विकसित हुआ है।

गुणात्मक परिवर्त्तन किस तरह होता है, यह भी हम नहीं जानते। वह कितने प्रकार का होता है, यह भी अभी अज्ञात है। हम उस परिवर्त्तन की एक झलक पा सके हैं। चेतन का विकास उतना ही हम जान पाये हैं जो कि भौतिक के आधार से पकड़ सके हैं। वह हमारे सामने अलग अलग प्राणियों की इकाइयों के रूप में प्रगट हुआ है। हम नहीं जानते कि भौतिक पदार्थ की किसी आकृति की विशेष शक्तियों का क्षय हो जाने पर, जो उसका चेतन मर जाता है, वह मर ही जाता है।

वह भौतिक जगत में ही वर्त्तमान रहता है। मनुष्य के बाहर वही भौतिक पदार्थ अपने अन्य रूपों में है। दीप जलता है, अग्नि से। अग्नि विशेष पदार्थों के संघर्ष से जन्म लेती है। दो पत्थरों की रगड़ से आदिम मनुष्य अग्नि जलाता था। हम काठ और फॉसफोरस की रगड़ से जलाते हैं।

फिर उसे तेल और बत्ती का आधार देते हैं—यानी भौतिक पदार्थों के एक रूप से जन्म लेकर अग्नि दूसरे रूपों में भी जीवित रह सकती है। दीप की लौ जलती है तो प्रकाश होता है ?

प्रकाश का अर्थ है ज्योति-किरणों की यात्रा। बहुत बहुत दूर तक किरणें भौतिक जगत में बढ़ती हैं। फिर वे नष्ट हो जाती हैं यानी रूप-परिवर्त्तन हो जाता है।

अग्नि एक ऊर्जा (Energy) है। दीप के बुझते ही किरणें नष्ट नहीं होतीं। जो उसमें से निकल चुकती हैं, वे आगे बढ़ती रहती हैं।

मानव मस्तिष्क बहुत ही दुरुह (Complex) है। उसके तन्तु (feeling) अनुभूति को इन्द्रिय-जन्य कियाओं द्वारा किस प्रकार पकड़ते हैं, यह अभी तक स्पष्ट नहीं तो सका है।

किसी प्रकार की टकराहट से शब्द होता है। वह भौतिक जगत में घूमता है। वह धीरे-धीरे ध्वनि बन जाता है। चेतन भी उसी प्रकार शब्द और प्रकाश की भाँति ऊर्जा के रूप में रहता है। यह आवश्यक नहीं है कि चेतन का वैयक्तिक रूप सदैव एक सा अपरिवर्त्तनशील बना रहे।

आत्मा के दो ही रूप हमारे सामने हैं—

(१) ईश्वरवादियों का शाश्वत एकरूप रहने वाला आत्मा।

(२) दूसरा, अनात्मवादी बुद्ध द्वारा बताया गया आत्मा।

हमारे मत में चेतन में दोनों का ही कुछ सत्य है।

(१) वह शाश्वत नहीं होता, परन्तु उसमें वैयक्तिकता बची रहती है।

(२) वह क्षण क्षण बदलता रहता है।

जूलियन हक्सले के मतानुसार पृथ्वी पर जीव के इतिहास में पहली बार एक पदार्थ तत्त्व प्रगट हुआ जो निष्कर्ष निकाल सकता था, धारणाएँ बना सकता था, और अपने जैसे दूसरे साथियों तक पहुँचा सकता था—अपनी चेतन इन्द्रियों और मस्तिष्क से—वह मानव था।

मस्तिष्क एक इन्द्रिय है जिसमें मन (Mind) बाह्य संसार को प्रतिबिंबित करता है। वह लघु मानवा संसार (Microcosm) का विराट संसार (Macrocosm) के विरुद्ध सृजन करता है। पशु केवल संसर्गजन्य स्मरण शक्ति के द्वारा अधिक से अधिक एक लघु संसार सिरज सकता है,वह अपूर्ण होगा और उसकी संगठन व्यवस्था भी बहुत साधारण होगी। किन्तु मनुष्य में तो चित्र ही बदल जाता है। उसका लघु संसार बहुत ही संगठित हो जाता है, ऊँचे दरजे की उसमें सुव्यवस्था मिलती है, यह केवल चलचित्र नहीं, श्रेष्ठ नाटक है, और इसका कथानक उतना ही दुरुह और सुगठित है, जितना उस

विराट संसार का नाटक है, जो मनुष्य के बाहर होता है। यह मानवी लघु-संसार प्रायः रूप और विस्तार में उस विराट संसार की अनुकृति पर ही अपना निर्माण करता है। इसका परिणाम यह है कि जीवन पहली बार मनुष्य की आकृति में वाह्य संसार के विषय में कुछ साधारणीकृत विचारों को रूप देता है। जीवन अब घटनाओं का दर्शक नहीं, वह पहली बार जान पाता है कि घटनाओं में शक्तियों की एक प्रणाली भी है। इन शक्तियों का निरंतर मनुष्य पर प्रभाव पड़ता है। सूर्य, तूफान, फसलों के उगने, हिंस्र पशुओं, विचित्र कबीला जातियों और मनुष्य के अपने हृदय के अज्ञात अपरिचित प्रदेशों में शक्ति है, मनुष्य अपने जीवन-पथ में इन शक्तियों के संपर्क में आता है, जो या तो उसके अनुकूल हैं या प्रतिकूल। मनुष्य इन शक्तियों के बारे में अपनी धारणा बनाता है और एक बार बन जाने पर वह धारणा उसके अन्य विचारों पर अपना प्रभाव डालती है, उसके भावों पर, उसके आचार पर भी प्रभाव छोड़ती है। धारणा जितनी सबल है उसका प्रभाव भी उतना ही सशक्त होता है। मनुष्य का यह धारणा जगत ही धर्म आदि का रूप धारण करके बौद्धिक आधार बना है। उसी को हमें युक्त करके देखना है। मनुष्य को प्रकृति के तीन रूपों से संपर्क स्थापित करना पड़ता है—वह जो कि सूर्य, चंद्र आदि है, वह जो कि प्राणिजगत है, और वह जो आध्यात्म या मनोवैज्ञानिक है। प्रथम Inorganic है, दूसरा Organic तीसरा Psychic. किंतु प्रकृति में एक ही प्रकार की ऊर्जा (Energy) है, चाहे वह रेल खींचती है, मनुष्य को उन्नत करती है, ताप या ज्योति में उजागर होती है, या गिरते पत्थर में मिलती है। केवल सार (substance) एक ही है। वृक्षों, मनुष्यों, नदियों, चट्टानों, पवन में उड़ते मेघों, स्वयं पवन, बहुमूल्य रत्नों, और साधारण मिट्टी— सब के रूप में–शरीर में—सीमित भूत (elements) हैं। यह सब भूत (matter) के विभिन्न मात्राओं में समिश्रण हैं, विभिन्न दिखते हैं, मात्रात्मक भेद से अलग-अलग लगते हैं, किन्तु मूलतः सब एक ही (matter) हैं, वहाँ उन में पहचान नहीं, वे ऊर्जा से अलग अलग नहीं किये जा सकते। विशेष घटनाओं के लिये किसी नियन्ता को नहीं माना जा सकता। विद्युत प्रकाश और ज्वालामुखी विस्फोट वस्तुओं के पदार्थ संघट्ट का परिणाम हैं। सब अव्यक्तिगत नियम और एकत्व है। गति और द्वन्द से ही शक्ति का परिचलन है जिससे नये नये सिरजन होते हैं, अन्यथा यह सृष्टि मृत-हो जायेगी। परन्तु इसके लिये संभवतः असंख्य कोटि वर्षों की कल्पना करनी होगी। समस्त की गति क्षय की ओर होती है। पदार्थ का एक जटिल और विशेष दुरुह रूप ही प्राणिजगत है। इसका विकास

गुणात्मक परिवर्तन से जड़ पदार्थ से ही हुआ है। पदार्थ एक ओर जड़ जगत की शक्ति में क्षय की ओर अग्रसर है—क्षय जो करोड़ों अरबों वर्ष में होगा —तो वह प्राणी जगत में दुरुह हो जाता है, उसके रूप विभिन्नतम दिखाई देते हैं। हक्सले कहता है कि यदि विज्ञान का यह विचार निष्कर्ष ठीक है तो एक समय रहा होगा जब पदार्थ आज के रूप में नहीं रहा होगा, तब अणु नहीं रहे होंगे, स्वतन्त्र परमाणु रहे होंगे। उस अवस्था से विकास में परमाणुओं की व्यवस्था से अणु बने होंगे और अणुओं और अणुओं के मिलन से—नई व्यवस्था में रासायनिक क्रिया बिना विभिन्न अणुओं में विभाजित न किये जा सकने वाले कण बने होंगे। (Molecules) काल के लम्बे खण्डों को पार करने पर वह समय आया होगा जब ताप और प्रकाशविकीर्णन ने पृथ्वी के तापक्रम को १०० डिगरी सेंटीग्रेड से कम किया होगा, तब जल बना होगा भाफ से और फिर द्रव बने होंगे। वे भूत जो जल में घुले बिना अकर्मण्य रहते थे—ठोस अवस्था में— गति के नये रूप में घुमे होंगे—रसायनिक जीवन में। फिर आगया होगा चेतन जीव जिसके लिये ऐसे कणों की आवश्यकता है, जिसमें सहस्रों अणु हों, और प्रत्येक अणु में असंख्य चक्रगति धावित परमाणु हों। यह है दुरुहता। आध्यात्मिक या मनोवैज्ञानिक पक्ष में मानसिक क्रिया की गतिशीलता में निरंतर वृद्धि हुई है। एकरंध्रीय प्राणी या कीट रूप में जीवन मानों वातायन-हीन है। चेतन इंद्रियों के विकास से ही स्मरण शक्ति का उदय होता है। जीवन की दिशा का सारांश है—अधिक जीवन। मात्रा में भी, गुण में भी। चेतन जड़ पर हावी होता जा रहा है। और इसी विकास में क्रमशः कायिक संगठन के ऊपर विकास को प्राप्त कर गया है—व्यक्ति—आत्म चेतन व्यक्ति, जिसके पास एक सुव्यवस्थित संगठित मस्तिष्क है। यह है मनुष्य और इसका पृथ्वी पर समय अभी बहुत ही छोटा है। यह मनुष्य अपना निर्माण स्वयं करता है, न कि प्रकृति की पुरानी चुनाव और त्याग की परिपाटी के अनुसार ही चलता हो।

मस्तिष्क एक पिण्ड है, जो ब्रह्माण्ड का बिंब धारण करता है। मनुष्य के जन्म के साथ पृथ्वी के इतिहास का एक अध्याय समाप्त हो गया है। पदार्थ आत्मा बन गया है, अर्थात जागरूक चेतन, और अब इसे ही पदार्थ को गढना है।' विकास में कितना अभी और संभाव्य है? काला जादू प्रारंभ करने वाले पुराने बर्बर थे, जो अन्ध-विश्वासों में डूबे हुए थे। पता नहीं, किस बर्बर ने इस मस्तिष्क की उस छिपी हुई शक्ति का किस प्रकार अभ्यास प्राप्त कर लिया, जिससे हिप्नोटिज्म का विकास हुआ। वैज्ञानिक मानते हैं कि

हिप्नोटिज्म के द्वारा केवल दृष्टिपात से किसी के चर्म पर फोड़े फुन्सी पैदा किये जा सके हैं। परन्तु यह चेतन की कौन सी शक्ति है, जो सर्वसाधारण में नहीं है। किसी मनुष्य के मस्तिष्क के कुछ तन्तु साधारण व्यक्तियों के मस्तिष्क तन्तुओं से अधिक अनुभूतिशील होते हैं।

मस्तिष्क की शक्ति का किस अटकल से हजारों वर्षों में मनुष्य को पता चला? कैसे उस पर उसने काबू पाया? अभी तक यह क्षेत्र प्रयोगों के नीचे नहीं आया है। यह क्षेत्र पुराने हकीम वैद्यो की दवाओं की तरह है? हकीम वैद्य भी दवायें बनाते में अनगढ़ तरीके अपनाते हैं, उनका भी वैज्ञानिक स्तर आधुनिकों जैसा नहीं है। लिखा रहता है सोंठ, हल्दी, पीपल मिला देने से यह बनाकर देने से लाभ होता है। पर कितनी सोंठ, कितनी हल्दी, कितनी पीपल। यह विकास आधुनिक विज्ञान की छाया में औषधि निर्माण में हुआ है। परन्तु हकीम वैद्यों ने सदियों से दवायें दी हैं, उसी तरह हिप्नोटिस्टों के भी कुछ पुराने तरीके हैं। विज्ञान के लिये वे नये क्षेत्र हैं। मनुष्य के मस्तिष्क का विकास—चेतन का परीक्षण। वह जो सपने देखने वाला दिमाग है। याज्ञवल्क्य ने उसको आत्मा कहा था। परन्तु वह क्या है? स्वप्न कोई चाह कर नहीं देख सकता। फ्रायड ने इस मस्तिष्क को उपचेतन कहा था, जिसमें मनुष्य की दमित यौन-इच्छाएं समा जाती हैं। हिप्नोटिज्म अभी पुरानी कीमियागरी वाली हालत में है। विज्ञान को इसकी खोज करनी ही पड़ेगी। यह जो आदमी का सपने देखने वाला दिमाग है, यह योगी का चित्य होता है। वह उस पर काबू करता है, हिप्नोटिस्ट भी उसी पर काबू करता है। और वह काम होते हैं जो सहज समझ में नहीं आते। सचमुच मस्तिष्क के तंतु किस प्रकार चेतना को ज्ञात चेतन और उपचेतन के रूप में पकड़ते हैं, उन्हें अनुभूति पहुँचाते हैं, यह जानने के लिये एक बड़ा भारी विषय है। उप-चेतन समय समय पर भय या घृणा या प्रेम के विशेष आवेशों में कभी कभी अपनी झलक दिखला सका है। ज्ञात चेतन में स्मरण शक्ति है, नियोजन शक्ति है, विवेक शक्ति है, परन्तु यह उपचेतन चेतना का और भी दुरुह और उलझा हुआ स्वरूप है, जिसमें ज्ञात चेतन का सारा मानवी लघु संसार, वाह्य विराट संसार को छान कर जो प्रतिबिंब लेता है, वह सब तो उतरता ही है, ज्ञात चेतन की जिजीविषा—उसका अहं—उसकी रिरिंसा, उसके अहं का प्रसार, वह सब भी उसमें सन्निहित होता रहता है। और उसमें वे शक्तियाँ हैं जो साधारण प्रकृति के नियमों को गढ़ सकती हैं, पदार्थ को गढ़ती हैं।

ज्ञात चेतन ने प्रकृति के बाह्य स्वरूप को अपने लाभ के लिये प्रयुक्त किया है; उपचेतन में व्यक्तित्व के विकास को असाधारण संभावनाएँ हैं; क्योंकि वह पदार्थ का बहुत ही दुरुह और उन्नत चेतन स्वरूप है ।

चेतन की विरासत पदार्थ की विरासत से मिलती है। जिस प्रकार रोग पिता से पुत्र में उतरते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक नये मनुष्य को मस्तिष्क विरासत में मिलता है। पदार्थ का एक विशेष आकार प्रजनन में अपनी जैसी ही (Species) योनि को जन्म देता है। चेतन भी प्रत्येक एक पदार्थ-रूप देह में विकसित होता है। चेतन में इसीलिये भेद होते हैं। शरीर-रचना से मस्तिष्क पर काफी प्रभाव पड़ता है। शरीर के विभिन्न अंग विभिन्न रूपों में स्थित पदार्थ का मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। प्राचीन काल में संस्कृत के एक कवि ने अंडकोष को मनुष्य देह में व्यर्थ बताया था। परन्तु अब पता चला है कि वे वीर्य्यकोष होते हैं और उनका मस्तिष्क पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। चेतन की तीक्ष्णता या मंदत्व भौतिक पदार्थ पर आश्रित है। मस्तिष्क के तंतु यदि विकृत हैं तो चेतना भी कुण्ठित होती है। चारों ओर के पर्यावरण (environment) का मस्तिष्क निर्माण में बहुत प्रभाव पड़ता है। योनि-विकास में चेतन एक पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली धारा है, और जिजीविषा और रिरिंसा के वर्गीकरण में वह प्रत्येक अवस्था में, समाजगत व्यक्ति के रूप में खंड खंड है। प्रत्येक मस्तिष्क का चेतन एकसा नहीं होता।

इस पृथ्वी के जितने भूत हैं वे एक ही ऊर्जा (energy) के रूप हैं। क्रम से यह पदार्थ सुव्यवस्थित हुए हैं। उनकी सुव्यवस्था के संगठन का क्रम निरंतर बढ़ा है और मात्रात्मक परिवर्तन से जो गुणात्मक परिवर्तन हुआ है, उसी में जड़ से चेतन ने विकास किया है। पृथ्वी में परस्पर एक दूसरे का अनेक-क्रमेण संबंध है। यह संबंध पृथ्वी के भीतर ही नहीं, पृथ्वी के बाहर भी है। वह है ग्रहों से, और सूर्य से। इस बहुत छोटे परिवार के पारस्परिक संबंधों को भी हम अभी पूर्ण रूप से नहीं समझ पाये है। अनंत से दिखने वाले सीमित व्यापक महालोक के असंख्य तारापुंजों से जो हमारा भौतिक संबंध है—उसके बारे में तो हम जान ही नहीं पाये हैं। असंख्य ज्योतिवर्षो में जो प्रकाश उन अरबों खरबों मील दूर के नक्षत्रों से धरती पर आता है, क्या उसका कोई भौतिक प्रभाव यहाँ के पदार्थ पर नहीं पड़ता होगा ? ज्योति के रंग होते हैं और उनका अलग अलग प्रभाव पड़ता है। चंद्रमा के पूर्णोदय से सागर में ज्वार आता है, और सूर्य के कारण मेघ उठते हैं। और वनस्पति तथा जलवायु की पेटियाँ बदलती हैं, पुराने ज्योतिषी शनि, मंगल, बुध, वृहस्पति आदि

ग्रहों को देवता समझते थे। उन्होने अपने ही विचार से सोचा था कि इनका प्रभाव मनुष्य पर भी पडता है और ज्योतिष का विकास इस पृथ्वी के मनुष्यों में तब ही हो गया था, जबकि महाभारत का मनुष्य यह समझता था कि वीर्य किसी भी रास्ते से स्त्री में पहुँच जाये तो वह गर्भवती हो जायेगी, और न ही वह जानता था कि शरीर में मस्तिष्क किन शिराओं से पोषण प्राप्त करता है। उस मनुष्य का ग्रहों के बारे में जो विचार था, उसका अंधविश्वास पूर्ण होना आवश्यक था। वह मनुष्य यही मानता था कि सूर्य ही पृथ्वी के चारो ओर चक्कर लगाता था। परंतु इस गलती के बावजूद वह ग्रहण लगने का समय पहले से हिसाब जोड कर बिल्कुल ठीक बना देता था। उसके पास आज जैसी घड़ी भी नही थी। जब पदार्थ का चेतन धारा होकर भी खंड खंड व्यक्तित्व है, तब क्या इस पर न्यूनाधिक रूप से ग्रहों का प्रभाव भिन्न मात्रा में नही पड़ता होगा? इस खोज का यह आवश्यक परिणाम नही है कि वैज्ञानिक भी ज्योतिषी की भाँति भविष्यवक्ता बने। पदार्थ अपने स्थूल रूप में प्रकृति से एक साधारणीकृत प्रभाव ग्रहण करता है। परन्तु चेतन रूप मे मस्तिष्क शिराएँ और तन्तु जो पोषण उस मानवी लघु संसार को पहुँचाती हैं, जो विराट संसार का एक प्रतिबिंब है, और जिसमें इच्छा—यानी अहं नामक गुणात्मक परिवर्तन अर्थात् वैयक्तिक जिजीविषा और रिरिंसा है, और वह उपचेतन और भी दुरुह है, क्या इन पर भी वह प्रभाव साधारणीकृत होकर पड़ता है, या अहं की मात्रा से उसका भी भौतिक प्रभाव अपने गुणात्मक रूप मे विभिन्न हो जाता है। वह चेतन को विभिन्न गुण प्रदान करता है। पदार्थ से विभिन्न प्रकार की किरणें ऊर्ज्जस्वित होती हैं, उदाहरणार्थ हड्डियों को पारदर्शी दिखाने वाली एक्स-किरण, जो अकस्मात ही हाथ लगी है। पुराना मनुष्य इस पर कभी विश्वास नही करता। कॉस्मिक किरण भी विशेष गुण रखती है। किरण शक्ति का ही विस्फुरण है और इसका भौतिक मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ना आवश्यक है।

ग्रहों से विस्फुरित शक्ति जब आलोक बनकर आती है तब क्या खंड-खंड चेतन पर उसका प्रभाव पड़ना असंगत माना जा सकता है?

पदार्थ में चेतन का प्रादुर्भाव गुणात्मक परिवर्तन से हुआ। वह कैसे हुआ अभी यह प्रक्रिया ज्ञात नही है।

चेतन में जिजीविषा का अहं उसी शक्ति का परिणाम है, जो गुणात्मक परिवर्तन है, क्योकि प्रत्येक प्राणी अपने को विनाश से बचाने का प्रयत्न

करता है। वह प्राणी के लिये सहज है। उसके लिए बहुत ही आरंभिक चेतन-यानी जंगम होना मात्र काफी है। अनुवीक्षण यंत्र से देखे जाने वाले कीटाणु भी स्वरक्षा में लगे रहते हैं। स्वरक्षा—यानी जिजीविषा और संख्यावर्द्धन यानी प्रजनन जड़ के चेतन होने के गुणात्मक परिवर्तन होने के समय के ही गुणात्मक परिवर्तन है। जिजीविषा और रिरिंसा का दूसरा नाम अहं है। यह नितांत निर्भर है भौतिक पर। भौतिक का विकास ज्यों ज्यों दुरुह होता जाता है चेतन का विकास बढ़ता जाता है। विकास की यह प्रक्रिया कई योनियों में लाखों बरस चली है। अंत में इसका विकास मनुष्य है। पहले के प्राणियों में यह जिजीविषा-रिरिंसा अल्पतम मात्र थी जो बढ़ती गई और स्पष्ट हुई आगे के विकास में; किंतु तब तक भी भौतिक रूप से मस्तिष्क का इतना विकास नहीं हुआ था। अतः तब चेतन इतना सशक्त नहीं था। वह धीरे-धीरे मानव मस्तिष्क तक पहुँचकर व्यक्तित्व रूप में विकसित हुआ और उसने विराट संसार का मानवी लघु संसार में बिंब धारण किया।

विचार का प्रभाव ज्ञान-तंतुओं पर पड़ता है, और उसका प्रभाव बढ़ता भी है। विचार एक सामाजिक संपर्क और पर्यावरण से उद्भूत व्यक्तित्व की प्रक्रिया है। प्रत्येक क्रिया-प्रक्रिया का पदार्थ के दोनों रूपों—भूत और चेतन पर प्रभाव पड़ता है। खंड खंड चेतन व्यक्तित्व अंततोगत्वा प्रवाह गति के अंश हैं। अतः विचारों की क्रिया-प्रक्रिया स्मरण और परंपरा और संस्कार बनकर प्रभाव डालते हैं। व्यक्तित्व का जन्म भौतिक में आश्रित चेतन में होता है। चेतन अंततोगत्वा पदार्थ की ऊर्जा (Energy) है। शक्ति सदैव विकीर्ण (radiate) होती है। हमारे जटिल चेतन और उपचेतन का विकीर्णीकरण होता है। उस रूप में संस्कार, व्यक्तित्व, अहं, जिजीविषा, रिरिंसा, स्मरण और संवेदन की प्रक्रिया निरंतर विकीर्ण होती है।

मृत्यु के उपरांत दीप से जिस प्रकार दीप जलता है—मिलिंद से नागसेन ने कहा था—वैसे ही 'अनात्मन् आत्मा' भौतिक देह के मरने पर भी जीवित रहता है।

ऊर्जा के रूप में ज्योति और शब्द दोनों विकीर्ण होते हैं, और अपने व्यक्तित्व को काफी समय तक धारण करते हैं; शब्द के विषय में तो यह बिल्कुल स्पष्ट ही है। मृत्यु के उपरांत देह से चेतन विकीर्ण होता है। भौतिक से गुणात्मक परिवर्तन में विकसित चेतन में, जो कि भौतिक पर आश्रित है,

स्मरण जैसी विचित्र शक्ति है। वह अपने आयाम (dimensions) और भी रख सकती है।

चेतन अभौतिक नहीं है। वह पहले नहीं था फिर जब जंगम सृष्टि प्रारंभ हुई वह अविकसित था। मनुष्य तक आते-आते वह विकसित हुआ। जिस प्रकार लहर (wave) के रूप में ज्योति और शब्द भौतिक जगत में ही रहते हैं, चेतन का वह जटिल गुणात्मक परिवर्तन भौतिक जगत में ही रहता है। मरने पर देह बिखरती है। तत्त्वों में तत्त्व मिलते हैं। तब भौतिक के उन्नतिशील चेतन रूप गुणात्मक परिवर्त्तन का गुणात्मक परिवर्त्तन होता है। मस्तिष्क के भौतिक तन्तुओं से बाहर उसका स्थान है, बाहर भी भौतिक आश्रम वर्तमान है। गुणात्मक परिवर्तन से जब एक भौतिक देह नष्ट होकर, ज्ञान तंतुओं को पोषण न पहुँचने पर मस्तिष्क काम बंद कर देता है, तब चेतन का संस्कार बच जाता है, परिवर्तित हो जाता है, फिर जन्म लेता है।

वीर्य्यरज के मिलन से भौतिक देह बनती है और तभी देह में मस्तिष्क बनता है, मस्तिष्क बाह्य खाद्य प्राप्त करता है। मृत्यु पर गुणात्मक परिवर्तन से जो चेतन अपने में संस्कार, स्मरण आदि के साथ विकीर्ण होता है—वह नये गर्भस्थ प्राणी से संबंध कैसे स्थापित कर सकता है? यह अभी प्रयोग का विषय है। बुद्ध ने कार्य-कारण के अप्रतिहत व्यापार की स्वीकृति के कारण, कर्म के फलाफल के रूप में अनात्मन् का पुनर्जन्म माना था, किन्तु उसमें संघट्ट की बात थी, तभी वह विचार कल्पना मात्र बनकर नष्ट हो गया।

हम नहीं समझ सकते कि किस प्रक्रिया से भौतिक देह में पोषण-आहार जाकर शिराओं और तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क में चेतन को जाग्रत करते हैं कि वह इतना बड़ा व्यापार करता है। उपचेतन जो भौतिक आहार से पुष्ट होता है, न जाने कैसे अपने को ज्ञात चेतन से अलग सा रखता है, परन्तु यौगिक और वह भी अवैज्ञानिक सी प्रणालियों—हिमोटिज्म आदि से—विचित्र शक्तियाँ दिखाता है। जैसे पहले रहस्यों को विज्ञान द्वारा हमें जानना है, उसी प्रकार इसे भी जानना है। इनमें से जो प्रयोग-सत्य है, उसे स्वीकार करना है, बाकी को नहीं। परन्तु भौतिक जगत के इस चेतन का खेल न माया है, न भाग्य और न परमात्मा। परमात्मा, ईश्वर (शंकर के शब्दों में), आत्मा, माया, भाग्य सब पहले से पूर्ण (Absolute) नहीं हैं। वे सामाजिक जीवन के विचार हैं।

हमारा मानवी-लघु-संसार अभी तक विराट संसार का पूर्ण प्रतिबिंब ग्रहण नहीं कर सका है, क्योंकि अभी तक हमारा इतना विकास नहीं हुआ है। चेतन प्रारम्भ में इतना विकसित नहीं था, जितना बाद में हुआ है।

उसके ज्ञान से मेधावी और मनस्वी के जन्म की बात भी समझ में आयेगी, कि क्यों विशेष मस्तिष्कों में मेधा इतनी प्रबल होती है। परमात्मा और परमात्मा-हीनता के विवाद मध्य-कालीन हैं।

संघर्ष में नया गुण आता है, यह स्वतः सिद्ध है। पुराणों में भी विमान का वर्णन है। परन्तु हमने पुरानी परिभाषा को छोड़ कर नये रूप को स्वीकार किया है। वैसे बात वही पुरानी है कि आकाश में एक चीज उड़ती है। अरविंद ने उसे ऊर्ध्वचेतन नाम देकर उसकी महत्ता को सीमित करके, मध्यकालीन और प्राचीन परिपाटीगत नामों से मिलाकर, उन्हीं सीमित मानदण्डों में रखकर, भौतिक से प्रारंभ करके अंततोगत्वा उसे अभौतिक में परिवर्तित कर दिया है। भौतिक का सौंदर्य अभौतिक के सौंदर्य से कहीं बड़ा है, क्योंकि उसमें मनुष्य का अज्ञान नहीं। मनुष्य तो बाद में इस धरती पर आया है, और वह कभी भी इसका अंत्य नहीं है। इस महागति का अर्थ (purpose) अज्ञात है।

मार्क्स ने वर्ग युद्ध देखा था। वह समाज के रूप में ठीक था। परन्तु उसने व्यक्ति की सदिच्छा को नहीं देखा, जो अहं यानी व्यक्तित्व का चेतन विकास है। इसका कारण था कि उसकी पृष्ठभूमि में यहूदी और ईसाई संप्रदायों के सीमित चिंतन थे। वह जड़ भौतिकवादी नहीं बना, क्योंकि तब तक विज्ञान ने अपना प्रभाव डाल दिया था, तभी वह द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी बना। परन्तु उसने द्वन्द्व को व्यापक नहीं बनाया, केवल सीमित दृष्टि से देखा। उस समस्त जगत को जिसे मध्यकालीन व्यक्ति अभौतिक मानते थे, उसे उसने उनकी ही दृष्टि से देखा और उसको चेतन विकास की प्रक्रिया के रूप में वह नहीं देख सका। इसका कारण यही था कि यूरोप में सभ्यता का प्रभाव अधिक रहा है, संस्कृति का कम, जिसके कारण ही विज्ञान ने असमता को जन्म दिया है, और मनुष्य का व्यापक विकास कुण्ठित किया है। विज्ञान के असम विकास ने मनुष्य के पूर्ण रूप से सामंजस्य नहीं किया है।

मार्क्स ने वर्गयुद्ध के अंतिम समय में राज्यहीन (State-less) समाज की कल्पना करके प्रत्येक व्यक्ति को एक ऊँची मनोदशा में कल्पित किया था और कहा था कि आगे चलकर यह युद्ध आपस में मनुष्यों में न चलकर, मनुष्य और प्रकृति में चलेगा। मनुष्य का ज्ञान निरंतर प्रकृति को जीतता चला जायेगा।

परन्तु बुद्धि का विकास समूह का विकास है, किन्तु व्यक्ति रूप में शक्ति

का विभिन्न रूप होगा। सबकी मनोदशा एकसी नहीं होगी। मनुष्य ने अपने सुख के लिये प्रकृति से संघर्ष किया है और करता रहेगा, किन्तु समूह की जिजीविषा और रिरिंसा इस जटिल चेतन के विकास में व्यक्ति में भी अपना अलग अहं विकसित करती है। वह अहं क्या जड़ प्रकृति की विजय से संतुष्ट हो लेगा? मध्यकालीन 'अहं' का अंत 'संतत्व' था परंतु उसमें यह भावना सदैव थी कि ऐसा करने वाले वास्तव में अन्यों से ऊँचे और उद्धारक थे। गीता के कृष्ण में यह अहं है, ईसा में यही था जब उसने कहा था कि अरे मूर्खो! मैं कब तक तुम्हें बचाने आऊँगा? बुद्ध में वह अहं था जब वह धर्म प्रचार करने निकलते समय उपक से मिलकर बोला था कि मैं सोई हुई अंधी प्रजाओं को जगाने जाता हूँ। यह अहं गांधी में था जब मलाबार पर्वत पर उसने जिन्नाह से कहा था कि आओ समझौता करो, करोड़ों हमारी ओर देख रहे हैं, और पूना में जब उसकी रेल रोककर अंगरेजी सेना ने उसे गिरफ्तार किया था तब उसने नैग्लेफारसन से कहा था: जाकर दुनिया में कहना कि यह है ब्रिटिश वीरता कि वे एक अकेले निशस्त्र व्यक्ति को इस तरह चोरी से पकड़ सके हैं। इस सारे उद्धारवाद का मूल अहं है। इस अहं को जाग्रत करने के लिये महावीर ने अपने कानों में काठ ठुकवाया था। यह अहं कुत्सित नहीं है कि इसका निराकरण किया जाये। अहं जिजीविषा और रिरिंसा है। वह महापुरुषों में अतिविकसित होता है। यह आगे भी महापुरुषों में रहेगा और इसीलिये मनुष्यों का पारस्परिक संघर्ष समाप्त नहीं होगा। उसका रूप भले ही बदल जाये। संपत्ति के समाजगत होने पर रूस में लोगों का अहं अधिकार के लिये लड़ता है। अधिकार की सीमा भी जब लघु बन जायेगी तब यह अहं नये प्रकारांतर खोज लेगा, तब तक जब तक कि विकास-क्रम में यह चेतन ही अपना अधिक विकास नहीं कर जाता।

कला, साहित्य इत्यादि सौन्दर्य की भावनाएँ, जो विज्ञान के दृष्टिकोण से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, यह उसी अहं की अभिव्यक्तियाँ हैं। अहं का विकास ही अपना साधारणीकरण करता है। फ्रायड ने यौनवासना को आधार माना था परन्तु वह यौनवासना मूलतः रिरिंसा है। उसी के अन्तर्गत मार्क्स का समस्त वर्गवाद है। इन दोनों को ही प्रकारान्तर से जिजीविषा कहा जा सकता है। फ्रायड ने अर्द्धसत्य रखा, मार्क्स ने दूसरे दृष्टिकोण से उसे देखा। मार्क्स ने इस जटिल चेतन के कार्य को बहुत सहज समझा था, उतना ही जितना उसका ज्ञात-चेतन मात्र समझ सकता था। फ्रायड ने उपचेतन के केवल एक अंश 'प्रजनन' को समझने की चेष्टा की।

पाप और पुण्य समाज विशेष के नियमों का पालन और उल्लंघन है और वह भी किसी विशेष देश काल की परिस्थिति में। पाप और पुण्य समूहकृत हैं; किन्तु क्योंकि व्यक्ति समूह में रहता है, विशेष देशकाल की सीमा के कारण उसके संस्कार उनके अनुकूल बनते हैं। विकीर्ण चेतन के व्यक्तित्व में उसका अंश रह जाना असंभव नहीं, क्योंकि विचार एक बार जन्म लेने पर गहरा उतर जाता है और शेष विचारों पर प्रभाव डालता है। फलाफल की भावना को इन संस्कारों से मिला कर देखना ठीक नहीं है; क्योंकि प्रत्येक जन्म में क्रिया-प्रक्रिया का मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन होता है, अतः एक देशकाल में स्थित संस्कार दूसरे जन्म में उसी रूप में नहीं आ सकता, क्योंकि उसका काल-आयाम (dimension) में बदल जाना भी आवश्यक है। शोषक और शोषित वर्ग का सम्बन्ध फलाफल मे सम्बन्धित है। कर्म और पुनर्जन्म की भावना निस्संदेह पुरानी अनार्य्य जातियों में थी, जो पहले जैन चिन्तन में अन्तर्भुक्त हुई। क्योंकि उसे मनीषियों ने व्यक्तिकृत माना। उन्होंने उसके साथ से ईश्वर या परमात्मा को हटा दिया। जैनों के इस चिंतन ने एक समय शोषकवर्ग का अत्याचारी हाथ रोका था, क्योंकि वे दया, अहिंसा और करुणा के प्रचारक थे और उन्होने दासों को भी समानता का अधिकार दिया। उपनिषद् काल के विचारकों ने भी परमात्मा को अव्यक्त माना, क्योंकि आर्यों और अनार्यो के इतने देवता आपस में महाभारत युद्ध के बाद अन्तर्भुक्त हो रहे थे कि मनीषियों ने यही माना कि यह छोटे-छोटे देवता उस 'महान' के अंशमात्र थे, स्वयं वह मूल रहस्य ब्रह्म 'अज्ञात, अव्यक्त' था। इस सहिष्णुता से मनुष्यों के समाज एक दूसरे के पास आये और वह 'महान' समाज के कार्यों से जो सीधा नाता, पहले वेद के 'विराट पुरुष' के रूप में चातुर्वर्ण्य का शासक बनकर रखता था, टूट गया। इन मनीषियों ने भी फलाफल का विचार रखा और ब्राह्मण और क्षत्रिय को जो स्वतः विराट पुरुष के मुखबाहु से उत्पन्न उच्चाधिकारमय थे, दूसरे जन्म में दास के शरीर में डाल कर उस पुराने सर्वाधिकार के ऊपर अहिंसा और मानवीय मूल्यों को स्थापित कर दिया। जो कसर रही थी वह श्वेतद्वीपी वैष्णव चिंतन ने पूरी की, निम्न जातियों को परमात्मा के सामने एक मानकर यहाँ तक कि चाणक्य के समय में चाण्डाल और ब्राह्मण विष्णुमन्दिर में एक साथ घुसते थे। महाभारत में जनक का पथ पर झाड़ू लगाना और श्रीमद्भागवत में दास जड़-भरत का राजा रहूगण को उपदेश, इसी समाज की हलचल के प्रतिबिंब हैं, जिसमें फलाफल पुनर्जन्म पहले दलितवर्गों के शस्त्र बने कि शासक भी अपने अत्याचार के कारण दास बन सकता है। परन्तु बौद्ध चिंतन ने पाँसा पलट

दिया। फलाफल पुनर्जन्म में जो व्यक्ति के दण्ड पाने का भय था, बुद्ध के अनात्म ने वह मिटाया और निम्न जाति के लोगों को दबा दिया। देखने को लगता है कि बुद्धमत जातिहीनता का प्रचारक था, परन्तु व्यवहार में वह वहीं तक जातिहीन था, जहाँ तक क्षत्रियों की ब्राह्मणवर्ण से स्पर्धा थी। निम्नवर्णों को उस मत में मुक्ति नहीं मिली। बुद्ध क्षत्रिय प्रतिपालक थे जबकि समसामयिक महावीर निम्नवर्ण कुम्हारों के यहाँ ठहरते थे और थे क्षत्रियों से पीड़ित वैश्यों के सबल रक्षक। समाज इस हलचल में दासप्रथा के विघटन के पथ पर बढ़ा और दासप्रथा विभिन्न जातियों में श्रेणियों (Guilds) का रूप धारण करके टूट गई। सामंतीय व्यवस्था का उदय हुआ जिसमें रामायण में भाग्यवाद पर कर्म-वीर राम के पौरुष का उदाहरण आगे आया। परन्तु बाद में शम्बूक की कथा जुड़ी जो समाज की गतिशीलता का ह्रास बताती है और इस युग में फलाफल पुनर्जन्म उच्चवर्ग के हाथ का हथियार बना। इस प्रकार फलाफल सिद्धान्त एक समय शोषित का हथियार था, दूसरे समय वही शोषक का हो गया। अतः इसमें विद्रोह रुकने का प्रश्न ही नहीं। दबे हुये का विद्रोह तो चेतन का विकास है। अब पुनर्जन्म की मध्यकालीन व्याख्या आवश्यक नहीं। जैसे नये हवाई जहाज को पुष्पक विमान की व्याख्या की नहीं है।

रोग विशेष ग्रहण करके शरीर (भौतिक) अपनी संतान में रोग फैलाता है। यह फलाफल है। स्वस्थ का पुत्र प्रायः स्वस्थ ही होगा। भौतिक विशेष के आहार पोषण से वर्द्धित गुणात्मक परिवर्त्तन में चेतन विशेष भी इस प्रकार के फलाफल को ग्रहण कर सकता है, परन्तु प्रायः वह वातावरण से प्रभावित होता है। कभी-कभी नहीं भी होता, जैसे व्यापारी वातारवण में रहकर भी नानक संतत्व की ओर उन्मुख हुये। इसमें किसी वर्गवादी या पूँजीवादी समाज के संरक्षक बन कर संघर्षशील जनता को बरगलाने का प्रश्न नहीं, क्योंकि यदि यह कहा जाये कि रोग-विशेष से पीड़ित व्यक्ति का पुत्र भी रोगी हो सकता है, तो किसी संघर्ष में बाधा नहीं पड़ती।

स्वर्ग प्रत्येक संप्रदाय वाले की धारणा के अनुकूल ही वर्णन में आता है, अतः वह व्यक्तिगत संस्कारमात्र है और यह भी वैज्ञानिक अनुसंधान से प्रयोग-सिद्ध नहीं है कि ऐसे मरने वाले सचमुच ही मर जाते हैं।

प्राचीन और मध्यकालीन संतों ने केवल उसी अहं को लिया जो व्यक्ति के लिये बाधा है। मेरा मतलब उस अहं से है जो स्वस्थ प्रतियोगिता करता है। प्रकृति की विजय में मनुष्य को वह तृप्ति नहीं है जो जीवित प्राणियों से अपनी

प्रशंसा प्राप्त करने में—अन्यथा कोई कारण नहीं है कि रूस का प्रयोग इस प्रकार नेताओं के पारस्परिक युद्ध में निरत हो। पूँजीवादी देशों में ऐसा होना आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि यहाँ उसका कारण यह भी है कि सम्पत्ति व्यक्तिगत है। जिस समाज में राज्य व्यक्ति का पूर्ण नियंता बन जाता है, वहाँ मनुष्य की प्रतिभा कुण्ठित हो जाती है। अभी तक के विकास का कारण यह रहा है कि व्यक्ति को विकास करने के अवसर रहे हैं।

यहाँ घोर बन्धन रहे हैं और अवसरों के अभाव में अनेक बुद्धिजीवी नष्ट हो गये हैं। परन्तु फिर भी कबीर जैसे व्यक्ति मिलते हैं, जो समाज के बहुत ही दबे हुए वर्ग में से उठे थे। इसी प्रकार अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। अत्यन्त नियमबद्धता (डिसिप्लिन) में व्यक्ति को कितनी भी ऊँचाई पर क्यों न रखा जाये, व्यक्तित्व मर जाता है।

इसीलिये सेना में फुर्तीले, कर्मठ जवान तो बहुत मिलेंगे, किन्तु उस जगह विकसित चेतना का अभाव मिलेगा। वेदना ही हमें आगे बढ़ाती है। वेदना ने ही विश्व में महान कलाकृतियों को जन्म दिया है। यदि इस यंत्रवत् विकास के डिसिप्लिन को ही काम में लाया जायेगा, तो समाज में यांत्रिकता आयेगी और मनुष्य की सौंदर्य भावना का विलोप हो जायेगा। विज्ञान का विकास फूलों की चीराफाड़ी की उपयोगिता पर जोर देता रहेगा, वह उसके सौंदर्यपक्ष को विनष्ट कर देगा। आज के युग में संघर्ष में अभाव का कारण ही यह है कि विज्ञान ने मनुष्य की सत्ता को भ्रमित किया है, उसे और ऊपर नहीं उठाया। अपने साधनों की कमी में भी पूर्वजों ने मानवीयता को जितना ऊँचा उठाया है, विज्ञान उतनी देन नहीं दे सका है। विज्ञान राज्यों की लोलुपता और अर्थव्यव-स्थाओं का दास बना है, जबकि कला का इतिहास यह बताता है कि इसने सदैव निरंकुशता का विरोध किया है।

विज्ञान की यह प्रगति मानव-जाति की कोई बहुत बड़ी प्रगति नहीं है। वैज्ञानिक कभी भी कलाकार का स्थान नहीं ले सकेगा और कभी भी उसकी भाँति मनुष्य को शांति नहीं दे सकेगा। वह सुख दे सकता है। लेकिन सच्चा सुख शांति है। विज्ञान ने बहुत बड़ा काम किया है उसे सीमा में से निकालकर असीमा को दिखाकर, किन्तु कला ने भी यही किया था। अर्हं मूलतः करुणा हैं। उसी को बौद्ध अनात्म ने बोधिसत्व के रूप में शताब्दियों पहले देखा था क्योंकि मनुष्य प्रेम के बल पर जीवित रहता है। शायद मस्तिष्क के विकास ने चेतना को प्रेम नामक गुण दे दिया है, और इसी से उसकी इतनी हूक रहती है। मनुष्य

के अतिरिक्त बाकी प्राणिजगत मे संभोग मे आनन्द तो है, किन्तु वह एक शारीरिक क्रियामात्र है। उसका व्यक्तित्व पर प्रभाव नही पड़ता। सारे सामाजिक सम्बन्ध छोड़कर देखने पर भी पता चलता है कि मनुष्य जाति मे स्त्री और पुरुष ने केवल तन के आनन्द को ही सीमा नही माना, चेतना के आनन्द को भी संभोग मे रखा है और उसी को उसने प्रेम कहा है और शायद इसीलिये उसने अपनी सर्वोच्च कल्पना परमात्मा को भी प्रेम के ही रूप मे अंततोगत्वा देखा है। मनुष्य का पुराना देवता भय था और बाद मे उसका देवता बना प्रेम।

अमेरिका और रूस मे क्रमशः कला का ह्रास हुआ है। एक ओर ह्रासशील संस्कृति है पूँजीवादी, दूसरी ओर शुद्ध सस्कृति है समाजवादी। दोनो के समाज की मूल चेतना अर्थव्यवस्थाओ तक ही सीमित हो गई है, क्योकि वह उपयोगितावादी है।

मनुष्य के विकास मे योग का विकास मूलतः विचार का विकास है। भाव (Emotion) मूलतः योगियो के अनुसार माया है और अज्ञान ही है। यह योग का मध्यकालीन व्यक्तिवादी दृष्टिकोण है। योग के कई रूप है। ब्राह्मणवादी और अब्राह्मणवादी। शैव शिव से युक्त होने को योग कहते थे, परन्तु जैन और बौद्धो में केवल चित्तवृत्ति का निरोध ही योग था। जीवन की अनुभूतियो मे कितना क्या, कैसे और क्यों कर हमारे लिये अच्छा है, उसका निर्णय क्रमशः होता है। यह मनुष्य का भावजगत उसके संपूर्ण का द्योतक है, क्योकि यह प्रवृत्ति (Instinct) पर आश्रित होकर भी विचार (idea) से बनता है, प्रवृत्ति अपने आप मे पशुत्व है, और विचार अपने आप मे वाह्य है। अंतस्थ नही है, विचार से अंह की तृप्ति नही, क्योकि जिजीविषा मात्र ही मनुष्य का सबल नही, उसका जब उसकी रिरिंसा से समन्वय नही होता, जब तक वह सदा ही भटकता रहता है।

विकास मे धीरे धीरे जब कई बूँदे एकत्र हो जाती है तब एक धारा बनती है, और एकदम दिखाई देती है, यह आकस्मिक होता है। भौतिक विज्ञान का विकास इसी प्रकार हठात ही इन दो शताब्दियों में बहुत बढा है। पहले की असंख्य शताब्दियो में ऐसा नही हो गया। इसी प्रकार भौतिक-चेतन विज्ञान भी अकस्मात ही विकास करेगा, जब केवल भौतिक विज्ञान से मनुष्य का काम ही नही चलेगा। हो सकता है आगे चल कर अब तक का भौतिक-विज्ञान बहुत ही साधारण सी उन्नति माना जाये, क्योकि

मनुष्य का नये क्षेत्र में पदार्पण होगा और तब उसे सृष्टि की महानतम् गरिमा का आभास होगा। हमें जो दीख रहा है वह जगत् है। जगत् उसे कहते हैं जो चल रहा है, यानी परिवर्तनशील है। इस परिवर्तन को हम 'समय' कहते हैं, परंतु 'समय' अपने आप में कुछ भी नही है। जब दो वस्तुएँ मिलती हैं, तब इन का पारस्परिक सम्बन्ध ही समय को जन्म देता है। यदि सूर्य चन्द्र तारा न रहें और मनुष्य अन्धेरी कोठरी में बन्द हो तो वह समय नहीं जान सकता। समय का यह जो क्रम हम भूतकाल, वर्त्तमानकाल और भविष्यत्काल के रूप में जानते हैं, इस पृथ्वी पर सूर्य से हमारे सम्बन्ध को प्रगट करता है। हम पृथ्वी पर रह कर सूर्य के एक चक्कर को एक वर्ष कहते हैं, परन्तु जो ग्रह सूर्य का चक्कर पूरे १८ वर्ष में लगता है, उसका एक वर्ष भी हमारे १८ वर्ष का होता है। हमारी ६ ऋतु है। १८ वर्ष में चक्कर पूरा करने वाले ग्रह को कौन जाने कितनी ऋतु होती हैं। हम जो कुछ सोचते हैं, वह उसीको सोचते हैं जो हमारे 'परन' में आता है। अतः हमारा ज्ञान सीमित है। यह जगत् बहुत बड़ा है। इसका आरम्भ कैसे हुआ यह अभी पता नहीं है, पर शायद मनुष्य इसे जान ले। परन्तु रहस्य बहुत बड़ा है। कैसे है ? का उत्तर देने पर भी हम क्यों है ? का उत्तर नही दे सकते। इस बात का समझना जरूरी होगा।

यद्यपि हम पृथ्वी के बाहर के बारे में नही जानते कि न जाने कितनी सृष्टियाँ किन किन ग्रहों, तारों पर है, फिर भी यह पूरी तरह से नहीं कह सकते कि केवल पृथ्वी पर ही प्राणी है।

सब का मूल है भौतिक और उसी का रूप है शक्ति। समस्त चराचर जगत् में एक ही वस्तु है उसी के अणु परमाणु जब अनेक संगठन करते हैं तब लोक में तरह तरह के प्राणी दिखाई देते हैं। पृथ्वी पर ही उस के रूपों के वैविध्य की कमी नहीं है। निखिल चराचर में मूल है भौतिक और वही सब में है। वह ऊर्जा युक्त भौतिक (matter with energy) कहाँ से आया ? क्यों आया ? यह कोई नही बता पाता। मार्क्सवादी कहते हैं कि इसे मत पूछो, इस सवाल को पूछने से शोषको का बल बढ़ता है, क्योंकि फिर अटकल लगाई जाती है और वर्गभेद को सनातन बना दिया जाता है। अतः इस भौतिक का विश्लेषण करो कि यह है क्या ? 'क्या' की जानकारी से ही समस्या हल होगी, क्योकि जो 'है' सो 'है' बस यही सत्य है। और इसीलिये 'है' को जान लेना काफी है।

परन्तु मैं इससे सहमत नही। यदि हम अभी नही जानते तो यह क्यों

कह दें कि इससे आगे कुछ हो ही नही सकता। यह कठमुल्लापन होगा। फिर भी हम उस पर अटकल नही लड़ायेंगे। यही कहेंगे कि रहस्य अज्ञात है। 'मनुष्य निरन्तर पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ कर सत्य को जान लेगा', यह मनुष्य का सत्य है, सीमित सत्य है।

पृथ्वी पर जीवन बहुत बाद में प्रारम्भ हुआ है। पहले वह जंगम नहीं था। बहुत बाद में वह जंगम बना। तब इस में चेतना बढ़ी। यह चेतना भौतिक का ही गुणात्मक परिवर्तन थी। जंगम का विकास होते होते बहुत दिनो बाद इस पृथ्वी पर मनुष्य आया। मनुष्य के मस्तिष्क का अधिक विकास हुआ। उसके मस्तिष्क में एक लघु मानवी संसार बनता है, जिसमें विराट संसार प्रतिबिंबित होता है। यह भी चेतन का ही गुणात्मक परि-वर्तन है।

मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क, दोनों भौतिक के गुणात्मक परिवर्तन हैं। आदमी उसकी दुरुहता को समझे या न समझे, वह परिवर्तन इसकी अपेक्षा नही रखता। वह तो होता रहता है। आदमी का बच्चा अगर खो जाये और भेड़िया उसे पाल ले और बाद में फिर आदमियों में उसे ले आया जाये, तथा उसे आदमियों की बोली और कार्य सिखाये जायें, वह सीख लेता है। इसका अर्थ है कि गुणात्मक परिवर्तन हो चुकता है, पर्यावरण (Environ ment) के अभाव में उसको जाना नही जाता।

मनुष्य के विकास के साथ चेतन का विकास बढ़ा है। संभवतः यह चेतन तभी प्रारंभ हुआ जब जंगम जीवन प्रारंभ हुआ।

मनुष्य के मरने पर यह चेतन मरता नही, बाहर के भौतिक जगत् मे रूप बदल कर कुछ समय जीवित रहता है। इसे आत्मा कह सकते हैं। परंतु यह 'आत्मा' भौतिक का ही गुणात्मक परिवर्तन है। यह किसी पूर्ण (absolute) की तरह भौतिक से पुराना नही है, जिसने भौतिक के रूप में अपने को प्रगट कर रखा है, ऐसा होता तो यह क्रम विकास में इतने दिन बाद न आता। यह भी सोचना गलत है कि 'ह्रास की ओर जाती सृष्टि' मनुष्य की चेतना के जन्म ले लेने के कारण किसी 'महान् पूर्णता' की ओर अग्रसर हो रही है। यह 'आत्मा' परिवर्तनशील भौतिक का गुणात्मक परिवर्तन है अतः बदलता रहता है और संभवतः फिर रूप बदल जाता है। हो सकता है यह आत्मा यानी शक्ति का चेतन स्वरूप गर्भस्थ बालक, या बड़े बालक से अपना तादात्म्य कभी-कभी करता है, हो सकता है कुछ समय बाद यह रूप

बदल जाता है। यह 'आत्मा' क्या है ? यह आत्मा है चेतन का वह रूप जो मनुष्य देह में 'अहं' के रूप में विकसित होता है। यह वही सोचता है जो अपने वातावरण में सोच सकता है, मनुष्य शरीर से अलग होने पर यह सुख दुख, पाप पुण्य के वही संस्कार जानता है। जो मनुष्य की देह में प्राप्त करता है। अहं के उस संस्कार-स्मरण से छूटने पर यह भौतिक का परिवर्तन-शील गुणात्मक परिवर्तन संभवतः फिर किसी नये परिवर्तन को प्राप्त होता है। यह 'चेतन' सर्व समर्थ नहीं होता, न सर्वज्ञ। सृष्टि का रहस्य वह भी नहीं जान सकता, क्योंकि वह भौतिक का स्वामी नहीं, भौतिक का एक रूपमात्र है, माटी का ही एक और भेद है। चेतन का रूप विचार का रूप है और वह जब कभी मनुष्य के संपर्क में आता है, तब विचार के माध्यम से संपर्क स्थापित करता है, विचार के लिये भाषा की आवश्यकता नहीं है, वह काम चित्र-कल्पनाओं (Images) से हो सकता है।

मनुष्य को इस नये क्षेत्र की भी जानकारी प्राप्त करनी है। यह 'चेतन' की खोज होगी, 'चेतन' पर काबू करके, या उसे जानने की कोशिश करके। उसे योग विज्ञान से जाना जा सकता है। परंतु योग विज्ञान अपने मध्यकालीन विचारों और धारणाओं से ग्रस्त है। अतः योग को पहले शुद्ध करना आवश्यक है, और यह मनुष्य के लिये असंभव नहीं है।

इसीलिये सृष्टि का रहस्य बहुत बड़ा है। यदि एक के बाद एक करके प्रकृति की वस्तुओं के रूप को जान लिया जाये, तब भी आवश्यक नहीं है, कि उस रहस्य को मनुष्य जान ही लेगा, क्योंकि यह अभी ज्ञात नहीं है कि प्रकृति के रूपों के अज्ञान में रहस्य है या रहस्य रूपों के जानने के बाद भी बचा रह जायेगा। मनुष्यों में धीरे-धीरे विश्वास पलता रहा, चलता रहा, बदलता रहा—पर ऐसे बदला कि पता न चला, परन्तु मनुष्य सृष्टि का केन्द्र बना रहा, और हम ऐसे समय में जन्मे हैं जब हम सृष्टि का केन्द्र नहीं रहे ! कितना भारी परिवर्तन है। पर हमारी लघुता उनकी महानता से बड़ी है। हमारा अपने को नगण्य गिनना, उनकी उस वर्ण और जाति की गौरवानुभूति से बड़ा है। देवता हमारे पास नहीं आते, परन्तु हमें सृष्टि बड़ी लगती है। हम जितने छोटे हुए हैं, उतने ही हमारे आयाम बढ़ गये हैं। क्रमशः उनकी दुनियाँ बढ़ती गई, परंतु विश्वास डुगल-डुगल कर भी छोटे हुए न हुए, आस्था न घटी। और हमारे विश्वास हिले तो छोटे हुए, परन्तु उनका विस्तार व्यापक हुआ, हमारी आस्था घटी, तो चेतना ने प्रसार किया। पूर्वजों ने

सर्जक, पालक, संहारक को देखा, देखा था न जाने कितने महान स्वप्नों को, किन्तु हमने उन सबको तिरोहित करके नग्न प्रकृति को देखा और महानतम सौंदर्य का अनुभव किया जिसका वर्णन नहीं कर सकते। सत्य जितना व्यापक होगा, ममत्व की वैयक्तिक लघुता समाप्त होकर एक सर्वभूतहितरत जीवन का संचार होगा।

सृष्टि हमारे पूर्वाग्रहों के प्रति निरपेक्ष है। रामानुजाचार्य ने दार्शनिक शंकराचार्य की बात को काटा था। शंकर ने लोक को माया कहा था, उसे जड़ की संज्ञा दी थी। परन्तु शँकर की बात को रामानुज ने काटा था। कहा था—यह सब ब्रह्म के दृष्टिकोण से भले ही ठीक हो, परन्तु यह माया हमारे लिये जड़ नहीं है। हमारे लिये तो यह सत्य है। इसे माया कह कर नीरस मत बनाओ, इसे लीला कहो, जीवन को सुख मिलेगा—सहिष्णुता बढ़ेगी। आज हम स्पुत्निक के युग में प्रकृकि पर मानव-विजय और सृष्टि की महानता का जो रोमांच अनुभव करते हैं, विगत युगों के मानव को अपनी और सृष्टि के प्रति कम रोमांच था? नहीं। युगांतर से मनुष्य की यह जिज्ञासा, कौतूहल और रोमांच की अनुभूति एक सी रही है। आदिम मनुष्य ने स्वयं आग जला कर वही अदभुत रोमांच अनुभव किया होगा जो हम आज स्पुत्निक उड़ा कर कर रहे हैं। प्रत्येक युग का मनुष्य इसी प्रकार करता रहा है। और आगे के मनुष्य के लिये हमारा यह कौतूहल भी कोई महत्त्व नहीं रखेगा। कौतूहल तो उसका होता है जो समझ में नहीं आता। जिसे मनुष्य समझ लेता है, उसे ही ठीक समझता है। जब जब उसे यह पता चलता है कि उसके विश्वास से सत्य कहीं बड़ा है और उस महान सत्य के अनुरूप बनने के लिये उसके विंश्वास को भी बड़ा होना पड़ेगा तो उसे सदैव कष्ट का अनुभव होता है। पर यह सब मानव सत्य की कथा है और मानव इस छोटी सी पृथ्वी का प्राणी है। हमारी मर्यादा केवल हमारे लिये लाभदायक है। यह सारी सृष्टि भले ही मानव के लिये न हो परन्तु अपने लिये तो हमें अपना ही समाज देखना होगा; क्योंकि अन्ततोगत्वा हमारा ज्ञान विज्ञान, हमारी कला, सौन्दर्य भावना और साहित्य यह सब हम मानवों के लिये ही है। परन्तु प्राचीन मानव परमात्मा को अपने रूप में देखता था, उससे डरता भी था, स्नेह भी करता था, और यह भी समझता था कि परमात्मा को उस में विशेष दिलचस्पी है।

विज्ञान ने यह स्वप्न तोड़ दिया, किन्तु नया विकास कह रहा है—वह जो

विराट तेरे मन में बिंबित है वह तेरे मस्तिष्क के बाद पीठ पर उतर आया है। ओ अदभुत मानव। तू जो लघु है, तूने कितने विराट को देखा है। तू उससे डरता है, उसकी महिमा देख कर ? देख विकास ने तुझे स्नेह दिया है। मत समझ कि उसकी तुझ में दिलचस्पी नहीं है। उसने तुझे कितना संश्लिष्ट बनाया है। तू पृथ्वी की तो सर्वश्रेष्ठ कृति है ही। सत्य को जानने का माध्यम विवेक है और बुद्धि जितनी बढ़ती है उतना ही हृदय का तादात्मय बढ़ता है।

दर्शन में मनुष्य का सारा सामाजिक चिंतन समाया हुआ है, प्राचीन काल के मनुष्य ने धर्म और दर्शन को इसीलिये अलग अलग कहा था। धर्म का अर्थ था जीवन बिताने का तरीका, जिसमें नैतिकता, दर्शन और मनुष्य के समस्त ज्ञान का सार व्यावहारिक रूप से उतर आया था। दर्शन का अर्थ था—सत्य का दर्शन, असलियत को पहचानना। यह भेद भारत में स्पष्ट रहा जो यूरोप में बाद में खुला। किन्तु बहुत काल पहले भारत में दर्शन को केवल विचारकों और विद्वानों के विवाद के रूप का विषय ही नहीं माना गया।

विज्ञान के विकास ने मनुष्य के सामने नया रूप खोला। यों तो मनुष्य का विज्ञान तब ही से प्रारंभ हो गया था जब उसने आग खोज कर उसे जलाना सीख लिया था, किंतु गत शताब्दी में इस विज्ञान ने सहसा इतनी अधिक उन्नति कर ली कि उसने जीवन के दर्शन पर ही प्रभाव डाला। इतिहास धीरे धीरे, धीरे धीरे बढ़ता रहा। अचानक कुछ ऐसे अन्वेषण हुए कि होते ही चले गये। जैसे किसी बाँध में छोटे से सूराख से पानी तो बहुत दिन से रिस रहा था, लेकिन एक दिन भीगते भीगते जो वहाँ की मिट्टी कच्ची क्या पड़ गई कि बाँध ही टूट गया और पानी अर्राटे के साथ फूट निकला। मनुष्य पहले सोना बनाने का यत्न करता था, पारस पत्थर ढूंढता था, पर अब उसने अणु के बाद परमाणु भी तोड़ लिया और चन्द्रमा को देवता समझने वाला मनुष्य धीरे धीरे महाशून्य की यात्रा के लिये उड़ने को कटिबद्ध हो गया और सृष्टि की आयु में मनुष्य का यह ज्ञान बच्चा है ? ज्यादा से ज्यादा दस हजार साल का, भले ही उसके पीछे भी चला जाये तो एक डेढ़ लाख के अनुभव, प्रवृत्तिमूलक चेतना, भी उसमें मिल सकते हैं। सलीवन ने इस विकास को अपने मनन का विषय बनाया है।

आज से दो ढाई हजार साल पहले का मनुष्य ज्योतिष के बारे में जानता था और साथ ही अपने को बहुत प्राचीन भी समझता था। सच तो यह है कि

विश्व-इतिहास के बारे में जो कुछ पता चला है उसके हिसाब से मनुष्य के जीवन में कई बार मोड़ आये हैं।

जब दास-प्रथा प्रारम्भ हुई थी तब पहला मोड़ आया, दूसरा मोड़ आया, मिस्र में जब पिरैमिड बनीं, ईसा से करीब चार हजार वर्ष पूर्व। तीसरा मोड़ आया—जब ईसा से करीब २ या १½ हजार वर्ष पहले महाभारत युद्ध समाप्त हुआ और मनुष्य छोटे दायरों से बढ़ कर आगे की ओर चला। उसके बाद आया मोड़ २५०० से २००० वर्ष पूर्व—बुद्ध-महावीर से ईसा तक। मनुष्य ने मानववाद को प्रकारांतर से स्थापित किया। इसके बाद आया मोड़ १००० ई० में जब यूरोप में नई चेतना पहुँची और तब आया नया मोड़ विगत शताब्दी में और इस नये मोड़ ने मनुष्य को यह अभिमान दे दिया कि आज तक मनुष्य बर्बर था और सभ्यता अब प्रारम्भ हुई थी। इस बौद्धिक दासता के नवयुग का प्रारम्भकर्त्ता जर्मनी का यहूदी दार्शनिक कार्लमार्क्स था। यह प्रशंसनीय विषय है कि उसने काफी सीमा तक आर्थिक और सामाजिक यथार्थ को प्रकट किया, किन्तु यहूदी, ईसाई और जर्मन चिंतन में एक संप्रदायपरक आवेश रहा है, सो उसमें भी वह उतर आया। अतः उसकी इस संकीर्णता का उसके अनुयायियों में प्रचलन अधिक हुआ। किन्तु विज्ञान उस समय बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में था। विज्ञान का प्रारम्भ मनुष्य की आवश्यकताओं से जन्मा और वही अब तक होता रहा है।

प्राचीन लोगों ने अपने अनुभवों के आधार पर सृष्टि की व्याख्या की थी, जैसे आज हम लोग अपने अनुभवों के आधार पर करते हैं।

संसार कैसे बना, क्यों बना, इस पर पहला चिंतन हमें वेद में मिलता है। यह भारत में जब एक पुरानी बात हो गई, तब ईसा से ५८० वर्ष पूर्व के लगभग पिलैटस के थेलीज़ में हमें यह जिज्ञासा मिलती है। जिज्ञासा के विकास ने ज्ञान दिया है। अनुभव ने विज्ञान को उससे मिलकर बनाया है, और ज्यों-ज्यों मनुष्य का विज्ञान बढ़ा है, उसका सृष्टि के प्रति दृष्टिकोण बड़ा होता गया है।

यह सृष्टि बढ़ती जा रही है। ऐडिंग्टन के कथनानुसार जैसे किसी गुब्बारे के ऊपर छोटे-छोटे दाग हों, वैसे शून्य पर तारे हैं और यह गुब्बारा फूलता जा रहा है और यह तारे एक दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। वैज्ञानिक अभी तक इस सत्य को समझ नहीं सके हैं और वर्तमान दिक्काल की सीमा में रहते हुए अभी कोई ऐसा साधन भी दिखाई नहीं देता, जिससे यह आशा की जाये कि

इस रहस्य का उद्‌घाटन हो सकेगा। यह भी एक मत है कि सृष्टि पहले सम थी, अब असम होती जा रही है।

शायद कई करोड़ वर्ष पूर्व यह सृष्टि का भौतिक पदार्थ आज की तुलना में अधिक सम अवस्था में था। फिर वह बढ़ने लगा और अब संभवतः उसका व्यास अपनी मूल अवस्था से दस गुना अधिक बढ़ चुका है। तारे तेजी से दूर हटते जा रहे हैं।

वे किधर हटते जा रहे हैं और क्यों ? यदि हमारे साधन अधिक होते तो सम्भवतः इसका ज्ञान हो पाता। परन्तु इस दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होता है कि भविष्य में यह असमता बढ़ती जायेगी, तो क्या यह फैलाव अनन्त काल तक होता चला जायेगा ? फिर प्रश्न उठता है किसलिये ?

परन्तु यह मनुष्य का प्रश्न है। विस्तार या संकोच का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य इसके रहस्य को जान लेना चाहता है। मनुष्य एक अंशमात्र है। वह इस सबकी व्यापकता को कैसे जान सकेगा, यह वैज्ञानिकों के सामने एक समस्या है।

न्यबूलों में इतना भौतिक पदार्थ है कि शायद उनसे करोड़ों तारे बन सकते हैं। हमारे सूर्य जैसे और सूर्य हमारी पृथ्वी से दस लाख गुना बड़ा है ऐसे २० लाख न्यबूला तो दिखाई देते हैं, पर और भी होंगे।

कितने होंगे ? यह हम नहीं बता सकते। किन्तु अनन्त दूरियों तक वे फैले हुए हैं। ऐसे जिन्हें मानव ने कभी छुआ नहीं, जो इस बात से बिल्कुल निरपेक्ष हैं कि मानव उन्हें जानता भी है या नहीं ?

यह सब क्या किसी योजना का परिणाम है, या यों ही चल रहा है ? हमारी अक्ल इसे पकड़ सकती है ?

क्या जीवन आकस्मिक निरर्थक है ? यदि अन्य ग्रहों पर भी जीवन है तो क्या वहाँ हमारे स्तर की ही बुद्धिमत्ता होगी ? चेतना का रूप क्या होगा ?

चेतना के कितने रूप हैं ? हमारी विवशता तो यह है कि हम जब जीवन की बात करते हैं तो हमारे दिमाग में वही बात आती है, जो हम जानते हैं। उससे अधिक हम सोच भी नहीं सकते। शायद मंगल में जीवन हो और यह जीवन हमारी कल्पना में वही है जिसे हम जानते हैं। हम इस जीवन से मिलते-जुलते रूप की ही कल्पना कर पाते हैं।

यदि, जैसा कि लगता है, हमारा ग्रह नया है, तो क्या अन्यत्र बुद्धिमत्ता

कहीं अधिक होगी। अन्य ग्रहों में जो प्राणी होंगे, वे पुराने पड़ चुके होंगे। उनमें हमारी तुलना में विचार करने की कहीं अधिक शक्ति होगी। तो क्या उनमें भी संस्कृति का महत्व होगा ? हो सकता है सौर चक्र में अन्यत्र कुछ भिन्न जीवन हो, किन्तु और भी तो सारे हैं, जैसे हमारा सूर्य है। कौन जाने उन सूर्यों के अपने-अपने परिवार न होंगे और उनमें भी धरती जैसे कई होंगे, जिन पर प्राणी-जगत होंगे।

इस विराट आकाश यानी शून्य में फिरने वाले इन असंख्य तारों से ज्योति निकलती है, भरती नहीं। ज्योति का विकिरण होता है। किन्तु इस प्रकार ऊर्जा (Energy) शून्य (space) में बिखरती चली जा रही है। धीरे-धीरे शक्ति का क्षय होना प्रगट करता है कि एक दिन वह समाप्त भी हो जायेगी।

तो क्या सब बुझ जायेंगे यह तारे ? फिर क्या होगा ? सब तारे मर जायेंगे। और वह मृत तारे फिर भी दिक्काल में बने रहेंगे ? क्यों ? किसलिये ? कब तक ! इसका अर्थ है कि हमारी सृष्टि संगठन से असंगठन की ओर जा रही है। विशृंखलित होना प्रगट करता है कि पहले यह बहुत सुव्यवस्थित थी। तो क्या हम सृष्टि की संध्या में हुए हैं ? यदि असम-अव्यवस्थित कभी अधिक सम-व्यवस्थित थी, तो यह प्रश्न अपने आप पैदा होता है ! तो क्या कभी इसका प्रारंभ हुआ था ?

ऐडिंग्टन और जीन्स के मतानुसार सृष्टि का अंत्य वास्तव में मन से संबंधित है—वह आध्यात्मिक है, मानसिक है—उसका भौतिक तो उसका वाह्य रूप है। परन्तु प्रश्न वही उठता है कि जिसे हमने अध्यात्म समझा है, वह वास्तव में क्या है ? मन संबंधी। फिर यह मन क्या विकास-क्रम में नहीं आया। कुछ के मत से यह सदैव रहता है, परन्तु ऊर्जा के रूप में सर्वत्र नहीं है; स्थूल रूप में भौतिक तत्त्व अधिक व्यापक है। यह समस्त ज्ञान मानव मन की अनुभूति है। मानव दिक्काल में सीमित है। अतः मानव का ज्ञान सीमित है। किन्तु मानव के मन में—चेतना में-दिक्काल को पार कर जाने की भी शक्ति है। मानव उसके द्वारा त्रिकाल जान सकता है। मनुष्य सापेक्ष है। मन सापेक्ष नहीं है। चार आयामों में मानव सीमित है। मन सीमित नहीं है। मानव स्थूल है। मन-स्थूल का विद्युत प्रवाह चेतन है। मन—स्थूल का ही एक गुणात्मक परिवर्तन है।

विशेष अवस्था में यह मन दिक्काल की बाधा को पार कर सकता है। पूर्ण सत्य मानव के लिये अगम्य है। किन्तु मन गति के परे भी देख सकता

है। मन दिक्काल से परे सम्पूर्ण को देख सकता है। मानव का मन उस जगह तक उठ सकता है, जहाँ परिवर्तन श्रौर समय की लघुता का व्यवधान नहीं है। यानी मन-यानी चेतन के रूप में मानव में वह सामर्थ्य है कि वह श्रंश होकर भी प्रकृति के संपूर्ण से श्रपना तादात्म्य स्थापित कर सकता है।

स्वेच्छा श्रौर नियतवाद दोनों ही हमारे जगत में हैं। सबकुछ हो चुका है, हो रहा है श्रौर होगा। यह भेद—यह कार्य कारण-शृंखला का क्रम हम तब देख पाते हैं जब हम उसमें से गुजरते हैं। वस्तुतः यह संपूर्ण है। हमें भेद लगता है, क्योंकि हम इसके भीतर हैं। गणित भी यही कहता है। परंपरा में योगी यही कहते थे। यह जो चार श्रायाम हैं, जिनके जरिये से मनुष्य सृष्टि को देख रहा है, वे मनुष्य के बन्धन हैं। सृष्टि श्रपनी संपूर्णता में न जाने कितना बड़ा रहस्य है।

एक मतानुसार सबकुछ पहले से नियत है। यह सारा विराट् कार्य-व्यापार श्रपने एक नियमन से चल रहा है। वह नियम किसने बनाया, कैसे लागू किया, या कहाँ से श्राया श्रौर क्यों चला—यह श्रज्ञात है। वैज्ञानिकों ने देखा है कि वे एलैक्ट्रोन-समूह की गतिविधि का रूप बता सकते हैं। किन्तु वे एक एलैक्ट्रोन की गति को नहीं बता सकते कि यह क्या करेगा या कैसे चलेगा। यही हमारा हाल है। हम जो इस प्रकार स्वेच्छा के रूप प्रगट कर रहे हैं, लड़ते हैं, सभ्यताएँ निर्मित करते हैं, यह सब इस विराट् सृष्टि के नियमित कार्य रूप में इतनी ही स्वेच्छा है, जितनी कि सापेक्ष रूप से नियम-बद्ध एलैक्ट्रोन की श्रपने एकाकी रूप में। हमारा यह घोर कोलाहल श्रौर हलचल वस्तुतः इस विराट् कार्य व्यापार में इतनी छोटी हलचल है कि शायद इसको स्वेच्छा कहना भी हमारी सीमित बुद्धि का ही श्रहंकार है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी जो मार्क्स को पैगम्बर मानते हैं—उसके लिए 'दृष्टा' शब्द का प्रयोग तो निस्संकोच होकर किया ही जाने लगा है—श्रवश्य कहेंगे कि मैं मनुष्य के बारे में ऐसे बातें कर रहा हूँ, जैसे कीट पतंगों के बारे में की जाती हैं। श्रौर मैं मनुष्य के गौरवमय पक्ष को न देखकर, उसके श्रभाव को उठा रहा हूँ, श्रौर इस प्रकार मैं वर्ग-हीन समाज के निर्माण में मजदूर वर्ग का श्रहित कर रहा हूँ। इसका उत्तर है—जहाँ विज्ञान का विकास मनुष्य के लिये बुद्धि की श्रपरिमित गति को रोकता है, वहाँ बौद्धिक दासता है, बुद्धि का विकास नहीं।

जन-समाज श्राज तक पिसता रहा है श्रौर बुद्धिमान सदैव उनसे लाभ

उठाते रहे हैं। बुद्धिमान का अहंकार अधिक बड़ा होता है। कार्ल मार्क्स ने इस अहंकार को नहीं देखा था। उसने सोचा था कि संपत्ति के कारण अहं है, वह यह नहीं समझा कि अहं का एक रूप ही संपत्ति है। बुद्धि और समाज-व्यवस्था दोनों का आज तक संतुलन सदैव चला हो सो बात नहीं। मानव-समाज में विभिन्न स्तरों पर बुद्धि मिलती है। संपत्ति जब नहीं थी तब भी अहंकार था, पर कम था। वह धीरे-धीरे विकसित हुआ है। अहं का विकास –जिजीविषा और रिरिंसा का विकास है। उसे निरंतर विकसित और व्यापक बनाने में ही लोक का कल्याण है। अधिकार की तृष्णा उसी का रूप है और वह समाजवादी व्यवस्था में फिर उभर आई है।

मेधावी का जन्म समाज की व्यवस्था पर निर्भर नहीं करता। वह भले ही परिस्थितियों से प्रभावित हो, किन्तु वस्तुतः वह व्यक्तिपरक विकास होता है।

विज्ञान में तो और भी आकस्मिक संयोग होने का अवसर होता है।

परमाणु बम आकस्मिक अन्वेषण था और हुआ पूँजीवादी देश में। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि साम्यवादी देश की समाज-व्यवस्था में ही वह हो सका हो, यह कोई निश्चित बात नहीं हो सकती।

समाज में सबको सुविधा अवश्य मिलनी चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति अपना विकास अधिकाधिक कर सके, किन्तु इसका यह अर्थ कभी भी लगाना ठीक न होगा कि सुविधा मिलने से सब ही महामेधावी हो उठेंगे। सहस्रबाहु उठाकर मनुष्य सत्य खोज रहा है और निरंतर खोजता चला जा रहा है। पीढ़ियों से उसने ज्ञान एकत्र किया है और जिस प्रकार प्रकृति ने उसे स्मरण शक्ति दी है, उसी के अनुरूप उसने उस ज्ञान को जीवित रखा है।

विदेशों में यद्यपि राजनीतिज्ञों का ही शासन चलता है, फिर भी वहाँ मेधावियों का सम्मान तो है; हमारे देश में अभी वैसा नहीं है। किसी समय था अवश्य। परन्तु अब वैसा नहीं है। अतः मनुष्य को दासता—बौद्धिक दासता से, दूर करने के लिये आवश्यक है कि प्रकृति के विराटतर रूप से वह परिचित हो। संस्कारों में जो पुराने बंधन नये रूपों को देखने से रोकते हैं, वे हमें काटने ही होंगे।

अहं का विकास बुरा नहीं है। वह तो क्रम में हुआ है। मनुष्य की जीवित रहने की लालसा अवश्य ही अन्य प्राणियों की तुलना में बलवती है, तभी तो

वह इतने सशक्त रूप में सब प्राणियों पर छाया हुश्रा है। उस श्रहं का व्यक्ति रूप दूसरों के लिए यदि घातक है, तो उसे व्यापक बनाना मनुष्य के लिये बहुत श्रावश्यक है, क्योंकि इसमें वह श्रपनी योनि को दीर्घ काल तक सुरक्षित कर सकता है।

दर्शन श्रौर नैतिकता ने कहा है कि सारे सत्यों का माध्यम श्रसल में मनुष्य है।

तभी चंडीदास ने कहा है कि सबसे ऊपर सत्य मानव है, उससे ऊपर कोई नहीं।

इसका कारण है हमारी सीमित बुद्धि, किन्तु यह सीमा छोड़ दी जाये, तो किया क्या जाये ? इसीलिये पुराने समय में मनीषियों ने कहा था कि गार्हस्थ्य श्राश्रम में श्रवश्य रहना चाहिये।

सच तो यह है कि मनुष्य के पास वैसे कोई काम नहीं है। उसके सब काम इस पृथ्वी की सतह पर जीवित बने रहने के संघर्ष हैं।

विज्ञान का सारा सत्य हमारा सीमित सत्य है, श्रतः वह पूर्ण नहीं माना जा सकता।

६

सामाजिक अंतर्भुक्ति
(Social assimilation)

जब एक से अधिक समाज मिलते हैं तब उनका परस्पर आदान-प्रदान प्रारंभ हो जाता है। आज भारत और पश्चिम का संपर्क बढ़ता जा रहा है और भारत पर नये-नये प्रभाव पड़ रहे हैं। भारत की भी अपनी एक वैयक्तिकता है। उसके कारण हमारे यहाँ अनेक प्रकार के द्वन्द्व समाज में खड़े हो रहे हैं।

पश्चिम ने सैक्स (यौन-जीवन) के सम्बन्ध में नयी नैतिक मर्यादाओं का प्रचलन किया है। मानवशास्त्रियों ने पुराने विचारों को प्रकंपित कर दिया है। इसलिये आवश्यक है कि हम भारतीय दृष्टिकोण की शक्ति और निर्बलता का परीक्षण करें, ताकि यह गतिरोध दूर हो सके। भारतीय सम्प्रदायों मे कुछ ऐसे है जिन्होने यौन-सम्बन्धो की दो अतियो को पकड़ा है। कुछ सम्प्रदाय तो ऐसे है जिन्होने पूर्ण ब्रह्मचर्य पर बल देकर पूरी तरह स्त्री का तिरस्कार किया है। उन्होने स्त्री को माया और सभी दुःखो का कारण माना है, इसलिये काम-लिप्ति से चित्त को बचा कर उसे निर्विकार रूप से शून्य, शिव या ब्रह्म में लीन करने के लिये स्त्री-रहित कठोर तपपूर्ण जीवन को ही श्रेष्ठ माना है। इसके विपरीत ही दूसरी धारा है जिसमें स्त्री को यहाँ तक स्वीकार किया है कि उसकी गुह्येन्द्रिय को पूज्य मान कर प्रातःकाल उसका दर्शन करना श्रेष्ठ बताया गया। तन्त्रसाधना आदि में तान्त्रिको, कौलमार्गियो आदि ने सम्भोग में भी अति कर दी है। स्त्री को साधना के लिये आवश्यक कह कर उन्होने

स्वीकार कर लिया है और उसको योगिनी, शक्ति, प्रज्ञा आदि के रूप दे दिये हैं। इन दोनों विपरीत धाराओं के बीच वैष्णव चिन्तन है जिसने अतिकानिष्क्रमण करके ग्रहस्थ धर्म की श्रेष्ठता को ही प्रतिपादित किया है। यदि साधना-क्षेत्र में भी वैष्णवचिन्तन उतरा है तो उसने भक्ति को ही श्रेष्ठ साधना कह कर स्वीकार किया है। योग की परम्परा में निष्काम कर्मयोग को स्वीकार किया है। मैं इन्हीं तीन धाराओं के बीच विषय का अध्ययन प्रारम्भ करूँगा।

बौद्ध धर्म में स्त्री को कामतृष्णा के साथ जोड़ कर उसे दुःख का हेतु माना गया है। यही कारण है कि गौतम बुद्ध ने अपनी पत्नी यशोधरा का परित्याग किया और बुद्धत्व प्राप्त कर कर लेने के पश्चात् भी उसको पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया। बौद्ध सांसारिक माया जाल को तोड़कर निर्वाण प्राप्त करने की कल्पना करता है। सांसारिक कार्य व्यापार को यह दुःख का हेतु कहता है, तभी भिक्षु जीवन ही उसके लिये आदर्श बन कर खड़ा हो जाता है, जिसके द्वारा वह निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

गौतमबुद्ध ने चार आर्ष सत्यों का प्रतिपादन किया है—(१) दुःख सत्य है (२) दुःख का हेतु सत्य है (३) दुःख का निरोध सत्य है (४) दुःख निरोध-गामी मार्ग सत्य है।

इनमें दुःख का हेतु क्या है ?

तृष्णा—काम-भोग की तृष्णा, भव की तृष्णा, विभव की तृष्णा। इन्द्रियों के जितने प्रिय विषय या काम हैं, उन विषयों के साथ संपर्क, उनका ध्यान तृष्णा को पैदा करता है।[1]

मज्झिम निकाय में इसी सम्बन्ध में लिखा है—

काम के लिये ही राजा राजाओं से लड़ते हैं, क्षत्रिय क्षत्रियों से, ब्राह्मण ब्राह्मणों से, गृहपति अर्थात वैश्य गृहपति से, माता पुत्र से, पुत्र माता से, पिता पुत्र से, पुत्र पिता से, भाई भाई से, बहिन भाई से, भाई बहिन से, मित्र मित्र से लड़ते हैं। वे आपस में कलह-विग्रह विवाद करते और एक दूसरे पर हाथ से दण्ड से और शस्त्र से आक्रमण करते हैं। वे इससे मर भी जाते हैं और नहीं भी मरते हैं तो मरण समान दुःख को प्राप्त होते हैं।

अब इसके पश्चात प्रश्न आता है कि किस तरह दुःख को मिटा कर

---

१ बौद्धदर्शन : राहुल सांकृत्यायन

निर्वाण प्राप्त किया जाय। उसके लिये महात्मा बुद्ध ने मार्ग निश्चित किया है। उसी तृष्णा के परित्याग से ही दुःख दूर हो सकता है। प्रिय से प्रिय विषय के प्रति भी जब तृष्णा नहीं रहती तभी दुःख और तृष्णा का निरोध होता है।

आगे चलकर जब बुद्ध ने दुःख विनाशक मार्ग का प्रतिपादन किया है तो इन्होंने पहले सम्यग दृष्टि को रखा है। सम्यग दृष्टि क्या है?

कायिक, वाचिक, मानसिक, भले-बुरे कार्यों के ठीक ठीक ज्ञान को ही सम्यग दृष्टि कहते हैं। भले-बुरे कर्मों को इस प्रकार गिनाया गया है[1]

		बुरे कर्म	भले कर्म
कायिक	१	हिंसा	अ—हिंसा
	२	चोरी	अ—चोरी
	३	यौन-व्यभिचार	अ—व्यभिचार
	४	मिथ्या भाषण	अ—मिथ्याभाषण
वाचिक	५	चुगली	न—चुगली
	६	कटु भाषण	अ—कटु भाषण
	७	बकवास	न—बकवास
मानसिक	८	लोभ	अ—लोभ
	९	प्रतिहिंसा	अ—प्रतिहिंसा
	१०	झूठी धारणा	न—झूठी धारणा

यौन-व्यभिचार को बुद्ध ने बुरा कर्म बताया है और इसके साथ ही काम को दुःख का हेतु स्वीकार किया है और काम तृष्णा के परित्याग में ही दुःख का विनाश माना है। काम को ही सारी विषमता की जड़ मान कर उस पर पूर्णतः विजय पा लेना ही दुःख का निरोध है। यही बुद्ध का दार्शनिक पक्ष है। इसमें स्त्री निश्चित रूप से ही बन्धन है। वही तो कामवासना को उद्वेलित करती है। वही तो पुरुष के चारों ओर तृष्णा का जाल फैलाती है। उसी के लिये ही तो भाई भाई परस्पर लड़ते हैं। उसी के लिये तो दो व्यक्तियों के हृदय में ईर्ष्या और विद्वेष पैदा होता है। कंचन और कामिनी ही तो इस

१ **बौद्ध दर्शन : राहुल सांकृत्यायन**

संसार में सारी बुराइयों की जड़ हैं। बुद्ध ने भिक्षु को यही उपदेश दिया है कि वह इनका परित्याग करके चित्त को एकाग्र करे। चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। भिक्षु के लिये यह अत्यावश्यक है तभी बुद्ध ने कहा है :

भिक्षुओ ! यह ब्रह्मचर्य न लाभ सत्कार के लिये, न प्रशंसा के लिये न शील की प्राप्ति के लिये, न समाधि प्राप्ति के लिये, न ज्ञान के लिये है। जो अटूट चित्त की मुक्ति है, उसी के लिये है, यह ब्रह्मचर्य्य है। यही सार है। यही उसका अंत है।[1]

बुद्ध ने ब्रह्मचर्य्य पर अधिक जोर दिया है और इसके साथ इन्द्रियों पर पूर्ण संयम प्राप्त करके चित्त की एकाग्रता को ही प्रत्येक भिक्षु की साधना बताया है। स्वाभाविक है कि इस साधना में स्त्री को कोई स्थान नहीं मिला। यही कारण था कि पहले पहल जब संघ की स्थापना हुई थी तो उसमें स्त्रियों का प्रवेश वर्जित कर दिया गया था। कोई स्त्री भिक्षुणी होकर निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकती थी। बुद्ध ने स्त्री को इस योग्य ही नहीं समझा था। काम-वासना के साथ ही मूल रूप से उसके जीवन को मिलाकर बुद्ध ने स्त्री के प्रति वही हीनत्वपूर्ण दृष्टिकोण रखा जैसा कि कई शास्त्रकारों ने उसके प्रति रखा है। बुद्ध का दृष्टिकोण एक पुरुष का दृष्टिकोण था। वे केवल पुरुषों के लिये ही निर्वाण की व्यवस्था कर पाये थे। स्त्री को तो मायाजाल समझकर उसका तिरस्कार करना ही चित्त की एकाग्रता के लिये आवश्यक समझा, तभी वे पहले यशोधरा को सोती छोड़कर इस अहमन्यता को लेकर घर से रात्रि को निकले थे कि वे सारा मायाजाल तोड़कर विराट सत्य की खोज में जा रहे थे। यही दृष्टिकोण स्त्री के प्रति उस समय भी रहा जबकि वे बुद्धत्व प्राप्त करके लौट आये थे और उन्होंने अहंकार में भरकर कहा था कि मैं सोई हुई अपनी प्रजाओं को जगाने को आया हूँ। मैं लोक में धर्मचक्र प्रवर्त्तन करने के लिये आया हूँ। इतना सबकुछ दावा भर करके भी उन्होंने स्त्री को पुरुष से हीन समझा। संघ स्थापित हो जाने के पश्चात यह प्रजापति गतियों के आग्रह से उन्होंने अलग एक स्त्रियों का संघ बनाने की अनुमति दे दी थी लेकिन इससे भी उसके मूल दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं आया था। गृहस्थ और परिवार के प्रति बुद्ध ने सदा करुणा का दृष्टि

---

१ संयुक्त निकाय

कोण रखा। भिक्षु को वे पारिवारिक व्यक्ति मे श्रेष्ठ मानते थे। पारिवारिक व्यक्ति को वे मायाजाल में बंधा हुआ देखने थे, इसलिए उसके जीवन को हीन समझकर उसके प्रति करुणा का भाव रखते थे। परिवार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सामंजस्य अपने जीवन में स्थापित करने वाली नारी के प्रति भी बुद्ध का वही दृष्टिकोण था जो एक साधारण गृहस्थ के प्रति था। इस दृष्टि से देखने पर हमें यही मालूम होता है कि बुद्ध ने नारी को समझने की चेष्टा नही की। जिस तरह यशोधरा को छोड़कर गये थे उसी तरह नारी के प्रति उदासीनता का दृष्टिकोण उन्होने अपना लिया था। उन्होने परिवार के सत्य को नहीं पहचाना और उसमे नारी की महानता का तो कभी अनुभव ही नही किया। यही कारण है कि बुद्ध का धर्म एकांगी होकर रह गया। भिक्षुओं के साथ भिक्षुणियों का भी संघ बन गया लेकिन मूल-दृष्टिकोण में तो परिवर्तन नही आया। तभी तो बाद में वज्रपात के रूप में इस वैराग्य और ब्रह्मचर्य्य की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने वाले धर्म का घोर पतन प्रारम्भ हो गया। मठों में भी खुला व्यभिचार फैल गया। स्त्री की योनि की पूजा तक होने लगी।

बौद्ध धर्म के बारे में केवल इतना ही कहूँगा। अब मैं इसके परवर्त्ती रूप वज्रयान की भी झाँकी दिखा दूँ। जिस उच्चादर्श को लेकर बुद्ध चले थे और जिस अहंकार के साथ उन्होने कहा था कि मैं धर्मचक्र का प्रवर्तक करने के लिये लोक में आया हूँ, किस तरह उसका पतन हुआ। ब्रह्मचर्य्य की कठोर साधना तन्त्र यन्त्र सिद्धि के रूप में बदल गई। काम के निरोध के स्थान पर काम को सिद्धि के लिये साधन माना गया। स्त्री ने प्रमुख स्थान ले लिया।

हीनयान के पश्चात महायान सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ था। साथ ही बौद्धो में तन्त्र यन्त्र चलने लगे। शून्यवाद का प्रवर्त्तक नागर्जुन ही तान्त्रिक था। असंग ने भी महायान में तन्त्र यन्त्र को घुसाया। निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति को स्वीकृत किया गया और उसके साथ ही खुली रति-क्रीड़ा चल पड़ी। सम्भोग में जो अनुपम आनन्द मिलता था उसी से परातत्त्व के साक्षात्कार से प्राप्त आनन्द की तुलना की जाने लगी। सम्भोग के प्रतीक बन जाने के साथ ही तान्त्रिक मत में स्त्री पूरी तरह घुस आई और फिर भुक्ति और मुक्ति का द्वन्द्व प्रारम्भ हो गया। स्त्री आराध्य बन गई। उसके बारे में यह धारणा फैल गई कि मुक्ति प्राप्त करने के लिये पहले भुक्ति आवश्यक है। जहाँ बुद्ध ब्रह्मचर्य्य और निवृत्ति में ही जीवन की पूर्णता

देखते थे वहाँ सिद्ध स्त्री के बिना पुरुष की पूर्णता में संदेह करने लगे और उसने पुरुषत्व को तभी पूर्ण माना जब उसमें स्त्री की पूर्ण स्वीकृति हो। बाह्य और अन्तर, लौकिक और पारलौकिक के संतुलन का एक नवीन आधार चल पड़ा जिसमें रतिजन्य आनन्द को ही ब्रह्मोदर सहोदर आनन्द माना गया। योग कैवल्य का साधन बन गया और इस तरह सिद्धों ने बुद्ध के समरूप ही एक मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया, जिसमें न तो पूरी तरह विषय-भोग का परित्याग करके ब्रह्मचर्य्य पूर्ण जीवन बिताने को श्रेष्ठ माना गया है और न केवल शारीरिक आनन्द के लिये ही स्त्री के साथ रति-क्रीड़ा को लिया गया। रति क्रीड़ा तो मुक्ति के लिये साधन-मात्र थी। वह तो ब्रह्मानन्द के प्रतीक स्वरूप थी।

इस तरह सिद्ध मत में स्त्री पुरुष की साधना के लिये साधन मात्र बन गई। सिद्ध ने इसी रति-क्रीड़ा के द्वारा उसकी मुक्ति मानी है। बौद्ध भिक्षुओं के संयमित जीवन की प्रतिक्रिया पुरुष की उच्छृँखल वासनाओं की तृप्ति में हुई और आगे चलकर वज्रयान के रूप में तो कामवासना संबंधी योगाचार का काफी प्रचार हुआ। शून्य के स्थान पर वज्र सत्त्व की स्थापना हुई। वही बोध-चित् कहलाया। महायान मत में शून्यता और करुणा को ही बोधचित कहते हैं। बाद में चलकर इसी शून्यता को प्रज्ञा और करुणा को उपाय के रूप में सहजयान मत ने स्वीकार किया। प्रज्ञा स्त्री थी और उपाय पुरुष था। दोनों के सम्मिलन से ही ज्ञान जागृत होता है। इसी प्रज्ञा और उपाय के मिलन से बोधिचित उत्पन्न होता है। इस बोधिचित अर्थात महासुख की प्राप्ति के लिये ही प्रतीक रूप में स्त्री और पुरुष का सम्भोग चला। यह यौगिक क्रिया के रूप में दार्शनिक आधार पर स्वीकृत कर लिया गया।

यही दार्शनिक और योगिक पक्ष जो प्रमुख बनकर सामने आया था, कालान्तर में रति क्रीड़ा के आनन्द के नीचे दब गया और फिर तो खुली छूट मिल गई। स्त्री और पुरुष की उच्छृँखल वासनाएँ नग्न क्रीड़ा करने लगीं। स्त्री की नग्न प्रतिमा अलौकिक आनन्द प्रदान करने लगी और वज्रयानी सिद्ध बिना किसी प्रकार के सामाजिक शिष्टाचार की परवाह किये सीधे शब्दों में ही रति-क्रीड़ा का वर्णन करने लगा। युगनद्ध क्रिया में सिद्ध वर्णन करता है: स्त्री अर्थात मुद्रा को आलिंगन पाश में भर लेने के पश्चात पुरुष उसके अर्थात वज्रवेश अप्रवर्तन में प्रवेश करता है, फिर

उसके दुग्ध लगे हुए ओठों को चूसता है और उसको मधुर शब्द बोलने के लिये उत्तेजित करता है। इस तरह वह सम्भोग का आनन्द लेता है। स्त्री की जंघायें उस समय आनन्द से प्रकम्पित होने लगती हैं, उस समय कामदेव और वज्रसत्व का साक्षात्कार होता है।

यह बाह्याचार इतना अधिक फैल गया कि साधन के स्थान पर इसी को साध्य समझकर वज्रयानी अपने चित्त के असन्तोष को मिटाने लगे। मुक्ति और निर्वाण के लिये जो हाहाकार अब तक चलता आया था, योनि पूजा में वह अन्तर्भुक्त हो गया। सहजयानियों के बीच यह सबकुछ सहज बन गया। सहजयानी सिद्ध तो कीचड़ में रहकर भी कमल बने रहने का दम्भ करता था और इससे भी आगे उसने तो यहाँ तक सहज साधना के रूप में सभी प्रकार की उच्छृंखलता को स्वीकार कर लिया कि पानी में रहकर भी पानी का अनुभव न करे, इस तरह का अन्तर्विरोधी तत्त्व उनके चिन्तन का आधार बना। इसलिये सहजयानी सिद्ध ब्राह्मण विचारक की भाँति रति-क्रीड़ा में किसी प्रकार के दोष की कल्पना ही नहीं करता था। इसी प्रकार वज्रयानी भी स्त्री के साथ रति-क्रीड़ा में लगकर उसकी पूजा करने लगा। किसी कुल की स्त्री हो, साधना के लिए स्वीकृत हो गई। माता, भगिनी आदि के भेद हट गये। अब तो यही पुकार उठने लगी—

स्त्रियं सर्वकुलोत्पन्नां पूजयेद् वज्रधारिणीम।

इसके पश्चात भक्ष्याभक्ष्य खाने वाले अघोरी, कापालिक, कालामुख, कौल मार्गी, भैरवीपूजक आदि कितने लोग इसी देश में उठ खड़े हुए। मैं अन्यत्र अपनी पुस्तकों में लिख चुका हूँ कि कालामुख इत्यादि प्राचीन राक्षस इत्यादि अनार्य जातियों के ही विकसित रूप थे। शैव और शाक्त मत भी अपनी पूरी उश्रृंखलता के साथ बढ़ने लगे। सभी के अन्तर्गत स्त्री को साधना के लिये आवश्यक माना गया। वामाचार अनेक रूप से बढ़ने लगा। चीनक्रम आदि कितने ही तो इस प्रकार के सम्प्रदाय खड़े हो गये। भग-पूजा इनकी पहली साधना था।

कौलसाधकों ने तो सहत्र साधना का एक पूरा चित्र ही खींच डाला जिसमें सभी प्रकार के भोग-विलास के साधन जुटाने का विधान किया। वे इस बात को अपनी सिद्धि के लिये सदैव कामना किया करते थे।

वामे रामा रमण कुशला दक्षिणे वाम पात्रं,
मध्येन्यस्तं मरीच सहितं शूकरस्यो सूरामांसम्।

स्कंधे वीणा ललित सुभगा सद्गुरूनां प्रपचः,
कौलो धर्मः परम गहिनो योगिनीनामप्य गम्यः ।

बाईं ग्रोर तो सम्भोग करने में कुशल युवती स्त्री हो, दायें हाथ में मदिरा का पात्र हो । सामने ही दोनों के बीच गर्मा गर्म शूकर का मसालेदार माँस हो, कंधे पर वीणा लटक रही हो, सुन्दर सुभग । सद्गुरु का प्रपञ्च है । यही कौलधर्म है । यह परम गहन है । योगी भी इसको सरलता से नहीं पा सकते । उनके लिये भी यह ग्रगम्य है ।

इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि वह युग कैसा था जिस में व्यक्ति भगपूजा, श्मशान साधना तथा तन्त्र मन्त्र के द्वारा महासुख की प्राप्ति के लिये प्रयत्न कर रहा था; लेकिन उसकी जगह मिली उसे ग्रतृप्ति । जिस माया के जाल से वह छूट जाना चाहता था उसने उसे ग्रधिक से ग्रधिक जकड़ लिया । इस ग्रतृप्ति के हाहाकार में ही वह एक ग्रोर तो स्त्री का ग्रानन्द मानने लगा ग्रौर दूसरी ग्रार उसको चिता समझने लगा । उसके मन में प्रश्न उठा कि इस वासना का मूल क्या है ? उत्तर हुग्रा यह चित्त का विकार है । चित्त चलायमान है। वह स्थिर नहीं रहता ।

दूसरा प्रश्न हुग्रा कि चित्त स्थिर क्यों नहीं रहता ? क्योंकि वीर्य उच्छृखल होकर सारी एकाग्रता को नष्ट कर देता है ।

तब सिद्ध ने कहा कि स्त्री की भग एक ग्रग्नि है । उसमें उसे स्वाहा कर दो । जिस प्रकार ग्रग्नि सब शुद्ध कर देती है उसी प्रकार स्त्री भी सब शुद्ध कर देती है ।

तभी तो शिव ने कहा है—मैथुनेन महायोगी ममतुलो न संशयः—ग्रर्थात मैथुन करने से महायोगी मेरे बराबर हो जाता है ।

वज्रयान, सहजयान, कापालिक, पाशुपत, कौलमार्गी ग्रादि सभी का स्त्री के प्रति यही दृष्टिकोण है । इन मतों ने समाज में व्यभिचार को छूट दी । ग्रपनी साधनाग्रों के लिये ये लोग या तो स्त्रियों का ग्रपहरण करते थे या उनको धन ग्रादि के लोभ से फँसाते थे । तन्त्र मन्त्र ग्रादि के कारण समाज में इनकी मान्यता भी थी । इस भारतभूमि में ग्रनेक ग्रन्ध-विश्वास ग्राँधी की तरह चल पड़े हैं । ग्रपने चमत्कारों के बल पर ये सिद्ध जनता को ग्रपनी ग्रोर ग्राकर्षित किया करते थे । इनके सम्पर्क में ग्राने से समाज में किस प्रकार का ग्राचार पनप सकता था । स्त्री ग्रौर पुरुष के बीच जो सहज लज्जा थी ग्रौर जिसको ब्राह्मण स्त्री का शील कहकर सदा-

चार के रूप में स्वीकृत करता था। सबकुछ समाप्त हो गई। अब तो नंगी स्त्रियों के चित्र और मूर्तियाँ बनने लगी। योनि और लिंग को प्रतीक रूप में चित्रित किया जाने लगा।

इन सभी सम्प्रदायों ने व्यभिचार की अति कर दी। स्त्री का सम्मान पूरी तरह समाप्त हो गया। माता और भगिनी के रूप में जो उसकी पवित्रता थी, वह इन सिद्धों ने पूरी तरह नष्ट कर दी। केवल रतिक्रीड़ा के साथ उसका सम्बन्ध जोड़कर उसे परिवार से अलग करके देखा गया। वैसे परिवार और गृहस्थ सम्बन्धित स्त्री के रूप को तो ये सिद्ध देखते ही नहीं थे। गौतम बुद्ध ने यद्यपि पहले स्त्रियों का बहिष्कार किया था लेकिन उनके हृदय में से स्त्री का सम्मान कभी नही गिरा। इसी कारण वे बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात भी अपनी पत्नी यशोधरा के पास गये थे। इसके साथ ही यद्यपि ब्रह्मचर्य की आवश्यकता के लिये उन्होंने स्त्री का परित्याग करने के लिये कहा था और उसको दुःख का हेतु ही माना था लेकिन उनका दृष्टिकोण करुणा-मय था। वे स्त्री को ही क्या संसार के सारे विषय सुख को ही दुख का हेतु मानते थे, इसीलिये उनका दृष्टिकोण मूलतः करुणा का था, घृणा का नही।

इधर जब वामाचार काफी बढ़ गया और तान्त्रिकों और सिद्धों के जादू-टोने बहुत बढ़ गये तो उनकी तीव्र प्रतिक्रिया में नाथपंथ उठा। गुरु गोरखनाथ इस पंथ के प्रधान व्यक्ति थे। वैसे तो उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने योगामृत कौल सम्प्रदाय को प्रमुखता दी थी लेकिन नाथ सम्प्रदाय में अपने गुरु से बढ़ा चढ़ा व्यक्तित्व था गोरखनाथ का, जो एक बार कामिनियों के माया-जाल में फंसे अपने गुरु को कामरूप से मुक्त करके लाये थे। गोरखनाथ ने अखण्ड ब्रह्मचार्य के पालन को योग-मार्ग के लिये आवश्यक बतलाया और इसी आधार पर उन्होंने उन सभी सम्पदायो की कटु आलोचना की जिन्होंने अपनी कामवासना की तृप्ति के लिये प्रतीक के रूप में रतिक्रीड़ा को योगिक क्रिया का आधार बनाया था। गोरखनाथ ने पूर्णतः स्त्री का बहिष्कार कर दिया और वीर्य रक्षा को विशेष महत्त्व दिया। वे तो स्त्री के साथ किसी प्रकार रतिक्रीड़ा को स्वीकार ही नही करते थे। इसके लिये तो वे शिव और शक्ति का मिलन शरीर ही मानते थे। वाह्य रूप से स्त्री को महासुख की प्राप्ति के लिये स्वीकार करने के वे बड़े विरोधी थे। वे तो कुण्ड-लिनी को ही शक्ति या स्त्री मान कर उसकी स्थिति अपनी देह के भीतर ही

मानते थे और इस तरह पूर्णत्व की कल्पना करते थे। कठोर संमय ही उनकी साधना की आधार-भूमि है। वीर्य को ऊर्ध्व रेतस कर देने में ही वे महासुख का अनुभव करते थे। वे तो निरन्तर योगाभ्यास करते हुए मस्तिष्क की अपार शक्ति को जागृत कर देने में ही नाथ-योगी के जीवन' की सफलता मानते थे। उनका विश्वास था—

इला प्युंगुला जोगरा भेंटी।
सुषमन मिल्या घर बासा॥

इड़ा पिंगला अर्थात चन्द्र सूर्य दोनों नाड़ियों को मूँद लेने पर सुषुम्णा का मार्ग खुल जाता है। योगी का मुद्राधारण यही है। योगी तो सबसे पहले संसार को भस्म करके जल में मिला देने की बात सोचता है और तब निरंजन सिद्धि के लिये निरन्तर साधना किया करता है। वह सदैव अलख जगाता हुआ अनहत नाद के सुनने की चेष्टा किया करता है। हठयोग पर उसकी आस्था इसीलिये होती है कि वह क्षुद्र वासनाओं पर पूरी तरह विजय प्राप्त करके अपने आपको आकाश के समान बनाने की इच्छा किया करता है।

नाथपंथ के इस निवृत्ति मार्ग में स्त्री पूरी तरह त्याज्य हो गई। गोरखनाथ ने उसे मायाजाल कहा और योगी के लिये सदा उसमे बचने का उपदेश दिया। जिस स्त्री के नग्न रूप की तान्त्रिकों के बीच पूजा होती थी, गोरखनाथ ने उसे घृणित समझा और कठोर शब्दों में स्त्री के वासनामय रूप की निन्दा की। वे अपने शिष्यों को यह कहकर सावधान किया करते थे :—

भग राकसि लो भग राकसि लो बिरंग दंताँ जग खायर लो।
ग्यांनी हुता सु ग्यान मुष रहिया जीव लोक आपैं आप गंवाया लो॥

एक ही बार कहकर गोरखनाथ चुप नहीं हो गये। वे तो बार-बार इस मायाजाल को काटने के लिये नाथयोगियों को चेतावनी दिया करते थे। फिर उन्होंने कहा :—

बांमां अंगे सोइबा जमचा भोगबा संगे न पीवणां पांणी।

स्त्री के संग सोना भय का योग करता है। स्त्री के साथ बैठकर तो पानी भी नहीं पीना चाहिये।

संसार में सारे दुःख का कारण ही यह विषय जाल है, तभी गोरखनाथ ने कहा था :—

चारि पहर आलंगन निद्रा संसार जाइ बिषिया बाही ।
ऊभी बांह गोरषनाथ पुकारैं, मूल य हारो म्हाराभाई ।।

रात के चारों पहर आलिंगन (स्त्री का आलिंगन) और निद्रा में बिताकर संसार विषयों में बढ़ा जा रहा है। गोरखनाथ खड़ी बाहों के साथ पुकारता है कि हे मेरे भाई मूल अर्थात् वीर्य को नष्ट मत करो।

योगी को तो चाहिये कि वह अपने वीर्य को ऊपर चढ़ा ले क्योंकि :—

मैथुन कै घरि जुए गरासै अरध-उरध लै जोरं ।

मैथुन से बुढ़ापा आ घेरता है। इसलिये नीचे गिरने वाले रेतस् को ऊर्ध्वा-वस्था से जोड़ना चाहिए।

जो इस तरह ऊर्ध्वरेता होकर कामिनी का आलिंगन छोड़ देता है और माया को काट डालता है, विष्णु भी उस जोगी के चरण धोता है।

योगी तो काल पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। काल बार-बार आकर उससे कहता है :—

उभा मारूँ बैठा मारूँ-मारू जागत सूता ।
तीनि लोक भग जल पसारया कहाँ जाइगौ पूता ।।

काल पुकारता है—खड़े, बैठे, जागते, सोते चाहे जिस दशा मे रहो उसी दशा में मैं तुम्हें मार सकता हूँ। तुम्हें बाँधने के लिए ही तो मैंने तीनों लोकों में योनिरूप जाल पसार रखा है। उससे बचकर तुम कहाँ जाओगे।

गोरखनाथ का स्त्री के प्रति यही दृष्टिकोण रहा। स्वाभाविक था कि इन नाथपंथियों ने स्त्री के जीवन को केवल कामवासना के साथ ही जोड़कर तुच्छ और घृणित समझा। इन्होंने स्त्री के उस कल्याणी रूप को नहीं देखा जहाँ वह भी कठोर तपस्या करके दूसरों को अपने स्नेह से सींचती रहती है। इसका मूल कारण यही था कि नाथपंथी इस संसार को भवजाल ही समझते रहे और सदा इसको भस्म करना ही उन्होंने अपना उद्देश्य निर्धारित किया। यह ठीक है कि गोरखनाथ ने स्त्री के वासनामय रूप की निन्दा की थी लेकिन उन्होंने उसके उदात्त रूप को भी वहाँ पहिचाना। माता के प्रति आस्था उनमें अवश्य मिलती है लेकिन गृहणी के प्रति उतनी ही उदासीनता है। गोरख का मार्ग इसी कारण एकांगी सिद्ध हुआ क्योंकि उसमें परिवार और लोक की प्रायः उपेक्षा ही रही। गृहस्थ को गोरखनाथ निम्न कोटि का व्यक्ति मानते थे। उनकी दृष्टि में तो योगी ही सर्वोच्च कोटि में आता था। फिर पुरुष ही योगी

हो सकता था। स्त्री के लिये योग साधना में कोई स्थान नहीं था। गोरखनाथ ने किसी भी स्त्री को अपनी शिष्या नहीं बनाया। इस तरह देखा जाय तो सिद्धि के क्षेत्र में भी गोरखनाथ ने स्त्री के हीनत्व का ही प्रतिपादन किया। उनके चित्त पर स्त्री का विलासी रूप इतना जम गया था कि वे उसके कारण सदैव ही स्त्री की उपेक्षा करते रहे। उन्होंने कभी गम्भीरतापूर्वक उसके जीवन को समझने की चेष्टा नहीं की। तभी इनकी योगसाधना व्यक्तिपरक और केवल पुरुषपरक होकर रह गई। इस सब में गोरखनाथ का अधिक दोष नहीं है। उनका युग ही इस प्रकार का था। वामाचार की लहर चारों ओर फैल रही थी। खुला संभोग चलता था और उसे योग के लिये साधन बताया जाता था। गोरखनाथ के हृदय में इस सबके प्रति क्या प्रतिक्रिया हो सकती थी ? स्वाभाविक रूप से उन्होंने स्त्री को मायाजाल समझना प्रारम्भ कर दिया, लेकिन इसके साथ एक बात मत भूलना कि जहाँ एक ओर गोरखनाथ ने स्त्री का बहिष्कार किया वहाँ दूसरी ओर माता के रूप में उसके सम्मान को भी बढ़ाया था। वामाचार के अन्तर्गत स्त्री का सम्मान लुट चुका था। तांत्रिक संभोग के लिये स्त्रियों का अपहरण करते थे या धन देकर उन्हें तन्त्रसाधना के लिये ले आते थे। गोरखनाथ ने इस सारे कार्य-व्यापार को घृणित कहकर इसकी निन्दा की और तब स्त्री को मुक्ति मिली। नग्न रूप में जो उसका सम्मान लुट रहा था, उससे वह बच गई और एक बार फिर योग कौलामृत सम्प्रदाय के प्रभाव से उसने अपने सम्मान की रक्षा कर ली, इस तरह गोरखनाथ के विषय में दोनों ही पक्षों को समझना आवश्यक है। यह तो ठीक है कि ये मध्यकालीन सम्प्रदाय एकांगी थे, तभी तो कालान्तर में जाकर ये सभी लुप्त हो गये; लेकिन फिर भी उनका अध्ययन करते समय हमें उन्हें उनकी युग-परिस्थितियों के बीच रख कर देखना चाहिये।

नाथपंथियों के साथ ही मैं उस व्यक्ति के विषय में भी लिखता हूँ जिसने दक्षिण से लेकर उत्तर तक भारत की यात्रा की थी और चारों ओर अपने वेदान्त-दर्शन का घोष गुँजाया था। उसने ह्रासोन्मुखी बुद्ध-धर्म को अपनी मेधा के बल पर इस देश से नष्ट कर दिया। उसके समय तक बुद्ध की प्रतिमा की पूजा होने लगी थी और अनेक तरह के वाह्याचार फैल गये थे। उसने इन सबका विरोध करके निर्गुण ब्रह्म को सबसे ऊपर रखा। उस मेधावी ने भारत के चारों कोनों पर चार विशाल मठ स्थापित किये थे। वह था शंकराचार्य, जो गोरखनाथ से बहुत पहले हो चुका था। वेद, उपनिषद और शास्त्रों का प्रकांड

पण्डित था वह। वह भी सन्यास मार्ग मे ही विश्वास करता था, इसलिये उसने प्रारम्भ से ही ब्रह्मचर्य और कठोर साधना को जीवन के लिये श्रेष्ठ बताया। इस संसार को उसने माया कहा, तभी तो उसने कहा था—धन की तृष्णा छोड़ दो। जो भाग्य से मिल जाय उसी में सन्तोष कर लो। पिता, पुत्र, माता आदि कोई नही है इस संसार में। जीवन क्षणिक व्यापार है। धन, जन, यौवन का गर्व न कर। काल सभी को नष्ट कर देता है। संसार का यह सारा खेल ही माया है। केवल ब्रह्म ही एकमेव सत्य है। संसार दुःख से ग्रस्त है। इसमें जन्म और मृत्यु का चक्र निरन्तर घूम रहा है। उसी चक्र में फँका मनुष्य बार-बार स्त्री के गर्भ में आकर जन्म लेता है और फिर इस संसार में आकर हाय-हाय करता है। उसे कभी भी सन्तोष नही होता। माया को सत्य समझ कर वह इसके पीछे भागता है और क्षणिक सुख की कामना करता है। इस संसार की कैसी यातना है। अंग गल जाते हैं। सिर के बाल पक जाते हैं। दाँत टूट जाते है। हाथ में डन्डा हिलता रहता है फिर भी तृष्णा नही मिटती। काँपते हाथ मे मनुष्य क्षणिक सुखो की भीख माँगता रहता है। सारी आयु इसी असन्तोष में कट जाती है, लेकिन फिर भी उसकी भूख नही मिटती।

शंकर ने चारो ओर मायाजाल देखा और उसमें भटकते हुए प्राणी को देखा, तभी उसने उससे मुक्ति पाने के लिये कहा—कर्मों के कारण मनुष्य भटकता है इसलिये कर्म के बन्धन तोड़ दो। माया ही सबसे बड़ा बन्धन है। उसी में तो मनुष्य फँस जाता है। इस माया को कोई भी नही समझ पाता। यह अनिर्वचनीया है। ब्रह्म सबसे परे है। इसका साक्षातकार करना, उसके साथ एक होकर रहना ही जीवन का अन्तिम साध्य है। अद्वैत की अवस्था ही इस मायाजाल से सच्ची मुक्ति है।

लेकिन प्रश्न उठा कि इस अद्वैत की अवस्था पर पहुँचा कैसे जाये?

उसके लिए शंकर के पास वही उत्तर था—सांसारिक मायाजाल से मुक्त हो जाओ। घर छोड़ दो, परिवार छोड़ दो, स्त्री, धन, सम्पत्ति आदि विषयजन्य वस्तुओं को छोड़ दो। अपने हृदय की तृष्णा को पूरी तरह मिटा दो। इन्द्रियों को पूर्ण रूप से अपने वश मे करके ब्रह्म रूप हो जाओ। कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो। चित्त को एकाग्र करो और अपनी चेतना को इस संसार के लघु कार्य व्यापार से हटाकर बिराट सत्य की ओर लगाओ। वह विराट सत्य है निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति।

इस तरह शंकर ने भी उसी ब्रह्मचर्य्य पूर्ण एकांगी जीवन का प्रतिपादन

किया जैसा गोरखनाथ ने आगे चलकर किया था। गोरखनाथ ने उसकी तरह ही स्त्री को मायाजाल समझ कर त्याज्य माना। इस समानता का कारण यही है कि दोनों ही योगी थे। चित्त की एकाग्रता पर वे विशेष ध्यान देते थे। गोरखनाथ तो अनहत नाद जगाकर साक्षात शिव रूप बन जाना चाहता था और शंकर ब्रह्म में लीन हो जाने की अवस्था प्राप्त करना चाहता था। शंकर के इस सन्यास-मार्ग में स्त्री को फिर हीन समझा गया। पहले से ही बौद्ध भिक्षुओं ने उसके प्रति उदासीनता-पूर्ण दृष्टिकोण रखा था। बाद में उसको योग्य समझा गया और वज्रयान की धारा बह निकली। शंकर में इस सबकी वही प्रतिक्रिया हुई थी जो आगे चलकर गोरखनाथ में हुई। उसने स्त्री से उसकी मुक्ति का अधिकार ही छीन लिया और उसे सदा इसी कर्म-जाल में भटकने के लिये छोड़ दिया। शंकर का यह दृष्टिकोण भी एक पुरुष का दृष्टिकोण था जिसके अन्तर्गत स्त्री के प्रति हीनत्वपूर्ण भावना का ही प्रतिपादन हुआ। उसको पुरुष के समान अधिकार प्राप्त नहीं हुए। शंकर ने उसके शीलमय रूप को न पहचानकर ही उसकी माया के रूप में उपेक्षा की। उसका मूल कारण यही था कि शंकर ने कभी परिवार में रहकर उसके विनयशील, कल्याणमय रूप को देखने की चेष्टा ही नहीं की थी। जीवन-भर उसने किसी स्त्री से किसी प्रकार कारागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित किया था। एक माता को ही वह प्यार करता था और सन्यासी होते हुए भी वह माता के जीवन के अन्तिम समय में उससे मिलने आया था। माता रोग-शैय्या पर पड़ी थी। वह अपने शंकर को देखने के लिये लालायित हो रही थी। जब शंकर आ गया तो उसने प्रसन्न होकर कहा—बेटा ! आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ कि तू अपने दिये हुए वचन का पालन करने के लिये मेरे पास आया है। मैं कितनी सौभाग्यवती हूँ। वृद्धावस्था के कारण इस शरीर को ढोने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। अब तू मुझे उपदेश दे, जिससे मैं इस भवसागर से पार हो जाऊँ।

शंकर ने अपनी माँ को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दिया। माता उस निर्गुण तत्व को नहीं समझ पाई—तब उसने फिर कहा—बेटा ! मेरी कोमल बुद्धि तेरे इस निर्गुण तत्व को ग्रहण नहीं कर पाती अतः तू तो मुझे सुन्दर सगुण ईश्वर का ही उपदेश दे। तभी मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी।

यह सुनकर शंकर ने भुजङ्गप्रयात छन्द में अष्टमूर्त्ति शंकर की स्तुति की। शिव के दूत हाथों में डमरू और त्रिशूल लेकर उपस्थित हो गये। उन्हें

देखकर माता डर गई। शिव के वे दूत उसमें इस संसार से चलने के लिए कहने लगे लेकिन उसने डरते हुए अपनी अनिच्छा प्रकट कर दी, तब शंकर ने उन दूतों को लौटा दिया और फिर सौम्यरूप भगवान विष्णु की आराधना की। माता उस रूप से गद्‌गद् हो उठी। वह कमलनयन भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करती हुई इस लोक मे चल बसी और उसका शव शंकर के सामने रह गया।

सबसे बड़ी समस्या माता की अन्त्येष्टि क्रिया करने की थी। सन्यास ग्रहण करने के पहिले ही वह माता को वचन दे चुका था कि उसकी अन्त्येष्टि क्रिया वही अपने हाथों से करेगा; लेकिन सन्यासी के द्वारा माता का दाह-संस्कार करने की बात सुनकर उसके सभी भाई बन्धुओं ने आने से मना कर दिया। उसे शास्त्र-विरुद्ध कार्य कहकर उन्होंने उसके साथ किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं दिखाई। अन्त में निराश होकर शंकर ने अकेले ही माता का शव उठाकर द्वार के बाहर रख दिया और समीप ही सूखी लकड़ियाँ बटोर कर चिता बनाई और माता का दाह-संस्कार किया। इस सम्बन्ध में कथा प्रचलित है कि उसने अपनी माता की दाहिनी भुजा का मन्थन कर स्वयं आग निकाली थी। दाह-संस्कार कर चुकने के पश्चात उसने अपने दामादों को शाप दिया कि तुम्हारे घर के पास ही आज से श्मशान बना रहेगा। आज भी मालावार प्रान्त के ब्राह्मण अपने मुर्दों को घर के द्वार पर ही जलाते हैं।

शंकर का यह अगाध मातृ प्रेम बताता है कि वह स्त्री के जीवन के निकट अवश्य आया था लेकिन केवल माता के रूप में ही उसने उसे देखा था। उसके स्नेहमय रूप से प्रभावित होकर ही तो उसने भगवान के सगुण रूप तक की प्रार्थना की थी। यदि शंकर नारी के सर्वांगीण रूप को समझने की चेष्टा करता तो उसका मत एकांगी होकर नहीं रहता। उसने केवल मोक्ष के पीछे धर्म, अर्थ और काम तीनों का परित्याग किया था। यही कारण था कि उसका दर्शन व्यावहारिक पक्ष में अधिक नहीं चला। वह सन्यासियों का साधनामार्ग होकर रह गया। शंकर में जीवन के प्रति आस्था नहीं थी; बल्कि एक तरह का विराग था। वह विरागमय दृष्टिकोण लौकिक जीवन के विकास के लिये कोई स्वस्थ आधार नहीं बना सका, इसी कारण लोक ने उसको स्वीकार नहीं किया। इन अभावात्मक चिन्तन-धाराओं के साथ ही मैं एक और सम्प्रदाय के बारे में बता देना चाहता हूँ। वह सम्प्रदाय सम्भवतया इन सभी सम्प्रदायों से पुराना है और आज भी उसके अनुयायी अनेक स्थानों पर मिलते

हैं। वह है जैन सम्प्रदाय, जिसके आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का नाम वेद तक में आता है। इसी से अनुमान होता है कि भारतवर्ष में वैदिक काल से ही यह सम्प्रदाय ब्राह्मण विचार-धारा के साथ-साथ चलता आ रहा है।

जैनों की भी वही वेदना है। वे भी संसार छोड़ कर राग-द्वेष-रहित जीवन बिताने में ही विश्वास करते हैं। इस संसार को वे भी माया-जाल कहते हैं और इस देह को घृणित समझ कर इसके प्रति सारे अनुराग को नष्ट कर देना चाहते हैं। वे तो कहते हैं।

माणुसु देहु होइ घिणि विट्टलु। सिरंहिणी बद्दहु हड्डहपोट्टलु।
चल कजतु मायमडकहेंडड। पतलो पुन्जु किमिकीडहु मूडउ।
पुइगंध रुहीरामिस भंडड। चम्म रुक्खु दुग्गँध करडड।

मानुस देह घृणित है। सिर तो हड्डी की पोटली समझना चाहिये। सड़ता हुआ माया भरा कचरा। मल का पुन्ज। चर्म वृक्ष। आँत की पोटली पक्षियों का भोजन है। घर से निकाल कर श्मशान में इस देह को फैंक दिया जाता है। इन्द्रधनुष के समान इसका अस्थिर स्वभाव है। जिस प्रकार बिजली चमकती है, इसके भीतर क्षणिक भाव उठते हैं।

इसके पश्चात जैन श्रावक स्त्री के सौन्दर्य को देख कर भी उदासीन हो कर कहता है—हे स्त्री! मत गर्व कर अपने इस रूप और शरीर पर। यह सभीकुछ नश्वर है। जीवन एक छलनामात्र है। संसार के प्रति मोह और आसक्ति अंधकार में भटकाने वाली है। जीवन का यह सारा व्यापार क्षणिक है। मत कर गर्व अपनी इस मिट्टी की काया पर। ये सुन्दर लगने वाले गजगामी चरण, वेसुरत के प्रिय सुहावने नितम्ब, वह नाभिप्रदेश, वह कृश उदर, वे यौवन के आलिंगन, सुन्दर मुख, अधरबिंब, दोनों नयन, चिकुरभार, वे गाढ़ालिंगन में बद्ध होने वाले स्तन, सब में कीड़े पड़ जाते हैं। सभी एक दिन सड़ जाते हैं। उनकी खाल खिच जाती है। मादकता के स्थान पर उनमें पीब पड़ जाती है। भयानक होता है इस सबका अन्त। इससे इस काया और संसार के प्रति अपनी आसक्ति मिटा दे। मुक्त हो जा इस झूँठे जन्जाल से। यह कर्म-जाल ही भटकाने वाला है। इसको तोड़ दे। कृषि व्यापारादि नरक में ले जाते हैं इन्हें तो मृत्यु पर्यन्त यदि दुःख ही दुःख मिलते रहे तो भी नहीं करना चाहिए। अपने आपको पहले सांसारिक जालों से दूर करके निर्मल कर लो। इसके लिये ज्ञान की सहायता लो। योग से ही ज्ञान को एकाग्र करो। अनेक भवान्तर में शरीर उत्पन्न हुआ है। आत्मा बार बार भटक रही है। उसके

कर्मों का कहीं अन्त नहीं है। वह क्यों अवरुद्ध है ? उसकी मुक्ति के लिये क्या उपाय करने चाहियें।

इसके लिये जैन श्रावक कहता है : काट दो इस सब मायाजाल को। निरासक्त होकर रहो। शरीर का सारा आवरण फेंक कर दिगम्बर रूप में ही विचरण करो। यह आवरण ही तो सारे पाप की जड़ है। इसी से तो कुप्रवृत्तियाँ पैदा हो कर मन को दूषित करती हैं, इसलिये इसको हटाकर सारे पाप से मुक्त हो जाओ। संयम से रहो। कठोर तप करो। वासना की जड़ तक को उस तपस्या से जला दो और पूर्णतः निर्विकार होकर अहिंसा पथ का अनुसरण करो। नाक और मुँह से भी कीड़ों की हत्या न करो। माँस न खाओ। भिक्षा माँग कर ही अपना जीवन निर्वाह करो। संतोष धारण करो।

जैन चित्त की अशांति को जीत कर पूरी तरह विराग से ही अपने जीवन का तादात्म्य कर लेना चाहता है।

यही जैन चिन्तन का मूल है। इस विषय में अपनी अन्य पुस्तक 'भारतीय चिन्तन' में लिख चुका हूँ।

इस सारे वर्णन से तुम समझ जाओगे कि जैनों का चिन्तन भी अभावात्मक रहा, इसलिये स्त्री के प्रति उसने किसी प्रकार का अनुराग नहीं दिखाया। लेकिन जैन स्त्री को ही सारे जन्जाल का कारण नहीं मानता। वह तो सारे कर्मजाल को नरक में ले जाने वाला कहता है। स्त्री का स्वाभाविक रूप से उसमें तिरस्कार हो जाता है। लेकिन इस दार्शनिक पक्ष के साथ साथ जैनों के व्यावहारिक पक्ष पर भी हमें विचार करना चाहिये।

जैनों ने यद्यपि स्त्री को भी इस सारे मायाजाल के अन्तर्गत लिया लेकिन उन्होंने साथ में स्त्री के लिये मुक्ति का मार्ग खोल दिया। अन्य सम्प्रदाय वालों की भाँति स्त्री के प्रति घृणा उन्होंने नहीं दिखाई। स्वयं वर्द्धमान महावीर ने स्त्रियों को भी तपस्या-पूर्ण जीवन बिताने के लिये स्वीकार किया और वसुमती को धर्म का उपदेश देकर उन्होंने स्त्री संघ के निर्देशन के लिये नियुक्त किया था। इस तरह जैनों ने अन्य सम्प्रदायों की भाँति स्त्री पुरुष का भेद करके स्त्री के प्रति दीनत्वपूर्ण दृष्टिकोण कभी नहीं रखा। उनके लिये तो यदि स्त्री माया है तो पुरुष का जीवन भी तो वही माया है। इस तरह जैनों के चिन्तत का अभावात्मक आधार होते हुए भी उन्होंने सदैव स्त्री पुरुष की समा-

नता को प्रतिपादित किया। बुद्ध की तरह उन्होंने कोई इस तरह का नियम कभी नहीं बनाया कि संघ में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है और फिर एक बार जीवन के प्रति दृष्टिकोण बनाकर और उसके लिये अनेक नियम निर्धारित करके उन्होंने कभी उनको बदला नहीं। बुद्ध ने तो बार-बार संघ के नियमों में परिवर्तन किया था। राज्य सत्ता का दबाव आने के कारण उन्होंने सैनिकों की प्रव्रज्या रोकी थी। फिर ऋणदाताओं के दबाव से ऋणियों की प्रवृज्या के विषय में नियम बनाये। फिर महाप्रजापति गौतमी के कहने पर स्त्रियों को संघ में लिया। इस तरह की रियायतें वर्द्धमान महावीर ने कभी नहीं दीं। यही उनकी दृढ़ता थी।

इसके अलावा जैनों ने लोक को त्याग करके और इस सारे कर्मजाल को नरक में ले जाने वाला कहकर भी व्यावहारिक पक्ष में परिवार और लोक के प्रति आस्था रखी। दीक्षा लेते हुए जैन साधु सदैव परिवारों को धर्म-उपदेश दिया करते थे। वे गृहस्थ जाल में बँधे हुए स्त्री और पुरुष के लिये भी मुक्ति का मार्ग बताया करते थे। तभी साधुओं की बौद्धों से अधिक परिवारों में आस्था हुई। जैन एक विराट भिक्षु समुदाय एकत्रित करके आदर्श लोक की कल्पना कम करते थे।

इन सारे सम्प्रदायों का वर्णन करके हमने अभावात्मक चिंतन की एक विराट धारा की झाँकी कराई। प्रत्येक के दार्शनिक दृष्टिकोण की रूपरेखा दे दी है। इससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि परिवार, स्त्री, प्रेम, विवाह आदि के प्रति इनका क्या दृष्टिकोण था।

अब हम उस चिन्तन की धारा को रखते हैं जिसमें इस सारे अमत्व का समाधान हो जाता है। वह है वैष्णव-चिन्तन धारा, जिसके अन्तर्गत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्वर्ग की स्थापना करके ब्राह्मण विचारक ने जीवन को अपनी समग्रता के साथ समझने का प्रयत्न किया है। उसमें स्त्री, लोक, परिवार आदि के प्रति आस्था है। उसमें वैराग्य को मुक्ति का साधन नहीं बताया गया है बल्कि इसके स्थान पर भक्ति की स्थापना कर वैष्णव चिन्तन-धारा ने लोक में स्नेह और प्रेम का प्रसार किया है। उसने घृणा को हराया है। कठोर तप के स्थान पर उसने सहज भक्ति पूर्ण जीवन को श्रेष्ठ समझा है। स्त्री और पुरुष दोनों को भक्ति के क्षेत्र में समानता दी है। शुष्क और नीरस ज्ञानयोग के स्थान पर निष्काम कर्मयोग को लाकर इसने वैरागी और परिवारबद्ध प्राणी का भेद हटा दिया है। वैष्णव-चिन्तन ने कभी भी साधना की अति को

प्रश्रय नहीं दिया। यही कारण है कि इसके साथ ही अनेक संप्रदाय उठे और एक बार तो उन्होंने एक लहर के साथ फैलकर अपनी विजय का नाद गुंजाया, लेकिन फिर सभी एक-एक करके अपने अभाव में डूब गये और यह वैष्णव धारा आज तक उसी अबाध गति के साथ चली आ रही है। इसके अन्तर्गत चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की दृष्टि से हम विषय की विवेचना कर चुके हैं। यह चारों ही मानव जीवन के लिये आवश्यक माने गये हैं। प्रत्येक का मनुष्य की एक आयु विशेष से संबंध बताया गया है और आयु विशेष का सामाजिक पक्ष आश्रमों के रूप में प्रगट किया गया है, जो पुराने सामाजिक संगठन (Organization) का प्रतीक था। वैष्णव चिन्तन की धारा ने भक्ति का आधार ढूँढने से पहले भी बार-बार समानता की घोषणा की है। लोक में भेद-भाव को मिटाने में इसका बड़ा ही प्रबल भाग रहा है। सबसे पहले सम्पूर्ण लोक के निर्माता और नियन्ता ईश्वर की कल्पना करके इसने प्राणी-मात्र को समानता का अधिकार दिया और फिर सबके भीतर समग्र आत्मा की बात उठाकर उस अधिकार को और भी सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इसके पश्चात इसी चिन्तनधारा के समसामयिक नाट्यशास्त्र के निर्माता भरत ने साधारणीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके रसानुभूति के क्षेत्र में स्त्री, पुरुष, शूद्र, ब्राह्मण आदि सबकी समानता स्वीकार की। इसके पश्चात भक्ति के रूप में फिर समानता का अधिकार देती हुई यह धारा बढ़ी।

जिस ब्राह्मण ने इस धारा को आगे बढ़ाकर सदैव समानता की घोषणा की वही शूद्र-ब्राह्मण, स्त्री पुरुष आदि के भेद-भाव समय-समय पर क्यों खड़े करता रहा? इसके सम्बन्ध में हमें ब्राह्मण के वर्ग-स्वार्थ पर ध्यान देना चाहिये। व्यक्ति के साथ वर्ग-स्वार्थ जुड़ा रहता है। उसके साथ उसकी सदिच्छा भी होती है जो वर्ग-स्वार्थ के ऊपर लोक-कल्याण की प्रेरणा से सदैव अपना कार्य करती रहती है। ब्राह्मण सदैव अपने वर्ग-स्वार्थ के प्रति सजग रहा है और उसके रक्षार्थ उसने विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत अनेक रूपों से धर्म की विवेचना की है। वह निरन्तर बदलता रहा है और उसने हर परिस्थिति में पूज्य बने रहने की कामना की है। उसके लिये उसने अपने अनेक अधिकारों का भी परित्याग किया है। अपनी बात छोड़कर, नई बातों को भी स्वीकार किया है। नये देवताओं की उपासना को भी अपने धर्म के अन्तर्गत स्वीकार किया है।

बस इसी वर्ग स्वार्थ के कारण उसने कई बार विरोधी बातें भी कही हैं।

एक बार उसी ने परिवार में स्त्री-पुरुष के संबंधों का आदर्श रखा है कि वे एक दूसरे के पूरक होकर इस तरह परिवारों को चलायें जैसे दो बैल गाड़ी को चलाते हैं। बस युग बदलने के साथ ही वह कहने लगा कि स्त्री तो पुरुष की दासी है। उसे तो उसे ही देवता समझकर उसकी पूजा करनी चाहिये। वही उसका तीर्थ है, वही तप है, वही उसके जीवन की मुक्ति है। इसी प्रकार एक तरफ तो उसने शकुन्तला जैसी आदर्श स्वाभिमानिनी नारियों को सामने रखा है और दूसरी ओर शाण्डिली जैसी नारी को आदर्श बनाकर प्रस्तुत किया है। शकुन्तला दुष्यन्त के उपेक्षापूर्ण व्यवहार को निन्दा करने का साहस रखती है, जब कि शाण्डिली अपने व्यभिचारी पति कौशिक के पातिव्रत का पालन करती हुई वेश्या के पास तक ले जाती है। अनेक तरह के उदाहरण हैं, जिनसे ब्राह्मण के निरन्तर परिवर्तित होते रूप का पता चल जाता है। उसने युग परिस्थितियों के अनुसार अपने रूप बदले हैं लेकिन फिर भी उसकी सदिच्छा ने लोक के कल्याण की ही सदैव कामना की है चाहे वह उसके प्रति इस तरह से जागरूक न रहा हो जैसा हम आज इतिहास का अध्ययन करके सोचते हैं। वाह्य रूप से उसने अनेक प्रतिक्रियावादी बातें कहीं लेकिन उसके साथ उसकी अपनी राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ थीं। मूल रूप में तो उसने परिवार और लोक के प्रति सदा आस्था रखकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के ऐसे गम्भीर आदर्श की प्रस्थापना की है कि उसकी तुलना में अन्य सम्प्रदाय हमें एकांगी और अभावात्मक ही दीखते हैं।

७

संस्कृति और विज्ञान

आज का विकसित विज्ञान भी वास्तव में अपनी बाल्यावस्था में है। प्रयोगात्मक विज्ञान के क्षेत्र दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं। भौतिक जगत की ही नहीं, वह 'मन' की व्याख्या करने में लगा है।

मन (mind) की पहली खोज भारत ने की। योगी शरीर को अनेक प्रकार से कष्ट देते हैं। यद्यपि अपने शब्दों में वे उसे सुख का आसन मानते हैं, क्योंकि वे स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से उसे ही उचित मानते हैं। योगी विभिन्न प्रकार के चमत्कार प्रदर्शित करते हैं। योगी श्वास-साधना करके समाधि लगाता है। कुछ दिन हुए एक योगी ने अपना रक्त प्रवाह भी स्तब्ध करके दिल की धड़कन को रोक कर दिखा दिया था। वह धरती से ऊँचा उठ जाता है। यदि कोई एक सैकेंड में ७ मील की गति से उठे तो वह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति को पार कर सकता है अर्थात् एक घंटे में उसकी गति का वेग २५२०० मील होना चाहिये। योगी इतनी गति को केवल चित्तवृत्ति के निरोध से प्राप्त कर लेता है? वह अधर में लटका रहता है। यद्यपि वह आकर्षण शक्ति के के बाहर नहीं निकलता, परन्तु भारहीन (weightless) सी अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

इसे देखकर लगता है कि विज्ञान वस्तु-जगत में परिवर्तन करता है, योग मनुष्य के शरीर को ही लेता है। योग का आरंभ भी वनौकस आदिम समाज में है। वह कितना प्राचीन है। यह तो नहीं कहा जा सकता। परन्तु एक ही

आदिम व्यवस्था ने हमें मनुष्य के विकास के दो रूपों की ओर बढ़ाया है। विज्ञान साधन है, साध्य नहीं है।

जूलियन हक्सले के मतानुसार इस ग्रह पर भौतिक पदार्थ में जीवन का अस्तित्व प्रारंभ होने के बाद जीवन तत्त्व के रूप में विकास हुआ है। उसका संख्यात्मक विकास भी हुआ है। उसका रूप पहले साधारण था, और वह निरंतर दुरुह होता चला गया है। उसमें तरह-तरह के पारस्परिक संबंध बढ़े हैं और सूक्ष्म जाल तैयार हो गये हैं। अब जीवन तत्त्व में बाहरी परिवर्तन को झेलने की शक्ति पहले की तुलना में कहीं अधिक बढ़ गई है। उसमें प्रयोग और अनुभवों का ताँता बँधा रहा है और भविष्य निर्माण की ओर वह उन्मुख रहा है। बार-बार दुहराने की वृत्ति के विकास का रूप ही स्मरण शक्ति है। विवेक से मिली स्मरण शक्ति का उदय बाद में हुआ है। उसके बाद परंपरा का विकास हुआ है। उसमें शरीर की शक्ति—जानना, अनुभव करना, इच्छा करना—इन शक्तियों का विकास समय व्यतीत होने के साथ क्रमशः बढ़ता गया है। पृथ्वी पर मनुष्य आने के पहले ही से भौतिक पदार्थ उन्नति की ओर अग्रसर था। मनुष्य का विकास उसी उन्नति का एक अंग है। सृष्टि मनुष्य की उत्पत्ति से भी पहले ही से है। भौतिक पदार्थ ने किस प्रकार चेतन का विकास किया यह अभी पता नहीं है। उसका पहले बहुत धीरे धीरे विकास हुआ और अंततोगत्वा भौतिक पदार्थ के चेतन ने मनुष्य का आकार ग्रहण किया और उसमें उसका रूप काफी विकसित हुआ। और मनुष्य भी जीवित रहने के संघर्ष जिजीविषा से ही बढ़ा है, और जिजीविषा का प्रगटीकरण उसकी सुख पाने की लालसा—रिरिंसा में रहा है। प्रकृति ने मनुष्य के दो यही मूल नियम बनाये हैं। रहा उसकी आकृति में चेतन का इतना विकसित होना, वह निरंतर उसे सशक्त बनाता गया है, किन्तु मनुष्य अब भी इन दोनों बातों से अलग नहीं हुआ है।

मनुष्य की ही भाँति पेंग्विन पक्षी भी सलाम करता है और उसके बहुत से काम मजेदार होते हैं, जैसे वह चोरी करता है। फिर. पकड़े जाने पर शर्माता है। वह खाना लाता है तो बच्चे पेंग्विन उसे घेर कर तंग करके खाना छीन लेते हैं। यह भी चेतन का ही विकास है। संभवतः मनुष्य इन दर्जों को पार करता हुआ आगे बढ़ा है।

यौन-संबंध की जो मादक कमनीयता मनुष्य ने बढ़ा ली है, वह प्रजनन के लिये है। कई प्राणियों में संभोग बिना ही प्रजनन होता है। प्रजनन के पूर्व संभोग

में जो सुख है, वह प्रकृति का ही नियम है, जो शरीर के भीतर विशेष रसों के बनने के कारण मिलता है। वह नितांत भौतिक सुख है। किन्तु उसका जो संबंध चेतन से जुड़ा है वह भी मस्तिष्क के तंतुओं के कारण और इसलिये उसका भी विकास के अंतर्गत माना जाना ही उचित है।

तो यह विकास हमें बताता है कि मनुष्य प्रारम्भ नहीं है, किसी विराट गति में बीच में पैदा हो गया है, वह स्वयं गति है। उसके रूप में गति ने जो आकार ग्रहण किया है, उसमें भौतिक पदार्थ ने धीरे-धीरे चेतन होकर जो रूप धारण किया है, वह विकसित रूप अब और विकसित होना चाहता है।

वैदिक काल के उपरांत भारत में उपनिषदीय ब्रह्म का विकास हुआ—इसका अर्थ है कि ब्रह्म की कल्पना की प्रतीति एक विशेष समाज में जन्मी और उसने हमारे अतीत में अपना गहरा प्रभाव डाला।

उपनिषद का ब्रह्म क्या था? पहले विभिन्न जातियाँ अपने अपने देवताओं को मानती थीं। लेकिन जब वे जातियाँ एक दूसरे के संपर्क में आईं तब उन्होंने अनुभव किया कि छोटे-छोटे देवता ही काफी नहीं हैं। मनुष्यों ने तब अनुभव किया कि इन सारे देवताओं से ऊपर भी एक शक्ति होनी चाहिये। ऐसा उन्होंने क्यों सोचा? मनुष्य पहले छोटे छोटे कबीलों में रहता था, उसकी समझ भी छोटी थी। उसके दैनिक जीवन की आवश्यकताओं, उसके उस समय के चिंतन के फलस्वरूप उत्पन्न दार्शनिक भावों, उसकी प्रकृति की व्याख्या की तत्कालीन क्षमताओं और उसके भौतिक जीवन की विवेचनाओं का जब मिलन हुआ तब टॉटेम स्टेज से उसकी धारणाएँ बननी शुरू हुईं और उसके देवता उसके अपने चिंतन के अनुरूप बने। जब वे देवता नये देवताओं से मिले तो मनुष्यों ने अपने अपने देवताओं की अल्प शक्तियों को पहचाना और इसीलिये व्यापक समाज में व्यापक चिंतन ने ब्रह्म को जन्म दिया जो देवताओं से ऊँचा था। तब दार्शनिकों ने उस ब्रह्म की व्याख्या करने का यत्न किया; लेकिन शीघ्र ही उन्होंने देखा कि उनका चिंतन ब्रह्म की व्यापक या बिलकुल नयी तुली व्याख्या नहीं कर सकता था। तब उनके शब्दों में अभाव आया, और ब्रह्म की व्याख्या भी अभावात्मक अधिक हुई। 'नेति' 'नेति' का उच्चारण एक ओर मनुष्य की उस बुद्धि की व्यापकता को बताता है, जो अपनी सीमाओं के लघुत्व को जानती थी, तो दूसरी ओर उस लघुत्व की अनुभूति के बावजूद उसकी बुद्धि की उस महानता को भी बताता है कि वह

अपनी सीमा से एक बहुत बड़े सत्य को छूने लगी थी। इसीलिये उसने पुराने साकार देवाताओं को छोटा माना और एक निराकार के रूप में ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की जो प्रकृति के प्रत्येक रूप में स्थित था, स्वयं प्रकृति था। परन्तु यहाँ एक भेद हो गया। उन मनीषियों ने सत्ता के दो रूप माने— प्रकृति को ब्रह्म का रूप तो माना, किन्तु उसे भौतिक कहा, और उसे ब्रह्म रूपी चेतन का रूप माना। इस प्रकार उस चेतन को समझना, उससे तादात्म्य करना उनके जीवन का उद्देश्य हो गया। बदलती परिस्थितियों में कपिल ने उस चेतन ब्रह्म से ईश्वरत्व को अलग कर दिया और प्रकृति और पुरुषों के सम्पर्क से इस सृष्टि को चलता हुआ माना, जिसमें अहंकार का महत्त्व भी स्वीकार किया। आगे के युग में पुरानी चलती आई जैन-चिंतन की परंपरा ने केवल प्रकृति और आत्मा को माना, ईश्वर को बिलकुल ही हटा दिया। बुद्ध ने आत्मा को भी अनात्म कहा, परन्तु वे भी अभौतिक अनात्म मानते थे। दर्शनशास्त्र की यह चिंतना अचानक नहीं जन्मी।

एच० ए० फ्रेन्कफर्ट ने इस विषय पर अच्छा मनन किया है। उसने लिखा है: प्राचीन काल का मनुष्य,आज के सभ्य बर्बर की हो भाँति, मनुष्य को सदैव समाज के अंग के रूप में ही देखता था और उसे सृष्टि की व्यापक शक्तियों पर निर्भर स्वीकार करता था। वह मनुष्य समाज को प्राकृतिक शक्तियों पर निर्भर मानता था। उसे अलग करके नहीं देखता था। प्राचीन मनुष्यों की दृष्टि में प्रकृति और मनुष्य परस्पर विरोधी नहीं थे और इसीलिये जब वह उनको पहचानने का यत्न करता था तब उनको अलग अलग नहीं करता था— वह मनुष्य के अनुभव में प्रकृति की अनुभूति प्राप्त करता था और मनुष्य के अनुभव को सृष्टि के कार्यकलाप के रूप में अनुभव करता था। आज के और पुराने जमाने के आदमी के नजरिये में एक फर्क है। वह फर्क यह है कि आज का आदमी (वैज्ञानिक) सृष्टि को अचेतन समझता है, जब कि पुराना आदमी उसे 'तू' कहता था, और उसके दृष्टिकोण में उसे चेतन शक्ति माना जाता था। यह एक बहुत बड़ा भेद है। अचेतन की व्याख्या की जा सकती है, चेतन के व्यक्तित्व को माना जा सकता है, प्राचीन काल के मनुष्य को इसलिए जीवन अधिक रंगीन लगता था, जब कि आज का व्यक्ति उतनी रंगीनी का अनुभव नहीं करता। पुराने आदमी के लिये बिजली की कड़क, वृक्षों की सरसराहट और नदी की कलकल का जो अर्थ था, वह आज के मनुष्य के लिये बिल्कुल बदल गया है।

हमारा दर्शन मनुष्य की उन प्रारम्भिक अनुभूतियों से प्रारंभ हुआ, किन्तु

व्यक्तिरूप में मानव जीवन के जन्म, जीवन, मरण की भावात्मक अनुभूति में जो उसकी उस समय पहुँच थी, हम उससे उस क्षेत्र में बहुत नहीं बदले, वरन् कहना ठीक होगा कि प्राय: हम वैसे ही हैं, जैसा वह था । दर्शन और अनुभूति को यदि अलग किया जाये तो ठीक है । अनुभूति भावसंपदा है, दर्शन व्यक्ति और सृष्टि—समाज और शाश्वत रहस्य—इनका तादात्म्य या व्याख्या है।

आत्मा है, आत्मा नहीं है, परमात्मा है, परमात्मा नहीं है; प्रकृति अपने आप सबकुछ करती है, वह स्वजन्मी है, चेतन और जड़ दो हैं, चेतन ही जड़ का रूप बना दिखता है, जड़ कुछ है ही नहीं, चेतन ही अपने को ऐसा दिखाता है, वास्तव में हमारे मस्तिष्क में सृष्टि है, क्योंकि हम अनुभव करते है, तभी तो सबकुछ है, वरना कुछ नहीं, इसी तरह न जाने कितने विचार हैं, फिर एक एक विचार के अन्दर कई कई छोटे भेद हैं, फिर वैज्ञानिकों का दर्शन है कि प्रकृति अपना द्वन्द्वात्मक विकास करती है, प्रकृति करती है अपना कार्य, वस्तुतः करती नहीं, उसमें सब होता है, होता कुछ नहीं, काल का भेद तो हमें लगता है, हम जिस जगह से गुजरते है बस उतना देख पाते हैं, जसे अधर में टँगी गेंद पर चींटी वही जान पाती है, जो उसके सामने आ जाता है, वस्तुतः सत्य तो बहुत ड़ड़ा है, त्रिकाल अविभाज्य है, जो था, वह है, और जो होगा, वह भी है, पर हम उसे तभी देखते है, जब उस जगह से गुजरते हैं 'सृष्टि वस्तुतः एक विचार है, कोई बहुत बड़ा दिमाग सोच रहा है और हम सब—यह सारी सृष्टि उसके विचार हैं, सृष्टि में सब पहले से नियत है, यद्यपि व्यक्ति रूप में परमाणु की स्वेच्छा काम करती है, किन्तु वह फिर भी एक समूह के नियमन में बँधा रहता है; सृष्टि में कोई नियति नहीं है, यह सब जाने क्यों होता चला जा रहा है, असल में यह कार्य व्यापार कहीं और से चलाया जाता होगा, जिसे हम जानते नहीं; सृष्टि का रहस्य उसके बाहर नहीं, उसके भीतर है, अणु परमाणु में अपार रहस्यात्मक शक्तियाँ हैं जो धीरे धीरे खुलती जा रही हैं । यों न जाने कितने विचार है, परन्तु यह सब मनुष्य द्वारा निर्मित धारणाएँ है, और प्रत्येक अपनी युग-सीमा से ग्रस्त है, और ग्रस्त है मानव की सीमा से, यह सब मनुष्य के सत्य हैं, और मनुष्य का सत्य ब्रह्माण्ड में वही स्थान रखता है, जो कमरे में गेंद पर चलती चींटी का सत्य रखता है । अच्छा वैदिक, अच्छा ईसाई, अच्छा मुसलमान, अच्छा मार्क्सवादी, अच्छा भूदानी—बनते समय मनुष्य एक विशेष नैतिकता और आचरण को जड़ता से पकड़ लेता है । दुर्भाग्य है कि लाखों करोड़ों लोग इसी तरह बेवकूफी में पड़े रहते हैं । जिस प्रकार ईश्वर गढ़ कर उस पर मनुष्य का समर्पण उसकी

बुद्धिकी पराजय है, उसी प्रकार "भौतिक है," "उससे आगे मत सोचो" का मार्क्सीय संप्रदाय का कथन भी एक पराजय है। हमारे धर्म और दर्शन व्यक्ति, सृष्टि की व्याख्या से प्रारंभ होकर समाज पर आते हैं, और संस्कृति विशेष में रंगे जाकर जड़ता में बदल जाते हैं। खैर, यह हमारी बर्बरताओं के अवशेष हैं, और यह तो रहेंगे, क्योंकि मैं स्वयं यह व्याख्या करते हुए भी तो एक युग-सीमा में बँधा हुआ हूँ और निरंतर मनुष्य इसी प्रकार अपनी मूर्खता को बुद्धि-मत्ता कह कह कर प्रसन्न हुआ करेगा। यहाँ विज्ञान के स्पुत्निक का आविष्कार दिखा कर भी मुझे डराया जाता है कि तुम मनुष्य के विकास में आस्था नहीं रखते, तुम निराशावादी हो, लेकिन मैं बता दूँ कि पत्थरों की रगड़ से आग निकालने वाला आदिम आविष्कारक भी उतना ही महान था, जितना आज का स्पुत्निक निर्माता है, अतः विकास यानी बीतते समय में ही हर अगली मंजिल जो पुरानी की विरासत पाती है, मैं उसे भी देखता चलता हूँ। जुंग ने मस्तिष्क में सामूहिक चेतना की बात की थी, परन्तु मैं समाज में उसे बहुत स्पष्ट देखता हूँ।

इसी विकास को मैं सामने रखता हूँ। जितना अधिक प्रकृति को जान रहे हैं, उतनी ही प्रकृति की अपरिमित शक्ति हमारे सामने प्रकट होती जा रही है। हमारे जानने न जानने से प्रकृति को लगाव नहीं। हम केवल उसकी अपार शक्तियों को समझ रहे हैं। जितना समझते हैं, उतना ही उसे काम में लाने का यत्न करते हैं। किन्तु जितना ज्यादा समझते हैं हम, उतना ही उसका रहस्य भी फैलता नजर आता है। हम अणु परमाणु के विभिन्न रूपों का संघटन मात्र देखते हैं, हम केवल यही जान पाये हैं कि इस भौतिक में विचित्र प्रकार की शक्तियाँ हैं। जैसे भेड़िये के पास पलने वाला मानव-शिशु कुछ नहीं जानता, परन्तु मनुष्य-समाज में आने पर जब सीखता है, तो बहुत कुछ जानने लगता है। इसी प्रकार हम भी जानते जा रहे हैं। क्या किसी दिन मनुष्य जानते-जानते सृष्टि का असली रहस्य भी जान लेगा? शायद जान ले। निश्चय ही मनुष्य सृष्टि के बहुत व्यापक विस्तार में बहुत छोटी जगह रहता है। वह जानेगा भी तो तब, जब कम से कम हमारी पीढ़ी नहीं रहेगी। अगर अब ग्रहों की यात्रा भी प्रारंभ हो गई तो जैसे अमेरिका की खोज हो गई थी, वैसे ही नई-नई जानकारियाँ हासिल हो जायेंगी। यह तो हुआ धारा का रूप। परंतु हर धारा में बूँदें होती हैं, और व्यक्ति उस धारा यानी समाज की बूँद है। व्यक्ति सदैव अपने को केन्द्र बनाकर समाज को देखता रहा है, और देख रहा है।

प्राचीन पौराणिक चिंतन में केवल यथार्थ को ही नहीं लिया जाता था, वरन् वहाँ मनुष्य अपनी कल्पना को भी स्थान देता था, कल्पना उसको अपने व्यक्तित्व से अभिन्न प्रतीत होती थी।

मिस्र, भारत, मैसोपोटामिया में यह माना जाता था कि सृष्टि प्रलय के वारि से निकली थी। मिस्र में यह आदि अप्‌ (जल) पुरुष रूप में नून देवता माना जाता था। मैसोपोटामिया में आदि अप्‌ को तइमात देवी के रूप में माना जाता था। भारत में भी तइमात की उपासना वेद में मिलती है। पृथ्वी के विषय में भी मिस्र, मैसोपोटामिया और भारत में भिन्न धारणायें रहीं। मैसोपोटामिया में वह महामाता थी। मिस्र में उसे पुरुष माना जाता था। भारत में महामाता के रूप के अतिरिक्त उसे अंड का भी रूप माना गया। मातृसत्ताक समाज की परम्परा में सृष्टि का क्रम स्त्री से चलता है, परन्तु पितृसत्ताक में वह क्रम या तो पलट जाता है, या उसमें हमें मिश्रण मिलता है, जैसे एक ही कश्यप के साथ विभिन्न रूपों में स्त्रियाँ मिला दी गई हैं। भारत के बारे में यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि हमारी एक परम्परा के नाश पर दूसरी नहीं उठी, वरन् एक के बाद एक आपस मे घुलती गई। तभी वैदिक, उपनिषदीय और पौराणिक चिंतन सब मिल गये हैं, और विभिन्न जातियों के विश्वासों के मिलन से बहुत बड़ा सम्मिश्रण हमारे सामने आता है। मिस्र और मैसोपोटामिया में परम्पराएँ रूप बदलती गई हैं। इसलिए जहाँ वहाँ हमें जीवन का एक अन्त मिलता है, यहाँ हमें पुनर्जन्म की विचित्र धारणा भी दिखाई देती है। यहूदी चिंतन में परमात्मा का सृष्टि से कोई तादात्म्य नहीं है। वहाँ परमात्मा 'केवल पवित्र, पर है, सबसे ऊँचा है।' क्या है, यह कोई नहीं बता सकता। जो कुछ है, वही है। परमात्मा के सामने वहाँ मनुष्य और प्रकृति का कोई महत्त्व ही नहीं है। कड़ी पितृसत्ता में, बद्दू जीवन में, इस तरह का शुष्क और कठोर चिंतन ही जन्म ले सकता था और इसी तरह का चिंतन हमें अरब के रेगिस्तान के दार्शनिक मुहम्मद पैगंबर में भी मिलता है। रेगिस्तान में प्रतीक कम होते हैं और जीवन बहुत कठिन और शुष्क होता है। अदृश्य भगवान के सिवाय वहाँ रक्षक कौन है? अरबों का अल्लाह तो इलहु (चन्द्रमा) का ही प्रकारान्तर से विकास है। चन्द्रमा ही रेगिस्तान में एकमात्र शांति देने वाला होता है।

मनुष्य का चिंतन समयानुसार बदलता है। इसी तरह लोग उपनिषदों के अध्ययन से अनीश्वरवादी बने और मनुष्य पहुँचा विज्ञान के अध्ययन में और

उसने यह धारणायें बनाई हैं विज्ञान का अनीश्वरवाद पढ़ कर। ऐसा परिवर्त्तन समाज में हुआ, इसलिये कि उसका ढंग नया है। पढ़ना या जानना, दो ऐसे काम हैं, जिन्हें किसी पूर्वाग्रह से प्रारम्भ नहीं करना चाहिये। वस्तु का अध्ययन करने के पहले यह धारणा नहीं बनानी चाहिए कि हमें अमुक वस्तु प्रमाणित करनी है, उसके लिए तथ्य ढूँढ़े जायें। अच्छा यह है कि पहले तथ्य एकत्र किए जायें और तब उनका अध्ययन करके निष्कर्ष की ओर प्रेरित होना चाहिए।

भारत में हमारे सामने आस्तिक और नास्तिक दो भेद हैं।

(१) आस्तिक दो प्रकार के हैं—

[अ] ईश्वरवादी

[आ] अनीश्वरवादी।

आस्तिक वह है जो कि वेद को प्रमाण मानता है।

(२) नास्तिक दो प्रकार के हैं :—

[अ] ईश्वरवादी

[आ] अनीश्वरवादी।

जो वेद को प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता, वह नास्तिक है। वह ईश्वर को मानने पर भी नास्तिक ही माना जाता है, जैसे अघोर इत्यादि के लिए भी नास्तिक कहा गया है। बौद्ध, जैन और चारवाक मतों में आपस में गहरा भेद है, फिर भी इन तीनों को एक ही वर्ग में रखा गया था।

समाज में ईश्वर से भी अधिक भारत में वेद-प्रामाण्य को महत्त्व दिया गया था। एक विशेष संस्कृति को मानना संभवतः इसका पर्याय रहा हो। किंतु वेद का महत्त्व घटने के बाद ईश्वर को अधिक महत्त्व मिलने लगा।

ईश्वर का जन्म कैसे हुआ ?

जब मनुष्य ने यह जानने की कोशिश की कि वह कैसे जन्मा, यह सृष्टि क्या है, तब उसने व्याख्या की। उसकी सारी व्याख्या आदिमकाल से अब तक उसके ज्ञान पर आश्रित है। किसी युग विशेष में मनुष्य अपने चारों ओर के जगत् को कितना समझ पाया है, यही उसने अपने दृष्टिकोण से अभिव्यक्त किया है, इसीलिये उसने भिन्न युगों में भिन्न दर्शन प्रस्तुत किये हैं। परन्तु हमारी परम्परा में क्या दोष है ? हम किसी एक परिस्थिति में पैदा हुए दर्शन और नैतिक विचारों को अपना अटल मानदण्ड बना लेते हैं और

अटके रहते हैं। इस अटकन ने दो दृष्टिकोण दिये हैं। एक ईश्वर की सत्ता को मानना है, दूसरा उसे नही मानना। दोनों ही के मूल में मनुष्य के अहंकार की ही प्रकारान्तर से अभिव्यक्ति होती है। सृष्टि को कोई चलाता है, या नही चलाता, अभी तक इसे हम नही जानते। यह सृष्टि सचमुच उससे कहीं अधिक विराट और चमत्कारपूर्ण है, जितना हम अभी तक समझ पाये हैं। जिसे हम समझ लेते हैं उसे बडे संतोष से कहते हैं कि यह तो प्रकृति का नियम है, जिसे नही समझते उसके लिये कहते हैं—यह रहस्य है या इसे भी हम जान लेंगे या यह व्यर्थ है। ईश्वर का जन्म मनुष्य के उस अज्ञान से होता है, जिसमें वह निरन्तर जानने का प्रयत्न करता है और अपने अधूरे ज्ञान को पूर्ण समझने की मूर्खता करता है। मैं तो आज तक नही समझ सका कि बौद्धिक दासता का युग कब समाप्त होगा। आज हम धर्म को राज्य से अलग करके रखना चाहते हैं। अर्थात् राजनीति आज धर्म-निरपेक्ष हो गई है। वस्तुतः धर्म है, सत् और न्याय मार्ग पर चलना। यही प्राचीन लोगों की धर्म के बारे में प्रगट हुई राय है, जो महाभारत में बिल्कुल स्पष्ट हो गई है। इसीलिये सत् और न्याय मार्ग पर चलना हर युग में एक ही मानदण्ड से स्थिर नही हो सकता—यह भी कहा गया है। सत् और न्याय की एकमात्र कसौटी मनुष्य का सुख है, और इसीलिये उदात्त भावना में यही माना गया है कि जिससे अधिक लोगों को सुख हो, वही ठीक मार्ग है। किंतु अब धर्म का यह अर्थ नहीं लिया जाता। किसी संस्कृति-विशेष से अनुराग, किसी एक भाषा-विशेष के ग्रंथ की ओर पूज्य भावना, किसी एक दार्शनिक या कुछ दार्शनिकों की विचारधारा के प्रति आदर भावना को धर्म माना जाता है। आज संप्रदाय को धर्म कहा जाने लगा है, जो ठीक नहीं है। भारतीय मनीषियों ने इस पर बहुत सोच-विचार किया था। गीता में कहा गया है कि अपने धर्म में रह कर मरना भी भला है, दूसरा धर्म तो बड़ा भयानक होता है। किंतु गीता में जब यह कहा गया तब धर्म का अर्थ ही और था। कृष्ण ने अर्जुन को जब युद्ध से विरत देखा और अर्जुन ने कहा कि वह युद्ध जैसा क्रूर कर्म नहीं करना चाहता था, तब कृष्ण ने कहा था कि तू समाज में क्षत्रिय है, और क्षत्रिय का काम लड़ना है अतः युद्ध कर। इस तरह धर्म का अर्थ था पेशा निभाना। हमारे इतिहास के सारे सामन्तीय काल में धर्म को पेशे से मिला कर ही देखा गया, क्योंकि खेतिहर समाज में पेशा समाज की गठन था। आज भी जब चमार खाल उधेड़ने से एतराज करते हैं, तब ठाकुर लड़ने लगते हैं, क्योंकि समाज में गड़बड़ फैलती है। अब पूंजीवादी प्रभाव में दर्जी का लड़का किताब की

दुकान खोल लेता है और इस तरह धर्म तो वह छोड़ देता है मगर अपने संप्रदाय के उपासना-पक्ष को पकड़े रहता है।

यों स्पष्ट होता है कि जो धर्म को संप्रदाय मानता है वह समाज के नैतिक पक्ष को नही जानता। किसी संप्रदाय विशेष में ही अपने जीवन को नष्ट करना बौद्धिक दासता का चिन्ह है। पुराने हिंदुओं में अनेक संप्रदाय थे वैष्णव, वैदिक, जैन, बौद्ध, शाक्त, पाशुपत, शैव, इत्यादि। इन सब संप्रदायों के लोग भारत में रहते थे और इनके रीतिरिवाजों में कुछ चीजें एकसी थीं। वह इनकी संस्कृति थी। यद्यपि यह सब आपस में झगड़ते थे, फिर भी यह सिद्धांत मान्य था कि सबको ही जीने का अधिकार है। इन सारे संप्रदायों में अलग अलग चीजें थीं। कहीं ब्रह्मचर्य, कहीं योग, कहीं भोग, कहीं तपस्या, कहीं ईश्वर, कहीं अनीश्वर, कहीं आत्मा, कहीं अनात्म—ऐसे वाद माने जाते थे। हजार भेद थे, फिर भी सबसे बड़ा सत्य माना गया था—व्यक्ति की निष्ठा का वह उदात्त रूप जिसमें वह लोक का अधिकाधिक कल्याण कर सके। भारतीय मनीषा ने इस पर ज्यादा जोर नही दिया कि व्यक्ति की दार्शनिक विचारधारा क्या है। उसे इतना महत्व नहीं दिया गया, जितना कि व्यक्ति के आचरण को। किन्तु भारत में जो यह विकास हो रहा था, जो मानववादी विचारधाराएँ बढ़ रही थीं, उन्हें पश्चिम के वेगवान आक्रमणों ने जड़ बना दिया। इस्लामी अरबों ने आकर कहा कि मुहम्मद पैगम्बर सृष्टि का पहला और अंतिम विचारक है। अतः वही सर्वश्रेष्ठ है। उससे आगे कुछ नहीं। इसके अतिरिक्त इस्लाम ने एक नये समाज का ढाँचा दिया। उसमें अरबी संस्कृति का पुट था। अरबी भाषा की कुरआन को ही ईश्वर की वाणी बताया गया। भारतीयों की समझ में यह ही नहीं बैठा, आखिर ईश्वर ने अरबी में ही क्यों संदेश दिया। सम्राट अकबर भी मुल्लाओं की कट्टरता पर हँसा करता था। इसी तरह ईसा जैसे महान व्यक्ति के नाम पर यूरोप में बौद्धिक दासता का एक और युग प्रारम्भ हुआ जो १००० ई० में टूटने लगा।

क्या यह हमारे लिये एक विचित्र बात नहीं है कि हम अभी तक अपने से २००० या १५०० बरस या और भी पुराने आदमियों की कही हुई बातों को ही अपने चिंतन का मूलाधार बनाये हुए हैं। हमने मानवीय मूल्यों के आधारों में क्या उन्नति की है? क्या जरूरी है कि हम लकीर के फकीर बने रहें।

कि जब आदमी यह सोच लेता है कि बस यही अंतिम मार्ग है तब वह

बौद्धिक दासता का नया युग प्रारम्भ करता है। अपने को अच्छा यानी सत् कहना, अपने विचार को सन् धर्म यानी ठीक धर्म कहना बुद्ध की बात नहीं, अबुद्ध की बात है। जब तक जैन चिनन में नये नये विचारों के आगमन को स्वीकार किया गया, वह अच्छा रहा, पार्श्वनाथ तक यही हाल रहा। महावीर जैसे महान व्यक्ति ने इस परम्परा को और बढ़ाया। परन्तु महावीर के बाद उनके शिष्यों ने जैन चितन की प्रगति को रोक कर जड़ बना दिया। गुरु "प्राय:" अच्छा होता है, क्योंकि वह सोचता है, और सहिष्णु भी होता है, परन्तु चेले तो सदैव ही अनर्थ करने हैं, क्योंकि वे सोचने ही नहीं। ठीक वैसी ही जैसे ईसा के बाद पीटर और पॉल ने की थी।

मार्क्स का चितन भी बौद्धिक दासता का अधुनातन मार्ग है और उसने 'वैज्ञानिकता' के नाम पर संसार के बहुत बड़े भाग पर अपना कुछ दिन का अधिकार भी कर लिया है। शोषणहीन समाज बनाना और बात है, बौद्धिक जड़ता और चीज है। जनवाद के नाम पर बुद्धिवाद को वर्गवाद कह कर उसका गला घोंटना वैसा ही है, जैसे पुराने जमाने में पोपवाद के विरोधियों को धर्महीन कहने की प्रणाली थी।

मनुष्य की नई संस्कृति नयी बात चाहती है। प्राय: हर चितन में कुछ न कुछ भला होता है। सब की ही भली बातें स्वीकार करके बौद्धिक दासता को दूर रखना ही मनुष्य की नयी संस्कृति का विकास करना है। विभिन्न संस्कृतियों को विभिन्न विचारधाराओं से मिला कर उनको पकड़ कर क्यों चला जाये ? वेद, उपनिषद कुरआन, त्रिपिटक, जिंदावेस्ता, पुरानी और नई इंजील, जैनग्रंथ, कैपिटल सभी गहरी किताबें हैं, उन्हें सबको पढ़ना आवश्यक है, परन्तु इनमें से किसी को भी 'अन्तिम' कहना तो बौद्धिक दासता का ही नाम है।

इस बौद्धिक दासता के कारण क्या होता है ? हम जड़ हो जाते हैं। आज के वैज्ञानिकों में इस जड़ता के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ हुआ है और यह हर्ष का विषय है। सारे पैगम्बरों के सामने एक 'यूटोपिया' का निर्माण रहा है, सारे संसार को अपने दृष्टिकोण से सुखी बनाने का स्वप्न रहा है। मार्क्स ऐसा अधुनातन यूटोपियावादी था। उसने सोचा था कि वर्गहीन समाज में मनुष्य का अहंकार नष्ट हो जायेगा और यश और अधिकार की भूख भी मिट जायेगी। मुहम्मद ऐसा ही यूटोपियावादी था, जिसने सोचा था कि इस्लाम के फैलाये जाने से संसार से घृणा दूर हो जायेगी। बुद्ध भी ऐसा ही यूटो-

पियावादी था जिसने सोचा था कि भिक्षु दार्शनिक-संघ बन जाने से लोक सुखी हो जायेगा।

प्रश्न है कि लोक सुखी कैसे होगा ? मार्क्स ने कहा था—आज तक के दार्शनिकों ने लोक की जो व्याख्या की है, हम उसे बदलेंगे। सचमुच मार्क्स के अनुयायियों ने लोक को बदला। नया रूप सामने रखा। गरीबी मिटाई, वर्ग-हीन समाज का ढाँचा खड़ा किया। लेकिन एक कमी रह गई। अन्ततोगत्वा राज्य एक 'गुट्ट' बना और इस प्रकार बौद्धिक दासता का नया युग प्रारम्भ हुआ। विनोबा भी लोक को बदलने चले हैं। यह साधुदल भी उसी जोश से अपना काम करना चाहता है, जिस जोश से बुद्ध ने किया था। परन्तु अपरिग्रह की यह प्रणाली उसी बौद्धिक दासता के नये युग का प्रारम्भ है, जिसे ईसाई संप्रदाय ने लोक में प्रतिष्ठापित किया था।

आज तक मनीषियों के इतने सोचने के बाद भी लोक सुखी क्यों नहीं हुआ ? क्योंकि 'वीर नायक पूजा' (Hero-worship) ही मनुष्यों के समुदाय में प्रमुख रही है। इस बात में आदमी हाथियों जैसा ही है। 'हेड़' की भावना उसमें अभी तक है और वह बौद्धिक दासता का ही प्रतीक है। मनुष्य में जब तक यह मूर्खता रहेगी कि वह किसी 'एक' बुद्धिमान के ही पीछे चलेगा और 'बाकी' विद्वानों का मूल्य नहीं करेगा तब तक वह सुखी नहीं होगा।

इतिहास क्या कहता है ?

वह कहता है कि पहले मनुष्य जंगली (savage) था। तब उस समय जब कबीलों में लड़ाई हुई चरागाहों के पीछे, दासता प्रारंभ हुई।

दासता यद्यपि बुरी थी लेकिन उसमें एक अच्छाई भी थी कि मनुष्य ने मनुष्य की हत्या नहीं की, उसे जीवित रखा। जब मनुष्य दास नहीं बनाता था तब वह उसका वध कर दिया करता था।

दासता में दूसरा लाभ हुआ कि मनुष्य की उत्पादन शक्ति बढ़ी। दासता यानी बर्बर युग का भी आखिर अंत हुआ।

दास स्वतंत्र हुए और कमकर खेतिहर यानी भूमिबद्ध किसान यानी सर्फ बने। इसमें दासत्व हटा और किसान पहले से अधिक स्वतंत्र हुआ, और पुराना स्वामी अब सामंत बना। दूसरा लाभ हुआ कि उत्पादन शक्ति फिर बढ़ी। परंतु अंत में बुराई ही रह गई और सामंत का भी अंत हुआ और भूमिबद्ध

किसान मजदूर यानी प्रोलतारी बना। सामंत 'जन्म कुलीनता' पर श्रेष्ठता पाता था, उसकी जगह पूँजीपति ने ली।

इसके बाद वर्ग-समाज का अंत किया गया और जनता के प्रतिनिधियों ने शासन सँभाला, जो पूँजीपति नहीं थे। मजदूरों का राज कहलाने लगा और उनकी ओर से 'कुछ लोग' शासन करने लगे, किन्तु इसमें भी दोष यह रहा कि 'कुछ लोग' हावी हो गये और 'उनकी बात' को 'सबकी बात' मान लिया गया।

विकास का यह क्रम बताता है कि —

हम जंगली समाज में वनौकस यूथ से पितृसत्ताक समाज में आये तो दल पर व्यक्ति का शासन हुआ। यह पिता आगे चलकर दास युग में राजा बन गया। दल हुआ प्रजा और दास। दास युग में ही हलचल हुई। एक व्यक्ति की जगह कई उच्चवर्गीय लोगों ने सत्ता हथिया ली और गण स्थापित किया। वह गण टूटा तो फिर व्यक्ति अर्थात् सामंत का शासन हुआ। इस बार उसके अधिकार पहले से कम हुए, और प्रजा—दास को अधिक अधिकार मिले और वह हुई प्रजा-भूमिबद्ध कृषक यानी सर्फ। इस युग के बाद धनीवर्गीय पूँजीपतियों ने इस सामंत को गिराया और अपना गण बनाया जो मौजूद है, और प्रजा को और अधिक अधिकार मिले। रूस और चीन में इस धनीवर्गीय पूँजीपति गण को हटाकर एक राजनीतिक दल ने सत्ता हथिया ली और प्रजा को और अधिक अधिकार मिले, किन्तु वह राजनीतिक दल अधिनायकत्व की ओर अग्रसर हुआ। मार्क्स ने इस क्रम को नहीं देखा। यह द्वन्द्व भी इतिहास में साथ-साथ चलता आया है। जब व्यक्ति के हाथ में शक्ति का केन्द्रीकरण अधिक हुआ है तब लोक ने शक्ति को छीना है और जब लोक के हाथ में शक्ति आई है तब वह फिर व्यक्ति के हाथ में लौटी है, यद्यपि हर बार लोक के अधिकार पहले की तुलना में बढ़े हैं।

यही कारण है कि इतिहास में आज की शासन-व्यवस्थाओं के रूप को अंतिम रूप नहीं माना जा सकता। जनवादी रूस में जनवाद के नाम पर स्तालिन किस प्रकार अधिनायक था, यह स्वयं रूसियों ने ही प्रगट किया है, जो बताता है कि उनकी सारी जनवादी व्यवस्था में भी व्यक्ति आसानी से अधिनायक बना रह सकता है।

और इसका कारण क्या है?

हम जिस दुनिया में रहते हैं उसमें कुछ पुराने लोगों की विचारधाराओं को पकड़ कर करोड़ों आदमी चले जा रहे हैं। बुद्धि-दासत्व अखंड है। आज तक का मानव-इतिहास वीरनायक-पूजा का इतिहास है, जिसमें बुद्धि का दासत्व रहा है।

विज्ञान ने प्राचीन मनीषियों के चिंतन को विकसित किया है और बताया है कि कोई भी मनुष्य अंतिम विचारक नहीं है। हमें तो सारी मनुष्य जाति—विश्व परिवार—की मनीषा को छानकर नये मानदण्ड बनाने हैं और मैं समझता हूँ कि उसमे ही यह असहिष्णुता और जड़वाद नष्ट हो सकता है।

किन्तु यह सहज कार्य नहीं है। संस्कृति की व्यापकता के पीछे कुछ रूढ़ियाँ भी काम करती हैं और वे सदैव इसमें अड़ंगा डालती हैं। वैसे हर्ष का विषय है कि इस ओर भी विद्वानों की दृष्टि जा रही है। मनुष्य का विकास कितना हो चुका है और कितना और होना है। मनुष्य के मस्तिष्क में कितनी शक्ति है, उसका अनुमान होने पर ही अब बात आगे चल सकेगी।

आदिम समाज से मनुष्य के विकास की मंजिलें बताती हैं कि मनुष्य ने निरंतर अपने मस्तिष्क का ही विकास किया है। संस्कृति का विकास मनुष्य के चिंतन और उसके भाव पक्ष की सौंदर्य्यानुभूति का ही विकास है। वह निरंतर अपने भीतर के भय को दूर करने की चेष्टा कर रहा है। उसके ईश्वर, उसके न्याय की भावना और सामंजस्य की चेष्टायें, वस्तुतः इसी की वाह्याभि-व्यक्तियाँ मानी जा सकती हैं।

भारत ने सर्वप्रथम इस विषय को अपनाया था, और इसका एकांग विकास एक प्रकार से भारत को भौतिक सिद्धि के प्रति उदासीन भी कर गया। किन्तु यह विद्या अब पश्चिम में लोगों को आकर्षित कर रही है। कुछ वर्ष पूर्व जे. बी. राह्‌ईन ने टैलीपैथी पर वैज्ञानिक अनुसंधान किया था और मनुष्य के मस्तिष्क की पहुँच पर नया प्रकाश डाला था। इधर उसने एक नयी किताब दी है जिसने नई धारणाओं को बहुत सहारा दिया है और वैज्ञानिक ढंग से।

इतिहास में बहुत से महापुरुष अपने जीवन को एक बहुत ही ऊँचे स्तर पर व्यतीत कर गये हैं और उन्होंने मनुष्य की पीढ़ियों को एक बड़ी शक्ति दी है। ईसा, बुद्ध, महावीर इत्यादि ऐसे ही लोग थे। कबीर और तुलसी भी ऐसे ही थे। इन लोगों ने व्यक्तित्व के क्षुद्रत्व के ऊपर उठकर अपने आदर्शों के अनुकूल जीवन निर्वाह किया। काफी सीमा तक महात्मा गांधी में भी ऐसी

बात थी। किन्तु मानव-मन के भाव पक्ष में शाश्वत मूल्यों की उठान तक जीवन को पूर्ण तादात्म्य के साथ निबाह जाना नैतिक प्रेरणा देने वाला मानव सत्य का आधार है, उसके लिये वैज्ञानिक जानकारी की शक्ति होना आवश्यक नहीं है। ईसामसीह के बारे में ही कहा जाता है कि उसे भविष्य का भी पता रहता था। इसी तरह अनेक महापुरुषों के द्रष्टा होने की बात सुनाई दी है। परंतु ईसामसीह का बौद्धिक ज्ञान एक विषय में कोपरनिकस और आइन्स्टाईन से कहीं कम था कि यह संत महात्मा पैगम्बर द्रष्टा होते हुए भी प्रकृति के वाह्य कार्य्य व्यापार के बारे में कम जानते थे। देखा तुमने? विश्वास की उठान तक पूरी लगन से जीकर दूसरों के सामने नैतिक प्रेरणा रखना और बात है, प्रकृति के कार्य्य व्यापार को जानना दूसरी बात है। उन्होंने जीवन के शाश्वत रहस्य को एक अविच्छिन्न प्रवाह की इकाई के रूप में पहले मूल रूप में स्वीकार कर लिया तथा उसको जीवन के मानवीय दृष्टिकोण से पूर्णतः समन्वित करने की चेष्टा की है। नया वैज्ञानिक उस इकाई के शतशत रूपों को देखता है, परंतु वह अंततोगत्वा उस इकाई के सिद्धांत को ही विविध रूप से प्रगट करता है। अब पहले उसे ही कहूँ।

राहु ईन ने जीवन के एक अंधेरे पक्ष को छुआ है। आदिम काल से ही मनुष्य मृत्यु, आत्मा, परमात्मा इत्यादि के बारे में सोचता रहा है। ईश्वर-वादियों ने इन सबको परमात्मा की सृष्टि की विचित्रता के रूप में स्वीकार किया है। वे इस सबसे अधिक प्रभावित भी नहीं होते। संत महात्माओं की अक्सर ऐसे भूतप्रेतों से टक्कर होती रही है, जिन्हें उन्होंने अपने ईश्वर-विश्वास से ऐसे ही दबा लिया है, जैसे स्वामी किसी दास को दबा लेता है। भूत वैसे खतरनाक चीज मानी जाती है। आइन्स्टाईन को, शायद, अगर भूत से मुकाबला करना पड़ता, और ऐसे भूत से जो सापेक्षतावाद की थ्योरी का कोई मूल्य नहीं समझता, तो क्या जाने क्या होता! लेकिन ईसा से जो भूत टकराया, सो चारों खाने चित्त आये। यह भूत प्रेत क्या हैं? इनको बहुतेरे नहीं मानते। परंतु ईश्वरवादी प्रायः मानते रहे हैं। नास्तिकों में चार्वाक भूत को नहीं मानता था, क्योंकि वह आत्मा को ही नहीं स्वीकार करता था। जैन-चिंतन यद्यपि कर्त्ता के रूप में ईश्वर को नहीं मानता परंतु प्रकृति के बहु प्रकार के कार्य्य मानता है। बौद्ध यद्यपि आत्मा को भी नहीं मानते परंतु इस विषय में प्रकृति के वैविध्य रूप कार्य्य व्यापार को अवश्य मानते हैं। जोरोस्टरवादी, यहूदी, मुसलमान, वैदिक धर्मावलम्बी, शैव, वैष्णव, शाक्त इत्यादि आत्मा को मानते हैं। समस्त मतों में मृत्यु के बाद आत्मा-विषयक मान्यता है, यह

जरूर है कि सिर्फ भारत में आत्मा से पुनर्जन्म की बात जुड़ी हुई है। बड़े आश्चर्य की बात है कि सिवाय भारतीय चिंतन के किसी ने भी पुनर्जन्म के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया, जब कि हर जगह के संत अपनी-अपनी जगह दृष्टा थे। परन्तु सब मत यह मानते हैं कि जैसे संसार में एक मनुष्य योनि है, इसी प्रकार अन्य योनियों के रूप में और भी लोग हैं—देवदूत, फरिश्ते, विद्याधर, देवता, भूत, पिशाच, ब्रह्म राक्षस और न जाने कितनी योनियाँ हैं, जो सम सामयिक रूप से रहती हैं और बहुत कम लोग उनसे संबंध रख पाते हैं। थियोसोफी वाले भी इसी तरह की बातें मानते हैं। योग पंथ में भी सिद्धियों के द्वारा भूत प्रेत यक्षिणी वश में किये जाते हैं, परन्तु इस प्रकार की सिद्धि को योग मार्ग में बहुत ऊँची बात नहीं माना जाता। योग मार्ग व्यक्ति के पूर्णोत्थान को इस प्रकार की छोटी चीजों से बहुत ऊपर मानता है।

राह्ईन ने इस सारे क्षेत्र को नये ही ढंग से देखा है।

वह पूछता है: हम मनुष्य क्या हैं? तुम और मैं? कोई नहीं जानता। मनुष्य के बारे में बहुत कुछ जाना जाता है, किन्तु उसका मूल स्वभाव (प्रकृति) —क्या है जो उससे ऐसा कराता है जैसा कि वह करता है—अभी तक एक गहरा रहस्य है। विज्ञान अभी व्याख्या नहीं कर सकता कि मनुष्य का मन क्या है, वह उसके मस्तिष्क में कैसे काम करता है? कोई यह जानने का ढोंग नहीं करता कि चेतना कैसे पैदा होती है? विचार किस प्रकार का प्राकृतिक कार्य्य व्यापार है। इस विषय में तो एक 'थ्योरी' भी नहीं बन पाई है। स्वयं ज्ञाता के ही विषय में ऐसा अज्ञान हो, इस पर तो विश्वास भी नहीं होता। विज्ञान ने अनेक महान दिशाओं में हमारी सीमाओं को बहुत ही सफलता से विस्तृत किया है। उसने ध्रुवों की खोज की है, पृथ्वी की ऊँचाइयों और गहराइयों को मापा है, पदार्थ के तत्त्वों की परख की है। सुदूर—बहुत दूर के नक्षत्रों के बारे में बताया है, अणु में से भी शक्ति खींच निकाली है। और उसने अनेक भयानक रोगों की भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म जानकारी प्राप्त की है। किन्तु सबसे बड़ा सवाल तो उसने छुआ ही नहीं, केन्द्रीय प्रश्न अभी तक साफ नहीं हुआ।

राह्ईन की बात विचार प्रेरक है। प्राचीन पंथियों के मतानुसार इस प्रकार की तर्क पद्धति मनुष्य को देह-पूजा की ओर सीमित करती है। प्राचीनतावादियों का कहना है कि ऐसा तो पहले भी हो चुका है। उनके

अनुसार आज के विज्ञान का यह विकास आसुरी शक्तियों का विकास है, जो आत्मपक्ष को नहीं देखता।

राह्‌ईन पूछता है---यह जो वस्तु नियोजक है। (सृष्टि का) इस मनुष्य का व्यक्तित्व अपना क्या स्थान रखता है? २१वीं सदी के मनुष्य को यह देख कर बड़ा भारी आश्चर्य होगा कि मनुष्य ने इतने दिन तक इस विषय पर वैज्ञानिक अनुसंधान नहीं किया। उसने इस समस्या को नही देखा कि वह स्वयं क्या था। बजाय इसके कि 'हम क्या हैं' इसका हम ज्ञान प्राप्त करते, हमने विश्वास बना रखे हैं। हमारी अपनी मान्यताएँ हैं और धारणाएँ हैं। प्रायः हममें से बहुतों ने बचपन में यही शिक्षा पाई कि मनुष्य के दो भाग थे—एक उसका भौतिक शरीर और दूसरा उसका अ-भौतिक मन अथवा आत्मा। आत्मा शासन करने वाला भाग और शरीर एक घर और उस आत्मा का एक साधन-मात्र। कभी कोई मौत हो गई तो बात दूसरी थी मगर वैसे 'सिर्फ' गिरजे जाने के दिन इतवार को ही आत्मा की बातें होती थीं। वैसे हर रोज मन शब्द का प्रयोग इच्छा के रूप में होता था। और गहराई से इस तरह के भेद पर हम विचार भी करते थे। किन्तु जब व्यक्ति बड़ा होता है, विज्ञान पढ़ता है, तब उसे शरीर की ग्रन्थियों के उन नियमों के विषय में ज्ञान होता है जो उसके भीतर काम करते हैं, उसे पता चलता है कि मस्तिष्क की बनावट का उसकी बुद्धि तथा उसके चिंतन से गहरा संबंध होता है, तब उसकी पुरानी धारणा हटने लगती है और यह नयी धारणा उसके सामने खड़ी हो जाती है।

मस्तिष्क का अध्ययन तो नितांत भौतिक विज्ञान के पक्ष से होने वाली बात है। जिन शिरातंतुओं और रंध्रों से उसका निर्माण हुआ है, वे इस संसार के ही भूततत्त्व और शक्ति के मार्ग हैं। किन्तु मन क्या है? वह ऐसा सुलझा हुआ नहीं है। वह कोई ठोस वस्तु नहीं, वह तो मस्तिष्क का एक कार्य-कलाप है।

किन्तु इस दूसरे दृष्टिकोण से भी समस्या वस्तुतः सुलझती नहीं। आज यह निर्णय होना है कि व्यक्ति के अपने जगत का केन्द्रीय अधिकारी कौन है—उसका आत्म मूलक अनुभव करने वाला मन या उसका बाह्याधार मूलक भौतिक तत्त्व निर्मित मस्तिष्क। इसका निर्णय केवल अनुसंधान और शोध के बल पर हो सकता है।

राह्‌ईन की यह बात सचमुच एक नया प्रश्न है, और इससे हमारे सामने

नयी समस्या आती है और चूँकि अभी तक यह गंभीर रहस्य है, जो कुछ इसके बारे में जाना गया है, वह एक आंशिक सत्य है, इसलिये कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

संस्कृति और विज्ञान इन दो भेदों को व्यक्त करते हैं—हमारे जीवन का केन्द्र क्या है ? मस्तिष्क से चालित हैं हम या मन से ? क्या एक भौतिक है, और अन्य अभौतिक ? या मन केवल मस्तिष्क के भूततत्त्व की एक चेतना है ! वह कैसे बनती है ? यदि मन अर्थात आत्मा भूततत्त्व से निरपेक्ष और परे है और उस पर भौतिक का प्रभाव नहीं है, तो हम उसी परंपरा में जाते हैं कि आत्मा तो शरीर का एक यात्री है, उससे अलग है। दूसरी ओर यदि हम इस बात पर आते हैं, भूततत्त्व से आत्मा चलती है, मस्तिष्क पर ही सबकुछ निर्भर है, तब हम ठीक उसके बिपरीत धारणा बनाते हैं। तो हम ऐसे युग में रहते हैं, जहाँ एक द्वन्द्व चल रहा है। हम और बातों के बारे में तो बहुत कुछ जानने समझने की चेष्टा करते हैं, किन्तु हम अपने ही विषय में कितना कम जानते हैं, और एक प्रकार से अपने पूर्वजों के बनाये विश्वासों पर चलते चले जाते हैं। यदि यह मन मानव-मस्तिष्क के नियमों से ही परिचालित है, तो भौतिक पदार्थों के जो नियम हैं, वही इस पर भी लागू होने चाहियें। तब व्यक्ति से व्यक्ति में बुद्धि का भेद भी शिरातंतु रंध्रों की बनावट का भेद ही होना चाहिये। विज्ञान ने मनुष्य की पुरानी धारणा को खंडित कर दिया। पहले मनुष्य अपने को इतना महत्त्वपूर्ण समझता था कि उसकी राय में यह सारा संसार उसी के लिये बना था। किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वह तो पृथ्वी पर बहुत बाद में आया था, सृष्टि न जाने कब से, न जाने क्यों, यों ही चलती आई है, तो उसके अहं का दर्प नष्ट हो गया। इस नाश के कारण एक बात यह हुई कि उसके नैतिक मानदण्ड भी हिल गये और उसे जीवन के प्रति एक नये प्रकार की निराशा ने पकड़ लिया और यांत्रिक सा लगने लगा उसे यह जीवन। विज्ञान के दर्शन के रूप में मार्क्स का दर्शन उठा, जिसने यह कहा कि वह नवीनतम था, वह शाश्वत था, उससे बढ़कर कुछ भी नहीं था। विद्रोह ने एक नये बौद्धिक-दास युग को जन्म दिया। मनुष्य के प्रयोग, उसके अपूर्ण वैज्ञानिक साधनों की जितनी शक्ति थी, उसी को उसने महत्त्वपूर्ण माना, बाकी सबको व्यर्थ कहकर छोड़ना प्रारम्भ किया। किन्तु मनुष्य की प्रकृति के कुछ कार्यकलाप ऐसे अवश्य थे जो वर्त्तमान विज्ञान सुलझा नहीं सका, क्योंकि वे उसके प्रयोग

के भीतर नहीं आते थे। उसने उनको त्याज्य समझा और उनकी ओर देखने की बजाय उन पर हंस कर टालना शुरू कर दिया।

यह था मनुष्य की चेतना का प्रश्न और उस पर भी कुछ साहसी वैज्ञानिकों ने विचार करना प्रारम्भ कर किया। मान्य सिद्धान्तों की समझ में जो नहीं आता, उस पर भी शोधकार्य होने लगा। चेतना-शोध-संस्था इंगलैंड में पहली बार १८८२ ई० में स्थापित हुई। इसी नयी दिशा में शोध था, मनुष्य के मानस की दिक् काल और भूततत्त्वों के क्षेत्र में—गति। यह क्षेत्र है ब्रह्माण्ड।

सबसे पहले टैलीपैथी पर काम प्रारम्भ हुआ। टैलीपेथी का अर्थ है—एक व्यक्ति के विचारों का दूसरे व्यक्ति के पास पहुँच जाना और इसमें पंचेद्रियाँ किसी प्रकार से भी विचार-वाहन नहीं बनतीं। मैं सोचता हूँ, और कोई अन्य कहीं और ही उस बात को सोचता है। तब यह विचार किया गया कि यदि विचार एक मन से दूसरे मन तक इंद्रियों की किसी प्रकार की सहायता के बिना ही पहुँच सकता है, तो अवश्य ही मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ मस्तिष्क की बनावट से अधिक क्षमता रखती हैं।

टैलीपैथी पर मनुष्य का इतिहास में बहुत प्राचीन काल से ही विश्वास रहा है। किन्तु उस समय विचार वहन करने वाले वे देवता समझे जाते थे, जो कि अदृश्य ही माने जाते थे।

पहले पहल हिप्नोटिज्म के माध्यम से इस विचारवहन की प्रक्रिया के प्रयोग किये गये। डा० ई० आजम ने देखा कि उनकी एक रोगिणी जब हिप्नोटिज्म में वशीभूत रहती थी, तब वह अनबोले विचारों के प्रति भी अपनी पकड़ दिखाती थी। डॉ० आजम ने यह टैस्ट लेने शुरू किये कि वह स्त्री उन विशेष बातों का अनुभव कर पाती है या नही, जिसका कि वे स्वयं करते थे। उन्होने अपनी रोगिणी को ऐसी जगह बिठाया, जहाँ से वह उन्हें देख नहीं सकती थी। जब हिप्नोटिज्म में डूब गई, तब उन्होंने गंधहीन टेबुल-सॉल्ट खाया और पूछा कि तुम्हें कैसा स्वाद आया? रोगिणी ने तुरन्त ही टेबिल सॉल्ट का स्वाद बताया और नाम भी बता दिया। उन्होंने इस प्रयोग को बार बार दोहराया। एक अन्य प्रयोगकर्त्ता ने इसी प्रकार यह देखा कि दर्द को भी रोगी उस विशेष हिप्नोटिज्म की वशीभूत अवस्था में अनुभव करता था। तब प्रयोगकर्त्ता को जगह जगह नोंचा गया और रोगी ने भी अपनी बेहोशी की हालत में ही वही वही जगह बताई और अपने दर्द बताया।

चार्ल्स रिचेंट ने इस परीक्षण प्रणाली में एक नयी बात लागू की। उसने कहा कि विचार को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने के लिये हिप्नोटिज्म की आवश्यकता नहीं थी। उसने अनेक प्रयोग किये, और शीघ्र ही यह तो स्पष्ट हो गया कि हिप्नोटिज्म और टैलीपैथी दोनों का अन्योन्याश्रय अभिन्न आवश्यक ही हो, ऐसा नहीं था। टैलीपैथीकी सत्ता अलग प्रमाणित हुई।

टैलीपैथी पर तब तो इंगलैंड, अमेरिका, यूरोप में विशेष तथा फ्रांस, स्वीडन, पोलैंड, जर्मनी और रूस में भी प्रयोग किये गये।

ताश के पत्तों से काम शुरू किया गया। एक व्यक्ति दूर बैठ जाता, ताश के पत्ते लेकर। वह पत्ता देखता जाता। विचार पढ़ने वाला रहता दूर। और पहुँचाने का प्रयत्न करता।

यहाँ मैं प्रयोगों के रूप नही गिनाऊँगा। इतना ही कह देना काफी है कि मनुष्य का मन दूसरे के विचार को पढ़ लेता है, यह अब अप्रमाणित नहीं रहा। विचारों का यह आदान-प्रदान आमने-सामने होने की कोई आवश्यकता नही रखता। यह बात सचमुच अजीब है, जो बताती है कि मनुष्य का मस्तिष्क जिन विचारों को जन्म देता है, वे विचार उसके भौतिक तत्त्व पर पूरी तरह आश्रित नहीं होते। किन्तु वर्त्तमान विज्ञान और मनोविज्ञान क्योंकि इस प्रक्रिया को पूरी तरह समझ नही पाते वे इसे कोई महत्त्व नहीं देते। एक ओर यह साफ दिखाई देता है कि यदि मस्तिष्क की बनावट खराब हो तो। मन ठीक होता, और जब यह बात है, तो मन को तो मस्तिष्क की भौतिक प्रक्रिया के अनुरूप चलना चाहिये और जब यह बात नहीं है तो उलझन पड़ती है। मस्तिष्क के शिरातन्तुरंध्र से चेतना का विकास होता है, यह तो विज्ञान जानता है, किन्तु किस रूप में यह प्रक्रिया होती है यह अभी तक अप्रमाणित या अनजानी है। चेतना एक बहुत ही संश्लिष्ट प्राकृतिक वस्तु है। उसे दिव्य कहना असंगत होगा। वह भी भौतिक पदार्थ तत्त्व का ही एक रूप है, किन्तु वह बहुत ही संश्लिष्ट गुणात्मक परिवर्त्तन है। और क्योंकि अभी तक हमारे पास ऐसे साधन नहीं हैं कि उसे पकड़ सकें, इसीलिये हमें मन की शक्ति के इस रूप पर आश्चर्य होता है।

राइईन के अनुसार पहले भौतिक शास्त्री सर विलियम क्रक्स ने यह मत दिया कि संभवतः मस्तिष्क से किसी प्रकार की लहर या विकिरण होता है, जो विचार को एक से दूसरे तक पहुँचाता है। (यह विकिरण मस्तिष्क की वह विद्युत धड़कनें नहीं हैं, परन्तु संभवतः इन्हें रेडियो-लहरों का

सा समझा।) जर्मनी के ओजवॉल्ड का मत था कि मनुष्य में एक चेतना शक्ति होती है जो टैलीपैथी में काम करती है, किन्तु यह शक्ति भी भौतिक शक्ति का ही एक और रूप है। स्विट्जरलेंड के डॉ० ऑगस्ट फोरेल ने टैलीपैथी की थ्योरी समझाने के लिये विस्तार से यह बताया कि परमाणुओं का ही प्रकारांतर से आवागमन होता है। किन्तु इनमें से किसी को भी टैलीपैथी के शोधकर्त्ताओं ने स्वीकार नहीं किया। इनमें से किसी भी भौतिक आधार को अनर्गल समझा गया। ऐन्द्रिय ग्राह्यकता से परे की अनुभूति के तथ्य तो कुछ ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत कर रहे थे कि यह मानना कठिन हो गया कि भौतिक मस्तिष्क ही मनुष्य की चेतना का केन्द्र था। भौतिकवाद को यहाँ चुनौती सी मिली।

ऐन्द्रियग्राह्यकता से (E S P) परे की अनुभूति=ए प अ की ओर जब ध्यान गया तो नयी बात सामने आ खड़ी हुई। पहले से किसी बात का मालूम हो जाना अर्थात पूर्व दृष्टि काल-नियम की अवहेलना है।

एक बार बालिका को लगा कि उसकी माता बीमार पड़ी थी। लड़की की आयु दस साल की थी और वह कस्बे की एक गली में ज्योमैट्री की किताब पढ़ती हुई चली जा रही थी। अचानक उस के चारों ओर का दृश्य लुप्त हो गया, और उसने देखा कि उसके घर के ऐसे कमरे में, जिसे इस्तैमाल में नहीं लाया जाता था, उसकी माँ फर्श पर ऐसी पड़ी थी जैसे मर गई थी। उसे बिल्कुल साफ दिखाई दिया। यहाँ तक कि उसे फर्श पर अपनी माँ से जरा दूर पर गिरा हुआ बेलबूटे की किनारियों से कढ़ा रूमाल भी दिखाई दिया। यह अनुभूति उसे इतनी साफ हुई कि वह सीधी घर न जाकर, तुरन्त डाक्टर के पास चली गई और उसने उसे उसी समय घर चलने के लिये कहा। वह साफ तौर पर तो समझा नहीं पाई, क्योंकि वैसे उसकी माँ खूब तन्दुरूस्त थी और उस दिन तो उस के बारे में यह भी एक बात थी कि वह घर पर थी ही नहीं, बाहर गई हुई थी। फिर भी डाक्टर उसके साथ आ गया और जब वे दोनों घर में घुसने वाले थे कि लड़की का पिता भी घर आ पहुँचा। उस ने डाक्टर को देखा तो तुरन्त पूछा यहाँ कौन बीमार है? लड़की ने कहा माँ बीमार है और तुरन्त उन्हें उस इस्तैमाल में न आने वाले कमरे में ले गई। वहाँ जैसा लड़की ने देखा था, माँ पड़ी थी। कुछ दूर पर ही रूमाल पड़ा था। माँ के दिल पर कोई आकस्मिक दौरा हुआ था और डाक्टर ने बताया कि यदि वह ठीक इस समय न पहुँचता तो संभवतः वह स्त्री जीवित नहीं रहती।

जब सब हो गया तो बातचीत में पिता को पता चला कि जब लड़की घर से चली गई थी, तब माँ को दौरे ने घेरा था। इस आकस्मिक बीमारी के बारे में कोई नौकर भी नहीं जानता था। किसी ने भी इस घटना को घटित होते हुए भी नहीं देखा। इसे ही 'स्पष्ट दृश्य' कहते हैं, और इसे ऐ प अ भी कह सकते हैं।

ऐ प अ घटनाएँ टैलैपैथी घटनाओं की भांति ही होती रहती हैं। इस प्रकार के मनुष्य सब नहीं होते। परन्तु समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने पर लगता है कि ऐसे व्यक्ति प्राचीन काल में भी थे और जादू का विकास बहुत कुछ ऐसे ही लोगों ने किया जिसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा था। किसी भी जाति में अलौकिक चमत्कारों का विश्वास इसी को प्रमाणित करता है, कि वहाँ अवश्य इस प्रकार की शक्तियों को कुछ लोगों में परिलक्षित किया गया था, अन्यथा उस प्रकार की बात लोगों में प्रचलित नहीं हो पाती। योगी थे, इसीलिये योग के बारे में भारतीय समाज में इतने विश्वास पाये जाते हैं।

मनुष्य का मन अन्तराल (Space) की सीमाओं को पार कर जाता है, इसके तो बहुतेरे उदाहरण हैं। अक्सर ऐसी घटनाओं का ज्ञात हो जाना, जिनका कोई साधन नहीं हो सकता, यद्यपि आश्चर्यजनक है, किन्तु असंभव नहीं। यह जो चेतन-परक घटनाएँ हैं, इनसे बहुत कुछ पता चलता है। जर्मन दार्शनिक इमैन्युअल कैंट ने इमैन्युअल स्विडैनबर्ग पर लिखी पुस्तक में ऐसी घटना का उल्लेख किया है। १७५९ में स्विडैनवर्ग ने तीन सौ मील दूर स्टॉकहोम में एक जगह लगी हुई आग का गौटैनबर्ग में वर्णन किया और उस आदमी का नाम भी बताया जिसके घर में आग लगी थी और यह भी बताया कि आग कब बुझी, कई दिन बाद एक राजदूत स्टॉकहोम से आया और उसने इस पूर्व दृष्टि को बिल्कुल ठीक बतलाया।

ऐसी घटनाओं में दूरी का कोई मूल्य ही नही। घटना चाहे कहीं की हो। यद्यपि राह्‌ईन की बताई इन घटनाओं जैसी बातें मैंने भी सुनी हैं, किन्तु सुनी बातों को तो मैं उल्लेख में नहीं ला सकता, क्योंकि उनकी प्रामाणिकता अभी पूरी नहीं मानी जा सकती। इन घटनाओं का स्वप्न,जागरण, किसी भी अवस्था में हो जाना असंगत नहीं है। विचार तो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक हजारों मील की दूरी पर भी वैसे ही पहुँच जाते हैं, जैसे एक ही घर में रहते समय

होता है। कभी कभी अपने किसी प्रिय की मृत्यु का ज्ञान मनुष्य को बहुत दूर पर, हजारों मीलों पर भी हो जाता है।

राइईन के एक मनोवैज्ञानिक मित्र ने बताया कि उसका पुत्र अनेक वर्ष पूर्व जावा (द्वीप) में रहता था। एक बार उसे दक्षिण कैरोलिना (उसके स्वदेश) के नगर में एक शव-यात्रा निकलने का स्पष्ट स्वप्न दिखाई दिया। वह सपना कुछ उस पर ऐसा असर कर गया, कि उसने घर लिख कर पूछा कि उसका क्या अर्थ हो सकता था। जब उत्तर आया तो उसे पता चला कि अचानक ही उसकी माँ मर गई थी और माँ की शवयात्रा जब निकाली गई थी, ठीक उसी समय के लगभग उसको स्वप्न दिखाई दिया था।

एक प्रमुख मन्त्री महोदय जब कुछ वर्ष पूर्व स्विट्ज़रलैंड में यात्रा कर रहे थे उनकी पत्नी को अचानक ही ऐसा कुछ भास हुआ कि शिकागो में उनकी बहन का देहान्त हो गया था। इस तरह के आभास का कोई कारण नहीं था और यह बात इतनी अनर्गल थी कि उन्होने इस बारे में किसी से कुछ कहा भी नहीं। फिर कुछ दिन बाद उनको ऐसा लगा और बड़ी सचाई से महसूस हुआ कि उनकी बहन को दफनाया जा रहा था। इस बार उन्होंने अपने पति से कहा, जिन्होंने उनकी बातों को लिख लिया, हालाँकि उनकी सचाई पर विश्वास नही किया। बाद में जब खबर आई तो बात सच निकली, यहाँ तक कि यह भी ठीक निकला कि जिस जिस दिन उनकी पत्नी ने जो जो स्वप्न देखा, वह उसी उसी दिन की घटना निकली।

एक विशाल विश्वविद्यालय के अध्यक्ष ने एक बार राइईन को एक घटना सुनाई। उनको यह ड्यूटी मिली कि वे एक अमरीकन दंपति को जाकर सूचना दें कि उनका पुत्र चीन में अचानक ही मर गया था। जब उन्होंने यह खबर सुनाई तो मृत का पिता मुड़ा और अपनी पत्नी यानी मृत की माता से बोला, तुम ठीक निकली। कुछ दिन पहले ही मृत की माँ ने अपने पति से कह दिया था कि उनका बेटा मर चुका था। इसका उसी समय माँ को विश्वास हो गया था।

युद्धकाल में ऐसी कई घटनाएँ सुनने में आईं। भूमि की दूरियाँ, पर्वत और समुद्रों के पार घटित हुई बातो का ज्ञान भी इस तरह हो गया कि जैसे वे बहुत पास की बातें हों।

आईन्स्टाइन ने तीनों कालों को सदैव वर्तमान माना है। मनुष्य ही अपनी सीमा के कारण उनका सापेक्ष दर्शन कर पाता हैं। वह ब्रह्माण्ड को एक यन्त्र की तरह नहीं मानता। उसके गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त भी न्यूटन के

गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त जैसा नहीं है । आईन्स्टाइन के मतानुसार गुरुत्वाकर्षण जड़ता का एक भाग मात्र है । सितारों और ग्रहों की गतिविधियाँ उन की स्वभावगत जड़ता से उत्पन्न होती हैं और वे जो मार्ग अपनाते हैं, वे दिक-काल-अखण्डता के वृत्तीय तत्त्वों द्वारा निर्धारित होते हैं ।[1]

विज्ञान के अपने भौतिक नियम हैं । यदि हम उन्हें मानते हैं तो विज्ञान भी रहता है, अन्यथा हमें अपनी धारणायें ही बदलनी पड़ती हैं ।

राह्ईन ने इस प्रश्न को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है । भौतिक विज्ञान के अनुसार दिक्काल का अतिक्रमण कैसे हो सकता है ? क्या मन में इतनी शक्ति है ? यहाँ मैं फिर योग-सिद्धियों के चमत्कारों का वर्णन कर दूँ, जो नित्य ही बहुतेरे आदमी देख चुके हैं । यदि यह सब ठीक है तो कहना होगा कि भारत के लोगों ने भी एक बात में तो तरक्की की ही । योग इस पक्ष के वैज्ञानिक अनुसंधान का ही तो पर्य्याय है । राह्ईन के मतानुसार, प्रयोगों के परीक्षण से, यही प्रमाणित हुआ कि जितनी अधिक दूरी रखी गई, मन का ज्ञान अधिक स्पष्ट रहा । पियर्स प्रैट प्रयोग ने इस विषय में नया ही दृष्टिकोण रखा । ह्यूबर्ट पियर्स, एक विद्यार्थी, पर डा० प्रैट ने प्रयोग किये । प्रैट उस समय मनोविज्ञान का ग्रैजुएट था । पहले वह अपने से एक गज की दूरी पर पियर्स को बिठा कर, हाथ में ऐ प अ-ताश के पत्ते लेकर प्रयोग में रत हुआ । अब पियर्स को पत्ते न दिखाकर पूछा गया तो उसने पत्तों का नाम बताया । परन्तु जब १०० गज की दूरी रखी गई तब उसने अधिक ठीक बताया । यदि यह माना जाये कि उन ऐ प अ-पत्तों से किसी भौतिक शक्ति का विकिरण हो रहा था तो दूरी के बढ़ने के साथ पियर्स को पत्तों का ज्ञान कम होना चाहिए था । परन्तु हुआ इसके विपरीत । भौतिकशास्त्र में शक्ति के जो नियम माने जाते हैं, वे इन प्रयोगों से प्रमाणित तथ्यों पर लागू नहीं होते । मैं कहूँगा कि अभी तक भौतिकशास्त्र में शक्ति के जो नियम माने जाते हैं, उनकी जानकारी इतनी नहीं है कि वे हर प्रकार की शक्ति (energy) को माप सकें । अभी तक जितनी 'शक्ति'(energy) को देखा है वह अचेतन (inorganic) है । विकास-क्रम में जो अति चेतन (psychic) उन्नति हुई है, वह अचेतन शक्ति की तुलना में कहीं अधिक संश्लिष्ट

---

१ डा० आईन्स्टीन और ब्रह्माण्ड—लिंकन बारनेट श्री राइमी का अनुवाद १९५८ बम्बई पृ० ८९

है। उनमें जिजीविषा—जीवित रहने की इच्छा और रिरिंसा—आनन्द प्राप्त करने की इच्छा—अर्थात् अहंकार है। उसका विकिरण मस्तिष्क के तन्तुओं में होता है, किन्तु जिस गुणात्मक परिवर्त्तन से चेतन का जन्म होता है, वह कितना संश्लिष्ट है, कितना बहुरूप है, इसका अभी तक ज्ञान नहीं हुआ है। लघु मस्तिष्क के संसार में समस्त बाह्य विराट संसार का प्रतिबिंबन किस प्रक्रिया का फल है। यह प्रतिबिंबन चेतना का विकास है जो क्रमशः वृक्षों, जन्तुओं से होकर मनुष्य तक आ पहुँचा है। इसमें जो असंख्य वर्ष लगे हैं, उनमें न जाने कितने परिवर्त्तन हुए हैं। किस प्रक्रिया से अचेतन (inorganic) का चेतन (organic) में परिवर्त्तन हुआ, किस प्रक्रिया से चेतन ही अतिचेतन में बदला यह एक गहरे अध्ययन का विषय है। ऐसे ही विकास-क्रम क्यों चला। अभी तक विकासवादी एक के बाद एक जो विकास में आने वाले प्राणियों (स्थावर जंगम) के बारे में बताते हैं, वह एक बाह्य रूपमात्र है, जिसमें गहराई नहीं है।

अपने से पहले युगों की तुलना में यह ज्ञान बहुत अधिक लगता है। परन्तु यह बहुत अधिक लगना वस्तुतः मनुष्य के लिए बहुत अधिक लगना है। सृष्टि मनुष्य के लिए नहीं बनी। मनुष्य उस सृष्टि की एक बहुत छोटी सी चीज है। एक दिन जंगल की आग को जलाना बुझाना सीख लेने पर मनुष्य ने अंगिरा और प्रोमेथियस को अति महान माना। परन्तु एक्स-रे का ज्ञान प्राप्त करने वाला भी उसी तरह महान है। हमारी दृष्टि में पहले ज्ञान से दूसरा ज्ञान महान है, परन्तु सृष्टि तो और भी महान है। अपार और महान सौंदर्य है। एक विराट गति, उसके बीच में कहीं से मनुष्य प्रारम्भ हुआ। कब हुआ इस सृष्टि का प्रारम्भ और अन्त कब होगा। कहाँ से आई यह सृष्टि? या यह आई नहीं, यह तो थी! तो क्यों? इसे कोई चलाता है? नहीं! अपने आप चलती है। तो क्यों? इसमें भूततत्त्व (matter) सत्य है। तो क्यों? वह कैसे हुआ? परमाणु के विभिन्न संघटनों से कितने विभिन्न रूप जन्म लेते हैं? कितने गुणात्मक परिवर्त्तन होते हैं। उनका सारांश क्या है? विज्ञान क्या इतना उठ सका है कि इन सबका उत्तर दे सके? नहीं। सत्य वह है जो हम जानते हैं, या सत्य वह है जो स्वयं है और हम उसे धीरे-धीरे अपनी सीमाओं में रह कर खोजने की चेष्टा करते हैं? वह जो एक दार्शनिक का मत है कि जो कुछ है हमारे दिमाग में है, क्योंकि यदि दिमाग सही नहीं है, तो कुछ भी नहीं है, क्योंकि दिमाग के बिना हम कुछ भी नहीं जान सकते, तो क्या मनुष्य को इस

मूर्खता को मान लेना चाहिए ? जो बात समझ में नहीं आती उसका पूर्वाग्रह से तिरस्कार करना क्या ठीक है ? उदाहरणार्थ शक्ति के विकिरण की ही बात ली जाये। वैज्ञानिक भौतिकशास्त्री इसका तिरस्कार करता है कि भौतिक-शक्ति के नियम को चुनौती देने वाली बात सत्य नहीं हो सकती। दूसरी ओर ऐ प अ वाले के मत से भौतिकशास्त्री कुछ नहीं जानता, मन की यह क्रिया नितांत अ-भौतिक है। भौतिक और अ-भौतिक का यह द्वन्द्व व्यर्थ है। मनुष्य एक है और उसी में मस्तिष्क है जो भौतिक है और उसी में मन है जो अभौतिक सा लगता है। इसका सहज अर्थ यह है कि अभौतिक और भौतिक का यह भेद वस्तुतः हमारे अज्ञान के कारण है। मूलतः दोनों एक हैं, अपने गुणात्मक परि-वर्त्तनों में भूततत्त्व ही असंख्यरूपी है। उसकी पूरी जानकारी अभी हमें है नहीं, जो अभौतिक को पहले मानकर भौतिक को उसका परवर्त्ती रूप मानते हैं, वे कल्पना से अधिक काम लेते हैं। अन्ततोगत्वा वे श्री अरविंद की भाँति यही मानते हैं कि मनुष्य ही विकास की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसीलिये अ-भौतिक ने क्रम से जड़ रूप से चेतन की ओर विकास किया और अब मनुष्य के चेतन होने पर ज्योंही वह ऊर्ध्वचेतना से मिल जायेगा, वह परमात्मा में लीन हो जायेगा। यह विचार केवल मानव की उसी बौद्धिक दासता का नाम है, जिसकी दूसरी अति मार्क्स में है, जो कहता है कि भौतिक ने विकास कर गुणात्मक परिवर्त्तन किये और यही सृष्टि का अंतिम रहस्य है। जब तक मनुष्य का विज्ञान अचेतन से चेतन, और चेतन से अति चेतन बनने की प्रक्रियाओं को नहीं जानता, तब तक तो हम कुछ भी निश्चय से नहीं कह सकते।

पियर्सप्रैट प्रयोग आगे अजीब लगता है। जब वे २५० गज की दूरी पर रहे तब भी १०० गज की दूरी के से ही उत्तर मिले, पर फिर कुछ गड़बड़ी हो गई और उसकी कोई भी व्याख्या नहीं की जा सकती। फिर उत्तर गलत हो चले और सारांश ठीक नहीं निकल पाया।

टर्नर-अवनबे प्रयोग ने यह दिखाया कि भले ही दोनों व्यक्तियों में फासला वही रहा आए, परन्तु ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते हैं, परस्पर विचार पढ़ने की शक्ति कम होती चली जाती है। इसका कारण भी स्पष्ट नहीं है। परन्तु इन सब प्रयोगों ने बताया है कि दूरी के कारण विचार पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। मनुष्य ऐसा कर सकता है। टर्नर-अवनबे प्रयोगों के समय दोनों के बीच ढाई सौ मील का फासला था। भौतिकशास्त्र के ज्ञात नियमों के अनु-सार अभी तक विचार विकिरण की कोई व्याख्या नहीं की जा सकती। ऐ प अ

प्रयोग तो हजारों मील के फासले बीच में रख कर भी किये गये। प्रयोग-कर्त्ताओं के दो पक्षों की ए प अ सामर्थ्य का व्यक्तिगत पक्ष अवश्य अपना असर रखता है, परन्तु दूरी का कोई व्यवधान नही पड़ता। द्वितीय महायुद्ध के प्रारंभ होने के ठीक पहले जगरेब-डरहम 'स्पष्टदृष्टि प्रयोग' किया गया। जगरेब यूगोस्लेविया में है। इसमें ४००० मील की दूरी पर भी ए प अ प्रयोग सफल रहा। ए प अ प्रयोग में ए प अ शक्ति (Energy) विकिरण क्या किसी भौतिक व्याघात से रुकता नही ? बात साफ नही हो पाती। पियर्स प्रैट प्रयोग में 'स्पष्टदृष्टि' प्रयोग करते समय बीच में पत्थर की चार दीवारें थीं, तब एक पत्ता खींचता था, दूसरा अन्यत्र उन्हें पहचानता था। रीम-प्रयोग में एक पहाड़ी और कई घर बीच में थे। टर्नर अवनबे प्रयोग में तो इन दोनों के बीच में कई पहाड़ थे। हवा, वातावरण, धरती इनके क्या कम व्याघात थे। वह कैसी लहर हो सकती है जो ताश के पत्ते से निकल कर दूसरे के मन तक पहुँच सकती है ? फिर समुद्र के पार जब शक्ति ताशों से निकलेगी तो क्या पहचाना हुआ हर पत्ता अपने रूप की अलग-अलग शक्ति फेंक सकेगा ? पच्चीस पत्ते इकट्ठे हों तो उनका एक नया रूप बनेगा या सबका अलग-अलग शक्तिरूप होगा ? यह भी नही कि पत्ते या पहचानने वाला एक ही स्थिति में रखे गए हों कि किसी खास तरह का नियम उनसे माना जा सके। कभी पत्ते हाथ में रखे गए। कभी मेज पर धरे गए और पहचानने वाला भी तरह-तरह से बिठाया गया। बीच में समुद्र भी रहा, पर्वत भी, किन्तु इसमें कोई बाधा नहीं पड़ सकी।

चित्र, पत्ते, इत्यादि तो दूर, अंत में शुद्ध प्रयोग किये गये। एक व्यक्ति बैठ कर सोचता है और बहुत दूर, दूसरा व्यक्ति उसे जान लेता है। क्या मन से किसी शक्ति का विकिरण होता है, जो जाकर अन्यत्र स्पष्ट-दृष्टि बन जाती है। भौतिक विज्ञान ऐसी किसी शक्ति को नहीं जानता।

राइईन ने स्वीकार किया है कि अब जब कि यह प्रगट होता है कि दूरी का मन के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, तो अवश्य ही इसका प्रयोग एक ग्रह से दूसरे ग्रह तक भी किया जा सकता है, किन्तु अभी इसका कोई साधन नहीं है। भौतिक ज्ञान मन की प्रक्रिया और सामर्थ्य को अभी नहीं समझा सकता। समझा भी सकेगा या नहीं यह भी सन्देहास्पद ही लगता है।

अन्त में मैं कह सकता हूँ कि जो मन दूरी को जीत सकता है, जिसे वर्तमान भौतिक विज्ञान नहीं समझा सकता, वह अपने समस्त समसामयिक जगत से

अधिक समर्थ और विचित्र है। गति और प्रवाह कह कर जिसे हम देखते हैं, वह काल यानी समय का हमारा संबंध है, वह 'सम्बन्ध' है जिसमें एक वस्तु का दूसरी वस्तु से सामना होता है और उस संबंध को हम 'समय' कहते हैं। सापेक्ष दृष्टि से देखा जाय तो 'समय' अपने आप में कुछ नहीं।

डॉ० आइन्स्टाईन के मतानुसार ब्रह्माण्ड एक अपरिवर्त्तनीय और अचल ढाँचा नहीं है, जहाँ स्वतंत्र पदार्थ, स्वतंत्र दिक् और काल में स्थित हो। इसके विपरीत यह एक आकृति विहीन अखण्डता है, इसकी कोई निश्चित बनावट नहीं है। यह लचीला और विभिन्नतापूर्ण है, एवं इसमें परिवर्तन अथवा विकृति सम्भव है। यहाँ भी पदार्थ और गति है। वहां अखण्डता में व्यवधान पहुँचता है। जिस तरह सागर में तैरती मछली अपने आस-पास के पानी को काटती है। उसी तरह एक तारा, या पुच्छल तारा, या ज्योतिर्माला उस दिक्काल की बनावटों, जिससे होकर ये गुजरते हैं, हेर-फेर ला देते हैं। (डा० आइन्स्टीन और ब्रह्माण्ड पृ० ६२)

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि विज्ञान ने मनुष्य को नयी धारणाएँ दी हैं। किन्तु मन के विषय में राह्ईन का मत विज्ञान को और आगे ले जाता है। मनुष्य का ही तो मन काल के व्यवधान को भी नहीं मानता। यदि यह सत्य है तो क्या आश्चर्य नहीं है। राह्ईन का मत है कि यह जो असंभव सा चमत्कार दीखता है, इसको हर एक सभ्यता में हम देख पाते हैं। इसी को भविष्यवाणी कहते हैं। प्रत्येक युग में, जब भी पैगम्बर या संत हुए हैं, उन्होंने ऐसी ही बातें कहीं हैं, जो वैसे समझ में नहीं आतीं। मौजूदा जानकारी इसे पकड़ नहीं पाती। जिन्होंने भविष्यवाणी की है और जिनका इस विषय में गौरव अखंड रहा है, वे लोक में पूज्य रहे हैं। ऐसी भविष्यवाणियों को सदैव दैवी चमत्कार के रूप में लिया गया है।

किन्तु भविष्यवाणी और समयों की तुलना में आज अधिक विश्वसनीय हो गई है। आज विज्ञान भी इसके लिये तत्पर हो गया है।

प्राचीन मिश्र और भारत ने इस विषय में खोज की थी। कितनी भी प्राचीन और मध्यकालीन विचारधारा योग और ज्योतिष के साथ क्यों न लगी हो, फिर भी हमें मानना पड़ेगा कि विज्ञान इतनी यात्रा के बाद जिधर मुड़ रहा है, उसी को सबसे पहले भारत ने टटोला था। मनुष्य के भीतर क्या है, क्या है इसकी सत्ता, इसको सबसे पहले जानने की चेष्टा करने का श्रेय

भारत के मनीषियों को है। इस दृष्टि से भारत विज्ञान के एक उच्च स्तरीय ज्ञान का जनक है। संभवत: इसी में अधिक गहरी पैठ करने के कारण भारत में पुनर्जन्म की विचारधारा ने इतना गहरा घर जमाया। इस विश्वास को प्राचीनों ने तभी माना होगा, जब यहाँ ऐसी घटनाएँ देखी सुनी होंगी। फिर उस विचार को अपने जीवन और समाज पर वे उसी रूप में उसे लागू कर सके, जो उनकी सीमा के अंदर संभव था। दास प्रथा को तोड़ने और सिद्धांतत: करुणा और मानववाद के सिद्धांत को प्रतिष्ठापित करने में इस पुनर्जन्म की भावना का कितना बड़ा हाथ रहा है, यह कौन नहीं जानता? जीवन एक अविच्छिन्न प्रवाह है, यह आत्मा के आवागमन के स्वरूप में ही स्वीकार किया गया।

काल में पहले कारण है, फिर उसका परिणाम। भविष्यवाणी में पहले परिणाम आता है, बाद में दिखाई देता है उसका कारण। ऐसा कैसे हो सकता है? क्या परिणाम पहले से मौजूद है? क्या वह उस समय में है जिसे हम 'भविष्य' कहते हैं? तो क्या 'भविष्य' पहले से है, पर हम उसे तभी देख पाते है जब वर्तमान का रास्ता पार करके वहाँ पहुँचते हैं? जैसे दो मील पर पेड़ तो है, परन्तु वह हमें तब मिलता है, जब हम दो मील चल लेते हैं? तो क्या 'काल' 'एक' है और यह हमारे भूत, वर्त्तमान और भविष्य के भेद केवल इसीलिये हैं कि हम चूँकि सृष्टि के एक अंशमात्र हैं, हमारी दृष्टि समग्र को पूर्ण रूप से देख नहीं पाती?

पहले भौतिक जगत में आग जलती है, तब हमें रोशनी दिखती है। पर यह कैसे हो सकता है कि रोशनी पहले दिख जाये और आग बाद में जले?

इसका कारण यही है कि हमारी दृष्टि, हमारी चेतना, बहुत छोटी है, हम समग्र को नहीं देख पाते, क्योंकि हम 'इस' सबके बाहर नहीं, भीतर हैं। यह जो लग रहा है कि ब्रह्माण्ड विनाश की ओर धीरे-धीरे जा रहा है, बुझ रहा है, यह तो हमारी दृष्टि है। यह जो कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि जो बुझ रहा है, वह अपने भीतर से ही नयी शक्ति विकिरण करके फिर नया होता जा रहा है, वह भी एक आंशिक सत्य है, क्योंकि अंश दृष्टि है।

भविष्य-दर्शन पहले से कैसे हो सकता है? हमारा वर्त्तमान विज्ञान सत्य इसे समझ ही नहीं सकता। किंतु विज्ञान में 'असंभव' 'नहीं' कहा जा सकता। हमें तो परिणाम दिखाई देने पर उसके लिये व्याख्या ढूँढ़ना आवश्यक है। अगर हम नहीं निकाल सकते, तो हम उसे व्यर्थ या असंभव नहीं कह सकते,

हम यही कह सकते हैं कि हम उसे जानते नही, अभी समझते नहीं। जब तक हम जुगनू की चमक को नहीं समझते थे, तब तक हम यही समझते थे कि भींगे पेड़ में भी आग लग सकती है और उसे दिव्य चमत्कार समझते थे। सच तो यह है कि प्रकृति इतनी वैविध्यमयी है कि हम उसे जितना-जितना सोचते हैं, देखते हैं, उतना ही विस्मय होता है। नहीं जानना हमारा अज्ञान है, प्रकृति इसके प्रति निरपेक्ष है कि हम जानते हैं या नहीं। हम एक बहुत ही आश्चर्यजनक जगह रहते हैं।

विज्ञान को भी नये सत्य की धारणा को स्वीकार करना ही होगा। यही कारण है कि राह्‌ईन यही कहता है कि भविष्यवाणी यदि विज्ञान के अंतर्गत मान ली गई तो मनुष्य के विचार में गहरा परिवर्तन आ जायेगा। यहाँ मैं यह कह दूँ कि भविष्यवाणी करने वाला व्यक्ति भी सर्वज्ञ नहीं होता। प्राचीन संतों, पैगंबरों ने भविष्यवाणियाँ कीं, परंतु वे यह सत्य भी नहीं बता सके कि पृथ्वी ही सूर्य्य के चारों ओर घूमती है।

अब भविष्यवाणी और धर्म को अलग-अलग करके देखना आवश्यक है।

राह्‌ईन का एक योग्य और विद्वान विद्यार्थी, (जो डॉक्टर हो गया) एक दिन उसके पास आया और जिस बोर्डिंग हाउस में वह ठहरा था, वहाँ घटने वाली एक घटना उसने सुनाई। उस घर में एक ताजा दंपति था, श्रीमान अ और श्रीमती जी। उनके यहाँ श्रीमान् अ के एक चाचा भी रहते थे। राह्‌ईन को जब घटना सुनाई गई, उससे दो दिन पहले रात को श्रीमती अ जागी क्योंकि दुःस्वप्न में श्रीमान् अ चिल्ला रहे थे। जब वह उन्हें जगाने में समर्थ हुई तो वह बहुत उत्तेजित थे और उन्होंने अपने उस भयानक सुपने को सुनाया जिसके कारण वे उत्तेजित थे। उन्होंने कहा—मैं एक सफेद कमरे में था और ऊपर रोशनी लगी थी। एक मेज बीच में थी, जिस पर एक आदमी सीधा लेटा था, उसके घुटने ऊपर मुड़े थे और वह चादर से ढँका हुआ था। फिर कुछ धार्मिक प्रतीक से दिखे जिनका तात्पर्य मृत्यु थी। घृणित सी आकृति अंदर पहनने के कपड़े खींच रही थी और उस आकृति का पुरुष रूप था। उसने अंत में कपड़ा खींच लिया और फिर उसको वह आग की घनी लपटों में लेकर चला गया। नतीजा यह हुआ कि अगले ही दिन श्रीमान् अ को उनके कार्यालय से अस्पताल बुलाया गया। वे ऑपरेशन के कमरे में गये। ज्योंही घुसे कि पहली रात का सुपना सामने आ गया—वही सफेद कमरा—ऊपर की रोशनी—मेज बीच में—ऊपर मुड़े घुटनों वाला आदमी उस पर सोया

हुआ और उसका मुख इतना चुटीला और घायल होने से विकृत हो गया था कि पहचानना कठिन था। तब श्रीमान अ को बताया गया कि उनके चाचा ही घायल हुए थे। उनको मोटर में उतरने पर एक और मोटर ने टक्कर मे घायल कर दिया था। श्रीमान् अ के अस्पताल मे जाने के पहले ही चाचा का देहांत हो गया।

समय में यह अग्रगमन केवल इन्हीं मे तो प्रमाणित नहीं होता। अतः इस पर प्रयोग प्रारंभ हुए। अंतराल (Space) मे निरपेक्षता का अर्थ था काल से निरपेक्ष होना, क्योंकि काल क्या है ? काल है अंतराल के परिवर्त्तन की एक क्रिया अर्थात् अंतराल में जो भौतिक गत्यात्मकता है, उसे काल की आवश्यकता होती है। अतः एक के बाहर रहने का अर्थ था, दूसरे के भी बाहर रहना। जिस प्रकार अनुपस्थित (सुदूर) का ज्ञान होता है, उसी प्रकार भूत और भविष्य का भी होना चाहिये। अतः इस पर प्रयोग प्रारंभ किये गये। अब यहाँ मैं उन प्रयोगों का तो उल्लेख तुम्हें विस्तार से नहीं सुनाऊँगा। सोल-गोल्डने प्रयोग में एक व्यक्ति एक कमरे में ताश के पत्ते देख रहा था। दूसरे कमरे में दूसरा था, जिससे पूछा गया कि बगल वाले कमरे में बैठा आदमी किस पत्ते को देख रहा था। उसने बताया और अधिक ठीक उसने यह बताया कि वह आगे क्या देखेगा। जो पत्ता चुना नहीं गया था, जो चुना गया बाद में, उसने पहले से बताया कि वह 'अमुक' चुना जायेगा।

राइ्ईन ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात की तरफ इशारा किया है। वह यह कि यदि पहले से बात का पता चल सकता है, तब यह जाहिर होता है कि हर चीज पहले से तय है कि आगे क्या होगा ? इसका मतलब है कि मर्जी की बात नहीं रही। अगर किसी को पहले से पता भी चल जाये कि वह रेल लड़ने से मरेगा, तो भी वह उसे रोक नहीं सकता। इस बात के प्रमाणित होने से मनुष्य के चिन्तन को भयानक भाग्यवाद पकड़ लेगा। लेकिन मेरे दिमाग में एक और बात आती है। वह यह कि यदि पहले से सब तय है, तो भविष्य तो है ही, वह हमारे सामने तब आयेगा जब हम उस तक पहुँचेंगे। पर हम प्रकृति के अंश हैं अतः संपूर्ण को नहीं देख पाते, किन्तु इसका अर्थ है कि समय और दिक् वस्तु के रूप हैं, जो हमारी अधूरी दृष्टि के कारण ऐसे दिखाई देते हैं, अन्यथा वे पूर्ण हैं।

पूर्णता का प्रारम्भिक रूप देखना आदिम समाजों में भी मिलता है, किन्तु वहाँ पूर्ण की सीमा बहुत सीमित रहती है। भारतीय ऋषियों ने पूर्ण को दर्शन

के क्षेत्र में काफी महत्व दिया था। परन्तु उसका व्यवहार पक्ष में क्या स्थान था ?

योग के क्षेत्र में उसको देखने की चेष्टा हुई थी।

हमारे मनीषियों ने कहा है—त्रिकालज्ञ अर्थात् तीनों कालों का ज्ञाता। वैज्ञानिक प्रयोग तो अब हो रहे हैं, किन्तु पुराने मनुष्यों ने भी यह पहचान लिया था कि हमारी दृष्टि विभाजित है, अन्यथा काल अविभाजित है। योग-मार्ग के सिद्धों ने इसी का प्रयोग किया है और उन्होंने विज्ञान के सबसे दुरुह भाग को परखा है। योग सिद्धियाँ इसी के प्रयोग और अनुभव हैं। योगी मन के संयम से देह का संयम करके ऐसे चमत्कार दिखाता है कि उन्हें देख कर सब चकित होते हैं। कहते हैं योगी त्रिकालज्ञ होता है। अर्थात् वह ऐसी दृष्टि प्राप्त करता है जिसमें दिक्काल के व्यवधान हट जाते हैं और वह मन की महानता को पहचान कर सर्वगति एकत्व को पहचान लेता है। भूततत्त्व (matter) हमें खंडित दृष्टि के कारण दिक्काल (Space Time) में विभाजित दिखाई देता है, किन्तु योगी को ऐसा नहीं लगता।

योग-मार्ग के ज्ञात सिद्धान्त प्राचीन परिवेशों में बने थे, उन पर नया ही अध्ययन हो तो जाने क्या क्या नया उद्घाटित नहीं होगा ?

तो क्या मन अलग है और भूततत्त्व अलग है, यह दो हैं ? दार्शनिकों में यह बड़ा भारी मतभेद है। कौन पहले आया ? पुराने दार्शनिकों के हिसाब से मन। विकासवाद के हिसाब से मन आया बाद में। श्री अरविंद के हिसाब से मन ने अपने को भूततत्त्व के रूप में प्रगट किया। फिर भूततत्त्व ने क्रमशः विकास करके 'मन' तक की मंजिल प्राप्त की और अब मन को ऊर्ध्वचेतन होकर महाप्राण में लीन होना चाहिये। परन्तु मैं सोचता हूँ कि तीनों ही दार्शनिक जब टकराते हैं, तब अपने अपने दृष्टिकोण से, जो थोड़ा बहुत वे इस छोटी सी पृथ्वी के बारे में जानते हैं, उसीसे बोलने लगते हैं। परन्तु वे क्यों भूल जाते हैं कि यह पृथ्वी इस ब्रह्माण्ड में कितनी छोटी है। वैज्ञानिक तो यह भी कहते हैं कि सम्भवतः हमारी छोटी पृथ्वी तो क्या, हमारा सारा सौरमंडल भी, ब्रह्मण्ड में कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। हम तो गाँव के निवासी हैं, इस ब्रह्माण्ड की राजधानी भी है क्या ? केन्द्र भी है क्या ? क्या वहाँ भी कोई रहता है। त्रिकाल यदि हमारी विभाजित दृष्टि का भेद है, तो समग्रता में दिक्काल भूत, कैसे होते हैं ? क्या यह गत्यात्मकता (Dynamic) वास्तव में स्थिर है ? यदि भविष्य को वर्तमान में देखा जा

सकता है, तो भविष्य तो पहले से है। अर्थात् गति हमारी है, वस्तु स्थिर है ? कैसा विरोधाभास है ? फिर स्थिर को हम गत्यात्मक क्यों समझते हैं ? देखो। एक मोटी दीवाल है। वह स्थिर है। पर क्या वह सचमुच स्थिर है ? प्रत्येक परमाणु गतिमय है। दीवाल में धीरे धीरे निरन्तर परिवर्तन चल रहा है। अतः हमें एक गतिमय वस्तु भी स्थिर लगती है। हम यदि रेल के डिब्बे की खिड़कियाँ बन्द कर लें तो चलती रेल की गति को भी हम नहीं जान पाते। यानी यह सब हमारी दृष्टि की सीमाएं हैं। कहते हैं कि गुबरीले की सारी आँख ही पुतली होती है। उसे एक ही समय में वृत्ताकार दृश्य दीखता है, जबकि हमें सीधा। अगर गुबरीला बोलता तो वह सदैव जीवन-दर्शन की व्याख्या करते समय हर वस्तु को वृत्ताकार बताता।
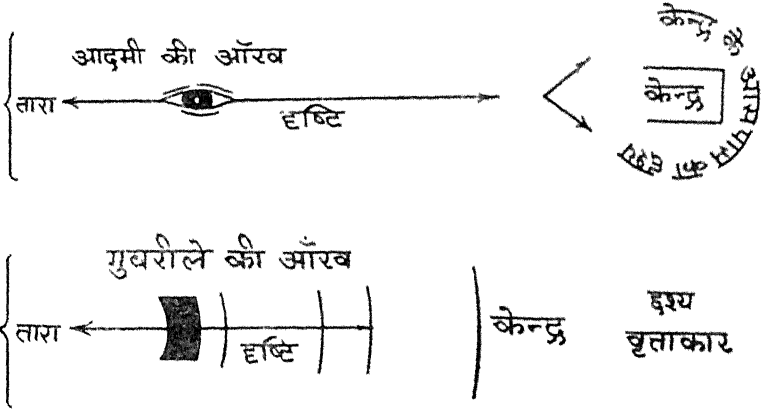
चित्र ४१

मन की एक शक्ति है 'स्मरण' अर्थात् 'स्मृति' जो काल में पीछे की ओर गति है। 'भविष्यज्ञान' इसके विपरीत मन की वह गति है जो भविष्य में ले जाती है। उस पर इतना आश्चर्य क्यों किया जाये ?

किन्तु यह मन और भौतिक जगत क्या अलग अलग हैं ? भौतिक जगत् और मन वस्तुतः एक ही के गुणात्मक परिवर्तन हैं—वस्तुतः जो है, वह एक है। जिस प्रकार भौतिक जगत में भूततत्त्व स्थूल है, और शक्ति (Energy) सूक्ष्म, उसी प्रकार यह द्वन्द्व क्रमशः चल रहा है। और अन्ततोगत्वा सब एक है। पर यह क्यों है ? कौन जाने ? यह मानव-जीवन का नाटक सचमुच अपना क्या महत्त्व रखता है ? क्या जाने ? कोई इस सृष्टि के भीतर और भी है

जो चला रहा है ? कौन जाने ? कोई नहीं है, यह तो भूततत्त्व है, प्रकृति है, चलता है सब अपने आप, पर क्यों ? क्या जाने ? यह कहां से आया ?

क्यों ? कैसे ? कहाँ ? कब ? कहाँ से ? कहाँ तक ? कब तक ? क्या है ? यह सब मनुष्य की सीमित बुद्धि के प्रश्न हैं। सम्वतः अविभाज्य मन में यह प्रश्न नहीं हैं। जहाँ हुआ, है, होगा, नहीं है, वहाँ कब ? कब तक ? कहाँ तक ? का प्रश्न ही नहीं। जहाँ दिक्‌सीमा नहीं, वहाँ क्या जाने क्या निकलेगा ? मैं समझता हूँ कि अभी हम 'सत्य' के मानवीय सापेक्ष ज्ञान के बाहरी घेरे तक भी नहीं पहुँचे हैं। पूर्णसत्य तो हम जान ही नहीं सकते, चाहे धर्म और संप्रदायों के आचार्य कुछ भी कहें, चाहे दर्शन और विज्ञान के आचार्य कुछ भी मानें। मार्क्सीय संप्रदाय के लोग कितना भी गर्व क्यों न करें, परन्तु मेज की चींटी पूरी मेज कैसे जान सकती है ?

राह्‌ईन ने इंगित किया है कि मन यह काम कर सकता है। परन्तु मैं समझता हूँ कि मानव मन भी उस 'पूर्णसत्य' को अपने आंशिक रूप में ही ग्रहण कर सकता है।

परन्तु यहाँ में राह्‌ईन की बात ठीक समझता हूँ जब वह कहता है कि हमें तो नयी नयी बातों को बिना पूर्वाग्रह के निष्पक्षता से देखना चाहिये और उन्हें अपने तर्क से ठुकराने के बजाये, वस्तु तथ्य देख कर अपनी थ्योरी बनानी चाहिये।

मन किसी वस्तु—भूततत्त्व पर अपना प्रभाव डाल सकता है। यह प्रमाणित हुआ है। यदि मन उस मस्तिष्क के भूततत्त्व से अधिक स्वतंत्र है, जिसमें वह जन्म लेता है, तो इसका अर्थ है कि मन की प्रक्रिया का प्रकृति में अपना स्थान अथवा नियमन है। विभिन्न धातुओं पर प्रयोग किये गये। लोहा, सीसा, इत्यादि कोई भी उससे नहीं बचा। ए प अ से मनोवैज्ञानिक ज्ञान प्रक्षेपण का संबंध है। म ज्ञा प्र से प्रमाणित होता है कि मन का वस्तु के घनत्व पर भी प्रभाव पड़ता है। यदि मन अभौतिक है, अभौतिक तरीके से काम करता हुआ भौतिक वस्तु पर भौतिक प्रभाव डालता है तो यह प्रमाणित होता है कि परस्पर संबंध होते हुए भी मन भौतिक वस्तु से कुछ स्वतंत्र भी है। ए प अ और म ज्ञा प्र परस्पर एक दूसरे से मिले हुए हैं। हिप्नोटिज्म का भी इस विषय से संबंध है। मूलतः यह सब अलग अलग नहीं है।

अब यह भी पता चला है कि ए प अ और म ज्ञा प्र तथा हि के लिये

भौतिक तत्त्वों से बने मस्तिष्क का स्वस्थ्य होना अधिक आवश्यक है। इससे प्रगट होता है कि मन जिस मस्तिष्क में जन्म लेता है, वह स्वस्थ और भौतिक होना चाहिये।

राहईन ने बताया कि प्रार्थना जैसी दृढ़ चित्त एकाग्रता मे भी भौतिक तत्त्व पर प्रभाव डालने की क्षमता है, जिसे प्रयोगों में देखा जा चुका है।

इस प्रकार पता चलता है कि मन समय और अंतराल के परे जाता है, भौतिक आधार पर जीवित रहता है, बढ़ता है, अभौतिक सा लगकर भी भौतिक प्रभाव डालता है, उसकी प्रक्रियाएँ ज्ञात नहीं हैं। ऐसा भी देखा गया है कि स्वप्न के माध्यम से मनुष्य ने गुत्थियों को सुलझाया है। एक व्यक्ति के मर जाने पर उसकी वसीयत से उसके पुत्रों में जायदाद का बँटबारा हो गया। दो वर्ष बाद एक पुत्र को स्वप्न हुआ कि उक्त वसीयत के बाद की पिता के हाथ की लिखी वसीयत और है जो एक ओवरकोट की जेब में रखी है, जिसमें वसीयत की शर्तें ही और हैं। वह उस वसीयत को जागने पर, ढूँढ़ कर कचहरी में ले गया और अदालत ने उसकी जाँच कराके पिता के हस्तलेख को प्रामाणिक माना।

इसी तरह दक्षिण अफरीका के निवासी सालोयनडाबा के बारे में डॉ० लॉब्सचर ने लिखा है कि वह पहले से बता देता था कि क्या होने वाला है।

इस प्रकार अतीत वास्तव में अतीत नहीं रह जाता। विशेष दिक (Space) में वह वर्त्तमान बन जाता है।

मन समय और अंतराल का दास नहीं। तो भविष्यवाणी सत्य हुई लगती है किन्तु भविष्यवाणी के जो रूप हम जानते हैं वे वास्तव में तो अनु-संधान के क्षेत्र में आदिम ही कहला सकते हैं।

मन के बल से योग बल आता है जो मनुष्य को असंख्य ऐसी शक्तियाँ देता है, जो उसे चमत्कार बना देती हैं। यह भी मन के लिये सहज है।

अब रही बात मृत्यु के बाद चेतना के किसी अंश का बच रहना। शरीर-विज्ञान इसके प्रमाण नहीं देता। किन्तु शरीर-विज्ञान और वैज्ञानिक अनुसंधान क्या सचमुच मन की समस्या को सुलझा सके हैं? सारे शरीर के मलमूत्र रक्त अस्थि परख लेने के बाद भी जो डॉक्टर इलाज नहीं कर पाते, इसका कारण ही यह है कि वे मनुष्य के सबसे महत्त्वपूर्ण भाग मन का अध्ययन समग्र शरीर में सम्मिलित नहीं कर पाते।

मनोमय कोष भारतियों में अलग से माना गया है। आयुर्वेद में उसको अभिव्यक्ति तो दी गई है किन्तु उसकी वास्तविक व्याख्या केवल दार्शनिकों ने ही करने की चेष्टा की है।

किन्तु यदि सबकुछ पूर्वनियत है तो स्वेच्छा कहाँ है ? यदि सब नियत है तो स्वेच्छा व्यर्थ है। यदि स्वेच्छा है, तो वह कितनी है ? वह व्यक्ति रूप में है, जिसे एक विराट पूर्वनियत नियमन के अंतर्गत चलना पड़ता है। गीता के नियतिवाद और पुरुषार्थ का वही द्वन्द्व आ गया, जिसमें अपने को निमित-मात्र समझने की बात है। बौद्धों, ब्राह्मणों और जैनों का कर्मवाद तो कार्य-कारण कार्य का चक्र है, किन्तु जहाँ काल अविभाज्य, वहां तो सब पहले से है, फिर व्यक्तित्व कहाँ रहा ? किन्तु हम यह भी देख चुके हैं कि मन का भौतिक तत्त्व पर प्रभाव पड़ता है। वह ज्ञात भौतिक नियमों में अज्ञात रूप से परिवर्त्तन भी कर डालता है। इसका अर्थ है कि 'पूर्व निश्चित' में भी 'परिवर्त्तन' हो सकता है। यह फिर वही उलझन आ गई।

आधुनिक काल में विज्ञान अजीव से जीव की उत्पत्ति मानता है, यद्यपि दार्शनिक आदर्शवादी इसे नहीं मानते। श्री अरविंद की सीमा पर मैं पहले ही लिख चुका हूँ। यदि विज्ञान का तर्क माना जाये तो जो मैं कह चुका हूँ वही यहां फिर कहना होगा—अजीव से जीव आया, जीव से चेतन। अजीव के भौतिक पदार्थ के द्वन्द्वमय रूप में दो बात थीं—वह अपने घन रूप में स्थूल था और सूक्ष्म रूप में शक्ति। इनके द्वन्द्व से—एक ही के दो रूपों के द्वन्द्व से जो अज्ञात गुणात्मक परिवर्त्तन हुआ उससे अजीव (Morganic) से जीव (Organic) की उत्पत्ति हुई, जो एक था परन्तु इसके भी रूप रहे, स्थूल रूप में इसमें घनत्व था, सूक्ष्म रूप में इसमें शक्ति थी—प्राण। इस जीव के एक द्वन्द्व में गुणात्मक परिवर्त्तन हुआ तो चेतन (Psychic) जन्मा। यह भी एक ही था, किन्तु इसमें भी द्वन्द्व था—स्थूल रूप में शरीर, घनत्व और सूक्ष्म रूप में शक्ति—चेतना। मूलतः यह एक ही अजीव के द्वन्द्व का निरंतर विकसित द्वन्द्वात्मक गुणात्मक परिवर्त्तन है। तब हमारे सामने एक ही के तीन रूप हैं, तीनों का द्वन्द्व समन्वित रूप है और तीनों परस्पर मिलते हैं। इसलिये इसमें कितना अभी और जानने को है यह कौन बता सकता है।

अब प्रश्न यह है पहले अजीव ही था, या जीव ही था, या चेतन ही था, यह कौन बतायेगा ? जो भी विज्ञान मनुष्य ने बनाया है वह इस छोटी सी

पृथ्वी पर रहकर ही। और पृथ्वी ही तो सृष्टि का केन्द्र नहीं है! फिर कैसे पता चले कि विराट सृष्टि में क्रम कैसे उदय हुआ? हुआ या नहीं। वैज्ञानिकों का मत है कि काल मापने के जो हमारे दृष्टिकोण है, वे सूर्य से हमारे संबंधों के प्रतीक-मात्र हैं। और इस विराट सृष्टि में सूर्य का ही क्या महत्त्व है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हम ऐसी जगह आ गये हैं, जहां हमें उस बौद्धिक दासता का अन्त करना होगा जो अपनी सीमा के परे की बात को चमत्कार कह कर टालना चाहती रही है। चमत्कारों का युग तो अब आया है।

अभी तो विज्ञान ने अजीव और जीव का अध्ययन किया है और चेतन का तो अध्ययन ही बाकी है।

यह निश्चित है कि योग-मार्ग के द्वारा इस पक्ष को देखा जा सकता है और संभवतः भारत इसमें आगे बढ़ कर राह दिखाये।

मनुष्य में इस चेतना का विकास है अहं का विकास। उस अहं की गतिमय मूलाधार से भटकन ही रोगों की जड़ है। अहं, जीवित रहने की, आनन्द प्राप्त करने की इच्छा है, उसे भय होता है। भय जीवन का पर्याय है। परन्तु अन्तिम सत्य इसका क्या है? जन्म, जीवन, मृत्यु—काल के तीन रूप। तब यह जीव, अजीव, चेतन का मूल जो परमाणु है, भौतिक है, जो स्थूल और सूक्ष्म दोनों है—जो ही संभवतः समस्त सृष्टि में है और अपने विभिन्न रूपों में है, वह जो है—कहाँ से आया? कहाँ है? क्यों है? क्या अपने समग्र रूप में वह स्थिर है? किन्तु उसमें, द्वन्द्वों के गुणात्मक परिवर्तन से सृजन प्राप्त प्राणी, गति देखते हैं? या कोई भवितव्यता नहीं है, सबकुछ आकस्मिक है और अनिश्चित की ओर जा रहा है? मन कहता है कि काल अविभाज्य है, तब तो नियति है। फिर पुरुषार्थ या स्वेच्छा कहाँ है? एक बात है कि 'लघु' की 'स्वेच्छा' भी लघु है, चाहे 'लघु' को वह कितनी भी बड़ी क्यों न लगे। इस दृष्टि से मनुष्य या प्राणियों की स्वेच्छा इस विराट सृष्टि में कितनी स्वतन्त्रता ले सकती है?

इस 'स्वेच्छा' को प्राचीनों ने 'अहंकार' कहा था और आत्मा के एक रूप में इसे स्वीकार किया था। वस्तुतः भौतिक और अभौतिक को अलग-अलग मानना गलत है। भौतिक ही अपने गुणात्मक परिवर्तन में अलग-अलग रूप धारण करता है या कहें कि अभौतिक ही भौतिक के विभिन्न परिमाणों में अपने भिन्न रूप प्रगट करता है। सत्य हमारा मानव सत्य है, सीमित सत्य है। हो सकता है कि लोग कहें कि मानव सत्य के अतिरिक्त और कोई सत्य नहीं, किन्तु ऐसा

कहने वाले तो वे ही विकासवादी होंगे, जिनके मतानुसार सृष्टि का सत्य पुराना है और मानव उसमें बहुत बाद में आया है।

यह भौतिक जो अपरिमित तारागण महाशून्य बन कर फैला हुआ है, इतना सब जो है, जो मानव से बहुत दूर है। (उसके लिए अभी स्पुत्निक बन ही रहा है), जो मानव से निरपेक्ष है, यह क्यों है? यथा तथ्यवादी कहता है—खाओ, पियो, समाज में रहो, समाज का भला करो, लोककल्याण करो, प्रयत्न करते रहो, शायद यह समझ में आ जाये। मैं इसे मानता हूँ, इसके अलावा कोई चारा ही नहीं है। लेकिन प्रश्न वही है।

यदि चेतन ने भौतिक के रूप में अपने को दर्शाया है, तो क्यों? मानव तो बहुत बाद की सृष्टि है और यह भी क्या समझ में आने वाली बात है कि इस छोटे से मानव को दिखाने के लिये इतने विराट चेतन ने इतना भौतिक दर्शाया हो? दर्शाया है कि मानव इतने विकास का परिणाम तो है, वह जाकर फिर उसमें मिले? जब कि वह उससे अलग है कहाँ? यदि भौतिक ने चेतन के रूप में गुणात्मक परिवर्त्तन किया है तो क्या भौतिक का सचमुच वही आदिरूप रहा होगा, जिसे अजीव कहकर हम पृथ्वी पर मानते हैं? उस भौतिक ने किस प्रक्रिया से यह गुणात्मक परिवर्त्तन किया, अभी तक यही पता नहीं है, फिर परिणाम देख कर यदि मान भी लिया जाये कि उसने ऐसा किया, तो क्या इसीलिए कि एक दिन यह मानव 'विराट संसार' को अपने 'लघु मानवी संसार' में उसे प्रतिबिंबित करके उस पर आश्चर्य करे। क्या इतनी सी बात हो सकती है?

यदि चेतन और भौतिक 'एक' ही के दो रूप हैं, और वह 'हैं', तो अनादि अनन्त-सा क्यों है 'वह'? क्या यह समग्र सृष्टि इसीलिये है कि मानव एक बड़ा अच्छा समाज बना कर रह ले और स्पुत्निक में बैठ कर जगह-जगह देखता फिरे? क्या इस समस्त सृष्टि की सार्थकता का केन्द्र यही है?

यद्यपि हम मूल गुणात्मक परिवर्त्तनों को नहीं जानते, किन्तु विज्ञान ने हमें फिर भी बहुत से सृष्टि के रहस्य बताये हैं। इसके आधार पर हम बताने की चेष्टा करते हैं कि हमारे हर 'क्यों?' का उत्तर असल में 'कैसे?' में मिलता है।

एडिंग्टन का मत अन्त में यह बन गया था कि सृष्टि का रहस्य इतना विराट है कि उसे सम्भवतः विज्ञान के द्वारा मनुष्य कभी भी नहीं पकड़ सकेगा। जहाँ लाखों ज्योति वर्षों की बात हो, वहाँ मनुष्य किस प्रकार इतनी आयु तक

जीवित रह सकेगा ? लेकिन जब से मन की शक्ति की बात चली है तब से नयी सम्भावनाओं की ओर दृष्टि जाने लगी है। पहले दिक् को एक माना जाता था, किन्तु वह सूर्य की समय-सापेक्षता के आधार पर माना गया था। अब काल की अनेक सापेक्षताएँ देख कर अनेक उप दिक् (sub space) के बारे में भी सोचा जा रहा है।

विज्ञान की प्रत्येक नयी संभावना समाज में एक हलचल लाती है। भारत एक प्रकार से सांस्कृतिक विलंब (Cultural Lag) से पीड़ित है, क्योंकि वह नये युग के साथ तेजी से नहीं बढ़ पा रहा है। उसकी दृष्टि भौतिक उन्नतियों की ओर जाती है और वह पश्चिम को अपने से अधिक सभ्य समझता है, किन्तु पश्चिम भारत की योग सम्बन्धी उन्नति को देख कर उसे अब भी इस क्षेत्र में अपने से अधिक संस्कृत समझता है।

अन्त में मैं यहाँ मानव की सामर्थ्य के एक संक्षिप्त उल्लेख के साथ इस विषय को समाप्त करना चाहता हूँ।

धरती की केवल २५००० मील की परिधि है। मनुष्य की लम्बाई क्या है ? ६ फुट ! उसमें दिमाग कितना बड़ा है ? आधा फुट के ही लगभग। उसमें पच्चीस हजार मील समाते हैं। सूर्य है इस धरती से नौ करोड़ तीस लाख मील दूर। और हमारी धरती जैसे आठ ग्रह और हैं जो सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते है। सूर्य सदैव चमकता है, इसी से प्रत्येक ग्रह के एक भाग पर सदैव प्रकाश पड़ता रहता है। और वे असंख्य तारे ! और वे पुच्छल तारे। आकाश गंगा। जिसकी दूरी नापने को संख्या की कमी पड़ गई। तब ज्योतिवर्ष को नियत किया गया। एक सैकेंड में प्रकाश चलता है एक लाख छियासी हजार मील। तब एक वर्ष में वह चला लगभग ६,०००,०००,०००,००० = साठ खरब मील। और तब एक ज्योतिवर्ष हुआ। ऐसे सैकड़ों हजारों ज्योतिवर्षों मे उन सितारों से रोशनी हमारी धरती पर आती है। और अभी तो पता नहीं कितनी सृष्टि और है।

यों आधा फुट दिमाग बराबर है साठ खरब मील × सैकड़ों हजारों लाखो मील।

हमारा छोटा घर—पृथ्वी। हमारा मुहल्ला है सौरचक्र। और सूर्य है नगले का केन्द्र, चल रहा है एक सैकेंड में बारह मील। और हम तो नौ ग्रह हैं, उसके पुछल्ले—बड़े बड़े, फिर और भी हजारों पुच्छल तारे, मीटियौर ऐसटीरौयड, पिछलग्गे... लाखों, सब उसके पीछे घूम रहे हैं। पर इस सारे

नगले मे सृष्टि के बाकी तारे कितनी दूर हैं। इतनी दूर कि इसका एकाकीपन असह्य लगता है। सूर्य के सबसे करीब जो तारा है, वह सूर्य से कितनी दूर है ? ४ ज्योतिवर्ष यानी ४×६०००,०००,०००,००० अर्थात २४० खरब मील। सौर मण्डल के चारों ओर एकांत है, शून्य है, नितांत शून्य, उसमें कोई तापक्रम नहीं, काला निःशब्द शून्य। स्पुत्निक वाले तो अभी पृथ्वी के ऊपर की सूर्य की किरणों के ही रूप का अध्ययन कर रहे हैं। और वहाँ ? २४० खरब वर्ष।

और आगे है उससे आकाशगंगा। उसमें लाखों तारे हैं, जिनमें से कई तो हमारे सूर्य से हजारों गुना बड़े हैं।

और यह सब भाग रहे हैं। सैगिटैरियस की ओर घूमते लगते हैं। शायद २००,०००,००० वर्षों=२० करोड़ वर्षों में इन सबका एक चक्कर अपनी कीली पर घूमने में व्यतीत होता है। ऐसे कितने भ्रमण हो चुके हैं। कितने और होंगे ? हमारी आकाशगंगा की भाँति लाखों विश्व ऐसे और भी हैं। संभवतः उनमें से जो हमसे सबसे पास है वह है ८००,००० ज्योतिवर्ष =८०००००×६० खरब =४८०००००० खरब वर्ष='४ करोड़ ८० लाख वर्ष खरब वर्ष।

सुकरात के सत्य से गांधी की अहिंसा और यह विराट रूप। अरस्तू की मेधा से आइन्टाईन की सापेक्षता और यह समग्ररूप। और वेद के ऋषि से मार्क्सीय धर्मानुयायियों के चिन्तन के रूप और यह विशाल प्रसार। किसलिए। क्यों ? मानव के लिये।

लोग कहते हैं—इस सबको विज्ञान ने बताया है, वही आगे भी बतायेगा, इसलिये चिंता मत करो। लोक को ठीक करो। पर अभी एक लोक-सेवी मिले थे। कहते थे, इतनी समाज सेवा करता हूँ, लेकिन इस पृथ्वी का क्या भरोसा-कहीं कोई सितारा चला आ रहा होगा, क्या जाने उसका भ्रमण होते होते यहां जब वह कुछ अरब वर्ष पूरे करके पहुँचे तो हमारा सूर्य उसके पीछे पुछ-लग्गा बन जाये, फुलझड़ी सा बुझ जाये और हमारा सौर मन्डल ही नष्ट हो जाये।

जैसे किसी बहुत विराट गहरे महासागर पर एक नाव पर कुछ लोग शून्य आकाश के नीचे बहे जा रहे हों, और अपने यन्त्रों से प्रकृति से लड़ रहे हों। मनुष्य की इस वृत्ति को प्राचीनों ने भी समझा था। तभी कहा था कि इस अहंकार को संकुचित मत रखो। यही तुम्हारा आत्मा है। इसे बड़ा करो और

परमात्मा से मिला दो। ईश्वर को मानो, या न मानो परन्तु इस आत्मा को—यानी अपने को—सबके योग्य बना दो। अहंकार का उदात्तीकरण ही संसार का एक कुटुम्ब समझने की भावना का आधार है। गीता में तभी कहा गया है कि काल अविभाज्य है। मनुष्य एक निमित्तमात्र है, वह प्रकृति के नियमों के भीतर ही है, फिर भी उसे पुरुषार्थ करना चाहिये—क्योंकि व्यक्ति की स्वेच्छा को संपूर्ण के नियमन के भीतर थोड़ी बहुत गुंजायश है। मैं देखता हूँ कि गीता का 'आत्मा' सत्य की एक झलक अवश्य है। आत्मा यानी चेतना है। वह क्या है, अभी निश्चित रूप से प्रगट नहीं है, परन्तु यह शरीर-भौतिक केवल इतना ही नहीं है, जितना भौतिक विज्ञानी जानता है। इसका गुणात्मक परिवर्तन और भी है, और अभी वह जानकारी भी बहुत दिलचस्प साबित होगी।

अपनी बात को देखता हूँ तो लगता है मनुष्य की इस सारी कार्रवाइयों का कारण क्या है? वह है कि आदमी आदमी को दिखाता है, अपने आप को। स्पुत्निक का आनन्द केवल इसी में नहीं है कि वह चाँद जा रहा है, वरन इसमें है कि उसका जिक्र सुन कर बाकी लोगों की आँखें फटी रह जाती है। विज्ञान के विकास के पीछे संस्कृति की नैतिक मान्यताएं जो नहीं बढ़ पाई हैं, वे ही उस अहंकार और विद्वेष में दिखाई पड़ी हैं, जो स्पुत्निक की उड़ान के साथ राष्ट्रों में प्रतिस्पर्धा बन कर प्रगट हुई हैं।

विचार का सत्य जब तक भाव का सत्य भी नहीं हो जायगा, तब तक जीवन का सामंजस्य ठीक से बैठ सकेगा या नहीं, यह नितांत संदेहास्पद है।